ॐ
विश्वनाथ
अर्थ
काम
धर्म
मोक्ष
वर्ष ४
सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥
अंक २

भगवन्नामावलि

हरहर महादेव शम्भो काशी-विश्वनाथ गङ्गे ।
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव जय शङ्कर ।
हर हर शङ्कर दुःखहर शङ्कर सुखकर भयहर हर शङ्कर ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे ! नाथ नारायण वासुदेव ।
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण, श्रीमन्नारायण नारायण नारायण ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

सञ्चालक—मण्डल

संस्थापक—श्रीमत्परमहंस-परिव्राजकाचार्य्य-ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज
मण्डलेश्वर

सम्पादक—श्री स्वामी महेश्वरानन्दजी ।

गु० ,, श्री स्वा० मुकुन्दाश्रमजी यति व्याख्यान वाचस्पति

स० सम्पादक—गिरिजेश कुमार शर्मा "गिरीश"

व्यवस्थापक—स्वामी बालानन्दजी । ब्रह्मचारी चैतन्यानन्दजी (भूतपूर्व पं० धर्मदत्त शर्मा)
ॐ नमः शिवाय बैंकके प्र० मन्त्री. ।

वार्षिक मूल्य
भारत में २) रु०
विदेश में ४) रु०

शिवनामावलि

महादेव ! शिव ! शंकर ! शम्भो ! उमाकान्त ! हर ! त्रिपुरारे ! ।
मृत्युञ्जय ! वृषभध्वज ! शूलिन् ! गङ्गाधर ! मृड ! मदनारे ! ॥
हर ! शिव ! शंकर ! गौरीशं ! वन्दे गंगाधरमीशम् ।
रुद्रं पशुपतिमीशानं कलये काशीपुरनाथम् ॥
जय शम्भो ! जय शम्भो ! शिव ! गौरीशंकर ! जय शम्भो ! ।

साधारण प्रति
भारत में ≡)
विदेश में ।~)

ग्राहक-अनुग्राहकोंसे क्षमायाचना

अनेक आवश्यक एवं अनिवार्य कारणोंसे हमारे प्रेमी ग्राहक-अनुग्राहकोंकी सेवामें विश्वनाथ' चैत्रमें न पहुंचा सके, चैत्रका अङ्क न मिलनेके सम्बन्धमें अनेक प्रेमी सज्जनोंके पत्र भी आये थे-जिनका ठीक-ठीक उत्तर भी हम न दे सके, इसमें अनेक अनिवार्य कारण उपस्थित हो गये थे—काशीमें हिन्दु मुस्लीमकी लड़ाईके कारण कई दिनों तक प्रेस बन्द रहा, और हरिद्वार कुम्भमेलामें सभी कार्यकर्ताओंको जानेसे भी लिखना, छपना आदि बन्द रहा। अतएव हम अपने ग्राहकोंकी सेवामें चैत्र एवं वैशाखका दोनों ही अंक एक साथ भेज रहे हैं। अबसे विश्वनाथ आप सभी प्रेमीयोंके समीप नियमसे प्रतिमास आता रहेगा। अनिवार्य विलम्बके लिए हम ग्राहकोंसे क्षमा प्रार्थना करते हैं।

मैनेजर—

गुजरात-अहमदाबादके दो धर्मवीर-संत-सेवी

महाजन सेठ—

संसार परिवर्तन शील है। प्राणधारी कोई यहांके लिए रहा नहीं है, एवं रहेगा भी नहीं, 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' यह ध्रुव नियम है। संसारका सम्बन्ध क्षणभंगुर है, वास्तवमें संसारके पदार्थ, एवं सम्बन्धी परिवार कोई किसी के नहीं हैं। मनुष्य अकेला खाली हाथ आता है, एवं खाली हाथ अकेलाही जाता है। साथमें जाते हैं—सिर्फ धर्म और भजन दो हो। अतएव इस असार संसारमें उन्हीं महानुभावोंकी कीर्ति स्मरणरूपसे रह जाती है कि – जिन्होंने अपने अमूल्य जीवनमें धर्म एवं भजनकी सच्ची कमाई प्राप्त की है। जो इस लोकमें सत्पुरुषोंके द्वारा प्रशंसित होते हैं वे ही परमपिता जगदीश्वरके परम धाममें आदर पाकर अचल सुख-शान्तिके भागी बनते हैं।

आज हम अपने विश्वनाथके प्रेमी पाठकोंके समक्ष गुजरात—अहमदाबादके सद्गृहस्थ, धर्मनिष्ठ-भगवद्भजन परायण, साधुसेवी दो महाजन सेठोंका चित्रके साथ परिचय देते हैं। ये दोनों सज्जन 'विश्वनाथ' संस्थापक श्रीमत्परम-हंसपरिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज—महामण्डलेश्वरजीके अनन्य सेवक एवं कृपापात्र थे। इन दोनों महानुभावोंके धर्मनिष्ठा—ज्ञाननिष्ठा, साधुसेवा, प्रभुप्रेम, दान-वीरता आदि सद्गुणोंसे आकृष्ट होकर मण्डलेश्वर महाराजका इनसे घनिष्ठ-सम्बन्ध स्थापित हो गया था, अतएव इन दोनों महोदयोंका संक्षेपसे चरित्र चित्रण करना आवश्यक है—

कैलासवासी सेठ—बालाभाई

भगवद्भक्त, साधुसेवी, दानवीर, सेठ बालाभाई व्रजवल्लभदास का जन्म विक्रम सं० १९२७ में, गुजरातकी राजनगर अहमदाबादके एक वणिक् कुटुम्बमें हुआ था। बाल्यावस्थासे ही उनमें सत्संग, देवदर्शन, सन्तदर्शन आदि धार्मिकसंस्कारोंकी अनवरत वृद्धि होनेके कारण उनका जीवन, सात्त्विक, मधुर, शान्त, धर्ममय, नीतिमय एवं प्रभुमय हो गया था। विद्वान् विरक्त महात्माओंका सत्संग करना, उनके उपदेश प्रवचन सुनना, उनकी सेवा करना, उदारता पूर्वक सत्पात्र

को दान देना, शुभकार्यमें अन्य-साधारण लोगोंको भी प्रेरणा कर लगाना, सभीके साथ योग्यतानुसार प्रेमपूर्वक-सक्रिय सहानुभूति रखना, नियमपूर्वक भगवद्‌भजन करना एवं ज्ञान-चर्चा करना आदि-आदि उनमें कल्याणके साधन सद्‌गुणों को देखकर सभी व्यक्ति, उनकी तरफ स्वभावतः आकृष्ट हो जाती थी। और पूज्य महात्माओंका हार्दिक-आशीर्वाद भी उन्हीं गुणोंके द्वारा उनने प्राप्त किया था।

अहमदाबादमें पूज्य महामण्डलेश्वरजी महाराजका दिव्यदर्शन एवं दिव्यकथा एकवार सुनते ही हमारे उक्त सेठजी का महाराजके साथ जीवन पर्यन्तके लिए अचल प्रेम स्थापित हो गया था। अतएव उक्त सेठजीने महाराजजीको अहमदाबादमें अनेकों बार चातुर्मास कराया था, और अहमदाबादकी जनताको दिव्य-उपदेशामृतका अमूल्य लाभ प्राप्त कराया था। उक्त सेठजी की शुभ प्रेरणासे ही अहमदाबादमें साबरमती गंगाके तट पर परिव्राजकसंन्यासियोंके निवासार्थ, विशाल संन्यासाश्रम तथा काशी विश्वनाथ संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना हुई थी। इसप्रकार हमारे उक्त सेठजीने परोपकारके शुभ कार्योंमें अपने समग्र जीवनको लगाकर दया एवं प्रेमकी आदर्श शिक्षा संसारके सामने सक्रिय रूपसे रखकर, साधु-संन्यासी, ब्राह्मण-पण्डित, गरीब, दीन, दुःखी आदि की निष्कामभावसे ईश्वर-प्रसाद प्राप्त्यर्थ, तनसे मनसे एवं धनसे सेवाकर, सुख, शान्ति, समृद्धि, सन्तति, यश आदि ऐहलौकिक उन्नति प्राप्त कर, भक्ति, ज्ञान आदि पारमार्थिक उन्नति प्राप्त कर विक्रम सं० १९९३ के ज्येष्ठ बदी १० के प्रातः कालके ब्राह्ममुहूर्तमें हरि हरका स्मरण करते हुए भगवान्‌के परमधाममें आनन्दके साथ पधार गये।

कैलासवासी सेठ बालाभाईजीके सुपुत्र सेठ भोगीलाल भाई, ठाकोरलाल भाई तथा रमणभाई भी अपने पिताजीके धार्मिक आदर्शको स्मरणमें रखते हुए सदाचार एवं सद्विचारके पवित्र पथमें चल रहे हैं यही बड़ी ही प्रसन्नता की बात है।

कैलासवासी सेठ—मोतीलालजी

धर्मप्रेमी, साधुसेवी, कैलासवासी सेठ मोतीलालजीका जन्म अहमदाबादमें विक्रम सं० १ ०४ में हुआ था। आप भी बाल्यावस्थासे ही धर्म-परायण एवं प्रभु-भक्त थे। इसी धर्मके बलसे आपकी व्यापारिक-उन्नति उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गई, और आप अनेक प्रसिद्ध मील-कारखानोंको स्थापन कर धनकुबेर बन गये। तेलियामील, कोटनमील, बोरडीमील, मर्चन्टमील, विक्रममील, बिहारीमील, आदि मीलोंको अहमदाबादमें स्थापन कर अनेक गरीबोंकी आर्थिक संकट का निवारण किया।

आप दानवीर भी सर्वश्रेष्ठ थे। आपके हाथसे हजारों लाखोंका दान हो चुका था। संन्यासाश्रमकी संस्कृत विद्यालयमें आपकी तरफसे २५०००) का दान हुआ था। इसीप्रकार वैश्यसभामें ४१००० का, बहुचरादेवीके धाममें धर्मशालाके लिए २५०००) का, पानीकी बाढ़में पीड़ित लोगोंके लिये ३१०००) का विशेष रूपसे दान हुआ था। इसप्रकार अनेक धार्मिक संस्थाओंमें, दवाखानाओंमें गोशालामें आपकी तरफसे कई हजारों का दान हुआ था।

हमारे उपरोक्त सेठजी साधुसेवी एवं सत्संगी भी अद्वितीय थे। नियमसे आप महामण्डलेश्वरजी महाराजकी कथा सुनते थे। और उनसे वेदान्तके ग्रन्थोंका अध्ययनकर मनन एवं निदिध्यासन करते थे। सत्संगका प्रेम उनमें इतना जबरदस्त था कि—जब किसीसे सुन लेते थे कि—अमुक स्थानमें अमुक विद्वान् या विरक्त महात्मा आया है-उसी समय आप वहां पहुंच कर सत्संगका अलभ्यलाभ उठाते थे।

अहमदाबादके, साहसी व्यापारी

संतसेवी प्रभुभक्त

दानवीर सेठ मोतीलाल हीराभाई

जन्म सं० १९०४] [कैलासवास सं० १९९५

अहमदाबादके भगवद्भक्त धर्मनिष्ठ

दानवीर सेठ बालाभाई व्रजवल्लभदास

जन्म संवत् १९२७]   [कैलासवास संवत् १९९३

अतएव आपमें चार 'स' कार संगत्ति, संपत्ति, संमत्ति, एवं संतति पूर्णरूपसे निवास करते थे ।

(१) सत्संगतिका तो आपका सहज स्वभाव था । मान, बड़ाई, अभिमानको छोड़ कर सत्संगके लिए सब काम छोड़कर दौड़ पड़ते थे । गुसाईं तुलसीदासजीका यह दोहा आपमें चरितार्थ होता था—

संत मिलनको जाईये तज माया अभिमान ।
ज्यों ज्यों पग आगे धरे, कोटियज्ञ समान ॥

(२) सम्पतिमें तो आप कई करोडोंके अधिपति माने जाते थे ।

(३) आपके परिवारके सभी लोग आपकी सम्मतिका पूर्णरूपसे पालन करते थे ।

(४) सन्ततिमें आप साक्षात् प्रजापति थे पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रका परिवार आपके समक्ष विशेष-संख्यामें मौजूद था ।

आप श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ महामण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराजके अनन्य सेवक एवं कृपापात्र थे । शिवभक्ति तो आपमें मूर्तिमती होकर नाचती थी । अद्वैतज्ञानका पूर्ण निश्चय था । महामण्डलेश्वर महाराजकी कृपासे आपके हृदयमें 'शिवोऽहं' की भावना सदा पूर्णरूपसे निवास करती थी । अतएव आपने ऐहलौकिक उन्नतिके साथ पारमार्थिक उन्नतिको सम्पादन कर विक्रम सं० १९९५ के (ता० २८–२–३८) सोमवारको महाशिवरात्रीके पुनीत पर्वके समयमें रात्रिके बारह बजे आत्मस्वरूप कल्याणस्वरूप, सच्चिदानन्दरूप, शिवभगवान्‌का स्मरण करते हुए इस नश्वर शरीरको छोड़कर सदाके लिये उस शिव-शङ्करके अमरधाम ब्रह्मनिर्वाण-कैलासमें समागये, इस शिवरात्रिके समयमें होनेवाला अवसान ही आपके कैलासवासकी सूचना देता है ।

आपके पश्चात् आपके पुत्र सेठ हिम्मतभाई सेठ कन्हैयालाल, सेठ नृसिंहभाई, सेठ रमणभाई, सेठ रतनलालजी, आदि सभी सदाचारी सत्संगी एवं प्रभु प्रेमी हैं, इसे देखकर कौन सहृदय का भावुक हृदय आह्लादित न होगा ?

जसदण स्टेटकी राज-माता श्रीमती कमरी साहिबाजी
का कैलास वास

गुजरात–काठियावाड़के जसदण स्टेट की राज-माता श्रीमती कमरीमाँ साहिबा जी अतीव, गुरु-भक्ता, विवेकविचारशीला, एवं उदारचरिता थी। आप श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ प्रातःस्मरणीय महामण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज की शिष्या, अनन्यसेविका एवं कृपापात्री थी । गत-हरिद्वारके कुम्भ-पर्वमें आप श्रीगुरु-महाराजके तथा अन्यान्य सन्त-महात्माओंके दर्शन, सत्संग, भजन, गंगास्नान आदिका अमूल्य लाभ लेनेके लिऐ कनखल स्वा० सुरतगिरिजी महाराजके बंगलेमें पधारी थी। आठ रोजके बाद ही आप चैत्र शुक्ल ३ रविवार ता० ३ । ४ । ३८ के दिनमें हार्टफैल होजानेके कारण अकस्मात् कुछ ही मिनिटोंमें हरिद्वार-कनखलके पवित्र गंगा तट पर अपने गुरु महाराजके समक्ष इस नश्वर शरीरको छोड़कर भगवान् श्रीशङ्करमहादेवके अमर-धाम कैलासमें पधार गई ।

आपकी बड़ी ही ऊँच भावनाएँ थी । आप काशी वास करना चाहती थी, तथा काशीमें महात्माओंके निवासार्थ एक विशालकोठी, अन्न क्षेत्र तथा श्रीशङ्करका मन्दिर बनाकर अलभ्य लाभ एवं अमरकीर्ति प्राप्त करना चाहती थीं । इसलिये काशीमें मकान बनवानेके लिए मकानका नकसा जसदणसे ही तैयार करके साथ लाई थी । परन्तु प्रारब्धके विलक्षण-योगसे राज-मातु श्री मां साहिबाका यह संकल्प पुरा न हो सका। भगवान् शंकरको कुछ ओर ही मन्जूर था । इस असार संसारके क्षणिक एवं तुच्छ सम्बन्धको तोड़कर भगवान् अपने समीपमें ही आपको रखना चाहते थे । अतएव 'बलीयसीकेवलमीश्वरेच्छा' यह कह कर ही सन्तोष मानना पड़ता है । सर्वान्तर्यामी भगवान् विश्वनाथजीसे हम प्रार्थना करते हैं कि—भगवान् उनकी आत्माको परम शान्ति प्रदान करें । आपके वियोगसे दुःखी आपकी माता जीवापुरकी श्रीमती कुंवरी मां साहिबाको तथा आपके सुपुत्र श्रीमान् महाराज साहबको तथा आपके सभी परिवारको भगवान् श्रीविश्वनाथ धैर्य प्रदान करें, यही भगवान्‌से विनम्र प्रार्थना है ।

पढ़िये और ध्यान दीजिये

विश्वनाथके प्रेमी ग्राहकोंको सूचना

यह चतुर्थवर्षका द्वितीय एवं तृतीय अंक एकसाथ आपकी सेवामें आ रहा है। जिन महानुभावोंने चतुर्थवर्षका चन्दा भेजा नहीं है, वे म॰निओडरसे चन्दा भेजनेकी शीघ्रही कृपा करें। जिनको इस चतुर्थ वर्षका 'विश्वनाथ पत्र' नहीं मँगाना हो, वे महाशय कृपया कार्यालयमें निषेधकी पत्र द्वारा सूचना भेज दें, ताकि कार्यालयको व्यर्थ ही वी–पी का खर्च न उठाना पड़े, निषेधका पत्र नहीं आने पर चतुर्थ-अंक वी॰ पी॰से भेजा जायगा। अतएव रुपैया देकर वी-पी आप महानुभावोंका अवश्य छुडानी चाहिये। आपको बिदित है कि–विश्वनाथ निःस्वार्थभावसे केवल धर्मप्रचारार्थ निकाला जा रहा है, कीमत भी कम है, और किसी विज्ञापन आदिकी आमदनी भी नहीं है, इसलिये बिश्वनाथके कार्य में बडी कठिनई पड रही है, अतः प्रत्येक विश्वनाथ प्रमियोंसे प्रार्थना है कि–कमसे कम २-२ ग्राहक और बनानेकी चेष्टा करें। केवल हिन्दी वालोंको २) रु॰ भेजना चाहिये, तथा गुजराती फर्मा बिशेष होनेके कारण २॥) रु॰ गुजरातियोंको भेजना चाहिये।

विषयानुक्रमणिका

विषय — पृष्ठ संख्या

ॐ नमो विश्वस्वरूपाय, विश्वस्थित्यंन्तहेतवे । विष्णवे विश्वनाथाय, विश्वेश्वराय ते नमः ॥

पुस्तक ४ } काशी, चैत्र १९९४ मार्च १९३८ { अंक २

लक्ष्मणजीका सदुपदेश

बोले लखन मधुर मृदु-बानी, ज्ञान-विराग भगति-रस खानी।
काहु न कोउ सुख दुःखकर दाता, निज कृत करम भोग सुनु भ्राता ॥
योग-वियोग भोग भल-मन्दा, हित-अनहित मध्यम भ्रम फंदा।
जनम-मरन जहँ लगि जग जालू, सम्पति विपति करम अरु कालू ॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू, सरग नरक जहँ लगि व्यवहारू।
देखिय सुनिय गुनिय मन माँही, मोह-मूल परमारथ नाँही ॥
सपने होइ भिखारि नृप, रङ्क नाकपति होई ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपञ्च जिय जोई ॥
अस विचारि नहिं कीजिय रोषू, काहुहि बादि न देइय दोषू।
मोह-निशा सब सोवन हारा, देखिय सपन अनेक प्रकारा ॥
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी, परमारथी प्रपञ्च वियोगी।
जानिय तबहिं जीव जग जागा जब सब विषय-विलास विरागा ॥
होइ विवेक मोह-भ्रम भागा, तब रघुनाथ-चरन अनुरागा।
सखा परम-परमारथ एहू, मन-क्रम बचन राम-पद नेहू ॥
राम ब्रह्म परमारथरूपा, अविगत अलख अनादि अनूपा।
सकल विकार रहित गत-भेदा, कहि नेति-नेति निरूपहिं बेदा ॥

—गोस्वामी तुलसीदास

गीता क्या सिखला रही है ?

(लेखक— ब्रह्मनिष्ठ परमहंस स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी महाराज)

(१)

गीता यही सिखला रही है, युद्ध करना चाहिये ।
संग्राममें उत्साहसे जी तोड़ लड़ना चाहिये ॥
कर्तव्य करनेसे कभी किञ्चित् न डरना चाहिये ।
दे शत्रुओंको मार अथवा आप मरना चाहिये ॥

(२)

अभ्यासमें वैराग्यमें, मनको लगाना चाहिये ।
जो आप हैं या अन्य सबको, जान लेना चाहिये ॥
एकैक करके अन्य सबको मार देना चाहिये ।
माया किलेको तोड़कर स्वाराज्य लेना चाहिये ॥

(३)

परधर्ममें ना भूलकर भी, पैर धरना चाहिये ।
निज-धर्ममें हो मृत्यु तो, निःशङ्क मरना चाहिये ॥
जो कुछ करे विश्वेशको सब अर्प देना चाहिये ।
सुख देय अथवा दुःख दे, विश्वेश,सहना चाहिये ॥

(४)

हरि-हेतु खाना चाहिये, हरि हेतु पीना चाहिये ।
जलमें कमलका पत्र, त्यों निर्लेप जीना चाहिये ॥
मन शुद्ध गंगा नीर सम, निर्मल बनाना चाहिये ।
कंसारि या कामारिको, उसमें बसाना चाहिये ॥

(५)

रागादि दुर्गुण छोड़कर सम-शान्त होना चाहिये ।
मन जोड़ पावन ब्रह्ममें, पापौघ धोना चाहिये ॥
सुखमें कभी हँसना नहीं, दुःखमें न रोना चाहिये ।
निर्द्वन्द्व हो निश्चिन्त हो, सुख-नींद सोना चाहिये ॥

(६)

नरदेह ब्राह्मणदेह ना निष्फल गुमाना चाहिये ।
आ मोक्ष द्वारे अन्ध सम ना चक्र खाना चाहिये ॥
चढ़ मेरु पर नीचे न अपनेको गिराना चाहिये ।
विद्वज्जनोंमें हास्य ना अपना कराना चाहिये ॥

(७)

आलस्य को वैरी समझ, तनसे भगाना चाहिये ।
कंदर्प कट्टर शत्रुको मनसे भगाना चाहिये ॥
कायरपनेका शिर कुचलकर वीर बनना चाहिये ।
करके तितिक्षा मोक्ष इच्छा धीर बनना चाहिये ॥

(८)

सुत दारमें परिवारमें, ना मन लगाना चाहिये ।
ना देहमें आसक्त हो निज सुख भुलाना चाहिये ॥
शब्दादिमें फँस मृत्यु ना अपना बुलाना चाहिये ।
ब्रह्मात्मअद्भुत स्वादनिज मनको चखानाचाहिये ॥

(९)

बाहर कभी भी इन्द्रियाँ, जाने न देना चाहिये ।
मनमें जगत्की वासना, आने न देना चाहिये ॥
देहादिसे चेतन स्वयं कर भिन्न लेना चाहिये ।
मन माँहि जितनी गांठ हैं, सब तोड़ देना चाहिये ॥

(१०)

सब धर्म भोला! तज, न अब लड़ना लड़ाना चाहिये ।
मायी महेश्वर सारथी, माधव बनाना चाहिये ॥
लड़ना लड़ाना कृष्णसे ही,—सब कराना चाहिये ।
अर्जुन हँकाया तब, तुझे अब रथ हँकाना चाहिये ॥

(हरिगीत छन्द)

पूज्यपाद स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराजके

सदुपदेश

'सर्वका संग्रह करो, विश्वरूपके संग्रही बनो. जिसने अपनी आत्माको साढ़े तीन हाथकी अल्पसीमासे हटाकर विश्वरूप धारणकर जो 'सोऽहं सर्वम्' की दिव्य मस्तीमें झूमता है, वही सर्वसंग्रही है'।

'जैसे-जैसे अभ्यासके द्वारा मनकी स्थिरता होती जायगी, वैसे-वैसेही प्राण, वाणी और नेत्र भी स्थिर होते चले जायेंगे।'

'जैसे कौड़ी-कौड़ी जोड़ते रहनेसे दरिद्र भी कुछ वर्षोंमें लक्षाधीश हो सकता है, उसी प्रकार नित्यप्रति यथाशक्य जपध्यानादिके अभ्यास करते रहनेसे कुछही वर्षोंमें साधकको समाधि लाभ हो सकता है।'

'तत्परता एवं दृढ़निश्चयही सफलताकी कुञ्जी है।'

'अच्छी-अच्छी भाव-पूर्ण कविताएं बना लेना, मनोहर लेख लिख देना, पाण्डित्य प्रकाशक ग्रन्थ रच डालना, ओजस्वी-व्याख्यान दे देना, ये सब एक प्रकारकी कलाएं हैं, इनका फल संसार की वाहवाही है, 'भुक्तये न तु मुक्तये।'

'पूजा, प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि, ये सब महात्माओंकी ही हो सकती है, यह नियम नहीं, अमहात्माओंको भी ये प्राप्त हो सकती हैं।'

'मनुष्य अपने झूठे अभिमानसे दुःखी होता है, आनन्द तो उसे तब ही मिलेगा, जब उसका त्याग होगा।'

× × × ×

'विद्याका फल है अविद्या निवृत्ति, जिस विद्यासे अविद्या-निवृत्त न हो, वह विद्या ही क्यों होगी?'

'विद्वान्को विरक्त ही होना चाहिये। धन-लोभी विद्वान् शोभा नहीं पाता। वित्त-लम्पट विद्वान्की शास्त्रोंने बड़ी ही निन्दा की है'—

'रागिणी गणिका वित्तं यद्वाञ्छति वरा हि सा।
धिक् तं वैराग्यवक्तारं वाचालं वित्तलम्पटम्॥'
[बोधसार]

रागिणी वेश्याका धन चाहना तो किसी प्रकारसे ठीक हो सकता है, परन्तु जो ऊपरसे वैराग्यका उपदेश करते हैं, और अन्दरसे धन-लम्पट हैं, ऐसे वाचाल-वञ्चकोंको धिक्कार है।'

'यदि वित्तार्जनेनैव विद्वांसो यान्ति गौरवम्।
कस्तर्हि वेश्याविदुषोर्विशेष इति वर्णय॥
[बोधसार]

यदि धन-कमानेसे ही विद्वान् गौरवको प्राप्त होते हैं, तो धन-कमानेमें एक सी चतुरता रखने वाले विद्वान् और वेश्यामें क्या अन्तर है? यह तो बताओ।'

× × × ×

'आपदर्थे धनं रक्षेत्' का अभिप्राय कुछ विलक्षण है, वह यह है कि—धनं रक्षेत् चेत् तद्धनमापदर्थेस्यात्' अथवा अर्थे आपत् = नाशोनियतः।' अर्थात् यदि लोभी बनकर धन जोड़ोगे तो उससे तुम्हारा नाश होगा, तुम पर आपत्ति आयेगी, लोक-परलोक दोनोंसे भ्रष्ट होगे। अथवा धनका नाश अवश्यं भावी है ही, अतः 'पात्रे स्थितं धनं भद्रं' अर्थात् सत्पात्रको दिया हुआ धन कल्याणकारी होता है, यहां पात्रका अभिप्राय श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, सत्पात्र महापुरुषों से है।'

× × × ×

'मुमुक्षु तितिक्षु होता है, कष्टोंसे, निन्दासे, अपमानसे, किसीकी कड़ी आलोचनासे, वह घबराता नहीं, जो मोक्ष प्राप्तिके मार्गमें आनेवाले कष्टोंको देखकर आनन्दित होता है, वही यथार्थमें मुमुक्षु है।'

'मुमुक्षु निर्मम होता है' 'क्व ममत्वं मुमुक्षुणाम्' ममता ही बन्धन है, दुःख है। निर्ममत्व ही मुक्ति है, सुख है। कहा है—

द्वे पदे बन्धमोक्षस्य, ममेति न ममेति च।
ममेति बध्यते जन्तुर्नममेति च मुच्यते॥

बस, शास्त्रोंके, महात्माओंके उपदेशोंसे यही समझना है।'

'सब कुछ भगवान्का समझकर मुनीमके माफिक काम करो, तमाम आफतोंसे बच जाओगे।'

× × ×

'इस सर्व-श्रेष्ठ मनुष्य-देहकी दुर्लभ एवं अमूल्य आयुसे जिसने आत्मा और अनात्माका यथार्थ विवेक नहीं प्राप्त किया, उसकी आयु व्यर्थ ही जाती है, इससे बढ़कर और कोई हानि नहीं हो सकती।' आचार्य-पादने कहा है—

आयुः क्षणलवमात्रं न लभ्यते हेमकोटिभिः क्वापि।
तच्चेद्गच्छति सर्वं मृषा ततः काऽधिका हानिः॥

क्षण और पलभरकी आयु भी करोड़ों सुवर्ण-मुद्राओंके बदलेमें कभी कहीं भी नहीं मिल सकती। यदि ऐसी अमूल्य एवं दुर्लभ आयु मोक्ष-प्राप्तिमें न लगकर व्यर्थ ही चली गयी तो इससे बढ़कर और क्या हानि होगी?

× × ×

'शिव! शिव!! भ्रान्तमनुष्य मल-मूत्रके पुतलेमें कैसा आसक्त हो रहा है, नासिकासे एवं मुखसे कफका तथा गुदासे मलका त्याग करते समय इस शरीरसे स्वयं भी घृणा मानता है, तथापि रमणीय-बुद्धिका त्यागकर उससे उपराम होना नहीं जानता।'

'एवंविधोऽतिमलिनो देहो यत्सत्तया चलति।
तं विस्मृत्य परेशं वहत्यहंतामनित्येऽस्मिन्॥'

ऐसा महामलिन देह जिसकी सत्तासे चलता है, उस परमात्माको भूलकर इस अनित्य और अपवित्र देहमें भ्रान्तलोग 'अहंबुद्धि' करते हैं, यह बड़ा भारी दयनीय विषय है।'

'परन्तु विवेक-विचारशील-महापुरुष—

क्वाऽऽत्मा सच्चिद्रूपः क्व मांसरुधिरास्थिनिर्मितो देहः।
इति यो लज्जति धीमानितरशरीरं स किं मनुते॥

कहाँ तो सत् और चिद्रूप आत्मा और कहाँ अस्थि, माँस और रुधिर आदिका बना हुआ यह अतिघृणित-देह? ऐसा विवेकसे निश्चयकर अपनी प्राथमिक-मूर्खताके लिये लज्जित होता है, अतः वह अपने शुद्धात्मासे अत्यन्त-भिन्न शरीरमें अहंबुद्धि कैसे कर सकता है?।'

× × ×

'अग्निमूलं बलं पुंसाम्' शारीरिक-बलका कारण है पाचकाग्नि, और 'रेतोमूलञ्च जीवनम्' जीवनका कारण है—वीर्य-पुष्टि। अतएव हित-मित-मेध्य-आहारसे पाचकाग्निकी, तथा ब्रह्मचर्यव्रतके द्वारा वीर्य-पुष्टिकी रक्षा करनी चाहिये।'

'वीर्यवान् मनुष्य ही विक्रमी, तेजस्वी, प्रतापी, धैर्यवान्, क्षमावान्, शीलवान्, गम्भीर एवं सत्य-द्रष्टा होते हैं, विक्रमादि समस्त गुण वीर्य-पुष्टिके ही आश्रित हैं, वीर्य-ह्राससे इन समस्त गुणोंका ह्रास हो जाता है; अतः दिव्य-जीवन-ज्योति जगमगानेके लिये वीर्य-रक्षा परम आवश्यक है।'

× × ×

भक्त भगवान्को ही चाहता है, संसारासक्त भक्त नहीं हो सकता, भक्तके मन, प्राण आदि सब कुछ भगवदनुरागी हो जाते हैं, अतएव उनमें कामादि दोषोंकी गन्ध भी नहीं रह सकती। भक्त, भगवान्को छोड़कर भोग एवं मोक्षको भी तुच्छ समझता है। भगवान् ऐसे भक्तोंके लिए स्वयं कहते हैं—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥

[श्रीमद्भा० १०।४६।४]

हे उद्धव! गोपियोंने अपने मन और प्राण मुझमें अर्पण कर दिये हैं, मेरे लिए अपने समस्त शारीरिक सम्बन्धोंको और लोक-सुखके साधनोंको त्यागकर वे एकमात्र-मुझमें ही अनुरक्त हो रहीं हैं, मैं ही उनके सुख और जीवनका आधार हो रहा हूँ, अतः मैं उनकी सर्वप्रकारसे रक्षा करता हूँ।

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा, मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

[श्रीमद्भा० ११।१४।१४]

अपने आत्माको—सर्वस्वको मुझमें अर्पण करनेवाला भक्त, मुझको छोड़कर ब्रह्म-पद, इन्द्र-पद, चक्रवर्ती-पद, पाताल आदिका राज्य, और योगके आठों ऐश्वर्य आदिकी तो बात ही क्या है ? अपुनरावर्ती-मोक्ष भी नहीं चाहता ।'

× × ×

(क्रमशः)

योगतत्त्व-मीमांसा

(लेखक—श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामीजयेन्द्रपुरीजी महाराज मण्डलेश्वर)

(प्रथमखण्ड पूर्वप्रकाशितसे आगे)

वैदिक-यज्ञोंके फलके विषयमें कहा है—

'अपाम सोमममृता अभूम ।'

'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति ।'

'सर्वान् लोकान् जयति, मृत्युं तरति, पाप्मानं तरति, ब्रह्महत्यां तरति, योऽश्वमेधेन यजते ।' इत्यादि ।

देवगण स्वर्गमें गान करते हैं—हमने प्रथम यज्ञोंका-सोमपान किया था, जिससे हम (अमृत) अमर हो गये हैं । चातुर्मास्य नामक यज्ञ—कर्ताको अक्षय्य—पुण्यकी प्राप्ति होती है । अश्वमेध नामक यज्ञका कर्ता, समस्त भूरादि लोकोंका विजय करता है, मृत्यु, पाप एवं ब्रह्म-हत्यासे उत्तीर्ण होता है ।

वेद पांच भागोंमें विभक्त ह; विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद ।

(१) जिन वाक्योंके द्वारा कर्तव्यका विधान किया जाता है, उनको विधिवाक्य कहते हैं; जस 'स्वर्गकामोयजेत्' इत्यादि । यह विधि तीन प्रकारकी है । अपूर्व, नियम और परिसंख्या । अपूर्व विधिके चार भेद हैं—उत्पत्ति, विनियोग, प्रयोग एवं अधिकार ।

(क) जिसमें केवल कर्म मात्रका विधान किया जाता है, उसे 'उत्पत्तिविधि' कहते हैं, जैसे 'अग्निहोत्रं जुहोति' इत्यादि ।

(ख) किस प्रकारसे किस द्रव्यसे और किस लक्ष्यसे होम करना चाहिये ? इसका निरूपण करनेवाली विधिको 'विनियोगविधि' कहते हैं । जैसे 'दध्ना जुहोति' इत्यादि, ।

(ग) किस यज्ञमें किस क्रियाके बाद किस क्रियाका अनुष्ठान करना चाहिये ? इसका निरूपण करनेवाली विधिका नाम 'प्रयोगविधि' है । जैसे 'अग्निहोत्रं जुहोति' 'यवागूं पचति' इत्यादि ।

(घ) किस यज्ञका कौन अधिकारी है ? इसका निरूपण करनेवाली विधिका नाम 'अधिकारविधि' है । जैसे 'स्वाराज्यकामो राजा राजसूयेन यजेत' इत्यादि अर्थात् राजसूय यज्ञ करनेमें स्वाराज्यकी कामनावाला राजपदाभिधेय क्षत्रियका ही अधिकार है ।

अब नियम और परिसंख्या विधिका स्वरूप बतलाते हैं—

(क) जिस कार्यको करनेके लिये मनुष्य कई प्रकारसे प्रवृत्त हो सकता है, उस कार्यको अमुक प्रकारसे ही करना चाहिये, अमुक प्रकारसे नहीं करना चाहिये, ऐसी प्रवृत्तिको नियमन करनेवाली-विधिको 'नियमविधि' कहते हैं । जैसे 'व्रीहीनवहन्यात् न तु विदलयेत्' अर्थात् यज्ञीय व्रीहि (धान) को तुष (छिलका) से रहित करनेके लिये उनका अवहनन ही करना चाहिये, नाखूनोंसे उनके छिलके नहीं उतारने चाहिये ।

(ख) जिस विधिसे मनुष्योंकी उच्छृङ्खल-प्रवृत्तिका संकोच किया जाता हो, अर्थात् जिसका श्रुतार्थमें तात्पर्य न होकर, किन्तु अश्रुतार्थ-निषेधमें तात्पर्य हो, उसे 'परिसंख्याविधि' कहते हैं। जैसे 'प्रोक्षितं मांसंभुञ्जीत' अर्थात् यज्ञमें मन्त्र द्वारा संस्कृत माँस खाना चाहिये। इस वाक्यमें संस्कृतमाँस खानेका विधान नहीं है। किन्तु असंस्कृत माँस खानेका निषेध है। विधान तो अपूर्व-अर्थका होता है, जो स्वभावसे प्राप्त है, उसका विधान शास्त्र क्यों करेगा? और यह वाक्य सात्त्विक-मनुष्योंके लिये नहीं है, किन्तु राजस-तामस मनुष्योंके लिये है। तामसीमनुष्य सहसा माँस भक्षणसे निवृत्त नहीं हो सकता है, यथेष्ट-माँसभक्षणमें वह प्रवृत्त है। अत एव शास्त्र, उस मनुष्यकी हिंसामयी माँस-भक्षणप्रवृत्तिको शनैः-शनैः कम करनेके लिये कहता है—ऐ तामसी मनुष्य! अगर तुझे माँस-भक्षण करना है, तो यज्ञीय संस्कृत माँसका भक्षण कर, यज्ञ-बहिर्भूत-असंस्कृत माँसका यथेष्ट-भक्षण करना तू छोड़ दे। अत एव मनुष्यको आसुरी-सम्पत्तिसे हटाकर दैवीसम्पत्तिमें प्रवृत्त करानेवाले शास्त्रका तात्पर्य, यज्ञीय-संस्कृत माँस-भक्षण करानेमें भी कदापि नहीं हो सकता। किन्तु माँस-भक्षणसे सर्वथा निवृत्त करनेके लिये संस्कृत माँस-भक्षणकी अनुमतिद्वारा असंस्कृत माँस-भक्षणका निषेध करनेमें ही तात्पर्य है। इसीका नाम परिसंख्याविधि है।

अब मन्त्र, नामधेय, निषेध, और अर्थवादका स्वरूप बतलाते हैं—

(२) यज्ञमें उद्दिष्ट देवताओंके आवाहनके लिये अथवा स्तुतिके लिये प्रयुक्त वैदिक वाक्योंको मन्त्र कहते हैं। जस 'अग्निमीडे पुरोहितम्' इत्यादि मन्त्रोंके उच्चारणमें क्रमभङ्ग, शब्दविपर्यय, स्वरका अज्ञान आदि दोष होनेसे वे मन्त्र फल साधक नहीं होसकते, किन्तु कभी-कभी अशुद्ध-उच्चारणसे लाभके बजाय हानि हो जाती है। अत एव महाभाष्यमें व्याकरणमहाभाष्यकार महर्षिपतञ्जलिजी कहते हैं—

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

अर्थात् स्वरसे या वर्णसे, दुष्ट या मिथ्या-प्रयोगसे युक्त वेदमन्त्र, अभीष्ट-कल्याणार्थको न सम्पादन कर प्रत्युत वह वाग्वज्र होकर यजमानको हानि पहुँचाता है। जिसप्रकार 'इन्द्रशत्रु' मन्त्रमें स्वरके दोषसे यजमानकी हानि हुई थी। अत एव वैदिक मन्त्रोच्चारण, स्वरसे एवं वर्णसे, शुद्ध करना चाहिये।

(३) जिस मन्त्रमें यज्ञका नामनिर्देश किया हो उसे 'नामधेय' वाक्य कहते हैं। जैसे 'उद्भिदा यजेत पशुकामः' इत्यादि। इस मन्त्रमें पशुओंकी कामनावाले मनुष्यके लिये 'उद्भिद्' नामक यज्ञका विधान किया है।

(४) जिस वाक्यसे अकर्तव्यका निषेध किया गया हो, उसे 'निषेधवाक्य' कहते हैं। जैसे 'मा दिवा स्वाप्सीः' 'परदारान्न गच्छेत्' 'सुरां न पिबेत्' दिनमें नींद नहीं लेनी चाहिये, परस्त्री गमन नहीं करना चाहिये, शराब नहीं पीना चाहिये, इत्यादि।

(५) जिस वाक्यसे विधेयकी प्रशंसा तथा निषेधकी निन्दा होती हो, उसे 'अर्थवाद' कहते हैं। वह 'अर्थवाद' तीन प्रकारका है, गुणवाद, अनुवाद एवं भूतार्थवाद।

(क) जिस वाक्यमें विरोध प्रतीत होता हो, परन्तु उस वाक्यको प्रामाणिक करनेके लिये सादृश्यादि लक्षणासे विरोधका निरास किया जाता हो, उसे 'गुणवाद' कहते हैं। जैसे 'आदित्यो यूपः' इत्यादि। यूप नाम काष्ठनिर्मित यज्ञीयस्तम्भ विशेषका है। वह आदित्य-(सूर्य) कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता, अतः आदित्य पदकी आदित्य—सदृश उज्ज्वल गुणविशिष्टमें

लक्षणाकर उस वाक्यका 'यज्ञीययूप आदित्यके सदृश उज्ज्वल है' ऐसा अर्थ किया जाता है ।

(ख) जिस पदार्थको सब लोग प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे जिस प्रकार जानते हों, उस पदार्थको उसी प्रकार कहना, उसे "अनुवाद" कहते हैं । जैसे "अग्निर्हिमस्य भेषजम्" इत्यादि । अर्थात् अग्नि शीत-निवारणकी औषधी है, यह सभी लोग प्रत्यक्ष जानते हैं, अतः इस वाक्यको ज्ञातवस्तुका ज्ञापक होनेके कारण अनुवाद वाक्य कहते हैं ।

(ग) जिस वाक्यमें न तो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका विरोध हो, एव न उनकी सम्मति हो, किन्तु जो वाक्य अदृष्ट-पदार्थका सिद्धरूपसे निरूपण करते हों, उनको 'भूतार्थवाद' वाक्य कहते हैं । जैसे 'इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्' इत्यादि ।

इस प्रकार पूर्वमीमांसाशास्त्र वैदिक कर्मानुष्ठानसे अन्तःकरणकी शुद्धि द्वारा मनुष्यको ज्ञान-प्राप्तिके लिये योग्य बना देता है ।

उत्तर मीमांसा शास्त्र

इस शास्त्रके प्रणेता हैं महर्षि वेदव्यास । इसे 'वेदान्त दर्शन' एवं 'ब्रह्मसूत्र' भी कहते हैं । वेदान्त नाम ब्रह्मविद्यानिरूपक उपनिषदोंका है । वेदोंका अंतिम रहस्य विज्ञान जिनमें पूर्णरूपसे भरा हो, उन्हें उपनिषद् कहते हैं । उपनिषद् ही वेदोंका ज्ञान-काण्ड है । उन्हीं उपनिषद् वाक्योंके तात्पर्यका युक्ति-प्रमाण द्वारा आलोचन करनेवाले शास्त्रका नाम ही उत्तर-मीमांसा शास्त्र है । ब्रह्म-परमात्मा ही इसका मुख्य-प्रतिपाद्य विषय होनेके कारण इसका नाम ब्रह्मसूत्र पड़ा है । अत एव यह 'वेदान्त-दर्शन' ही सब दर्शनोंमें विशेषरूपसे द्रष्टव्य—श्रद्धेयतम दर्शन है । सभी दर्शनोंमें यही दर्शन, शिरोमणि एवं सार्वभौम है । इस दर्शनका वस्तुतः प्रतिपाद्य तत्त्व अद्वैत ही है । इसके ऊपर आचार्य श्रीमच्छङ्करभगवत्पादप्रणीत, प्रसन्न एवं गम्भीर शारीरिक भाष्य है । इस भाष्यके ऊपर पंचपादिका, विवरण, तत्त्वदीपन, भामती, कल्पतरु, परिमल, न्यायनिर्णय, ब्रह्मविद्याभरण, रत्नप्रभा, आदि अनेक प्रसिद्ध टीका ग्रन्थ हैं । जिनमें अद्वैत—तत्त्वका विशद एवं प्रचुर वर्णन है ।

केवल ब्रह्मसूत्रोंका ही अद्वैतमें तात्पर्य है ? यह बात नहीं, किन्तु उनका मूल उपनिषच्छ्रुतियोंका तथा श्रुत्यनुसारी स्मृति, पुराण, महाभारत आदि सभी शास्त्रोंका परमतात्पर्य अद्वैतमें ही है । अत एव किसी महानुभावने क्याही अच्छा कहा है——

ब्रह्मात्माद्वैततत्त्वे श्रुतिशिखरगिरामागमानाञ्च निष्ठा ।
साकं सर्वैः पुराणस्मृतिनिकरमहाभारतादिप्रबन्धैः ॥
तत्रैव ब्रह्मसूत्राण्यपि च विमृशतां भान्ति विश्रान्तिमन्ति ।
प्रत्नैराचार्यरत्नैरपि परिजगृहे शङ्कराद्यैस्तदेव ॥

इस दर्शनमें चार अध्याय एवं प्रत्येक अध्यायमें चार-चार पाद हैं । प्रथम अध्यायका नाम समन्वयाध्याय है श्रुतिवाक्योंका साक्षात् एवं परम्परासे अद्वैततत्वमें ही समन्वय करनेसे इसे 'समन्वयाध्याय' कहते हैं । इसके प्रथमपादमें स्पष्ट ब्रह्मलिङ्ग बोधक श्रुति समुदायका, द्वितीयपादमें अस्पष्ट ब्रह्मलिङ्ग-बोधक श्रुतिसमुदायका तृतीय पादमें उपास्य ब्रह्मलिङ्ग बोधक श्रुतिसमुदायका एवं चतुर्थपादमें प्रधान (प्रकृति) विषयत्वेन संदिह्यमान 'अव्यक्त' अज आदि श्रुतिसमुदायका प्रत्यगभिन्न अद्वितीय—ब्रह्मतत्त्वम समन्वय किया है ।

द्वितीय अध्यायका नाम 'अविरोधाध्याय' है । इस अध्यायमें प्रथमाध्यायोक्त ब्रह्मसमन्वयमें विरोधरूपसे सम्भावित अन्यान्य दार्शनिक तर्कोंका खण्डन करके युक्ति-प्रमाण द्वारा ब्रह्मसमन्वयका अविरोध प्रतिपादन किया है । इसके प्रथमपादमें स्वसिद्धान्तकी प्रतिष्ठाके लिये सांख्ययोगकणाद आदि द्वैतवादियोंके तर्कों द्वारा प्राप्त-

वेदान्तसमन्वयके विरोधका परिहार किया है। द्वितीयपादमें स्वपक्षस्थानपूर्वक विरोधी परपक्षमें दोषोंका प्रतिपादन किया है। तृतीयपादमें सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियोंका तथा जीव प्रतिपादक श्रुतियोंका आपाततः प्रतीयमान परस्पर विरोधका निरास किया है। और चतुर्थ पादमें इन्द्रियादि बोधक श्रुतियोंके विरोधका समाधान किया है।

तृतीय अध्यायका नाम 'साधनाध्याय' है। इसमें जीव एवं ब्रह्मके लक्षणोंका निर्देश करके मोक्षके वहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग साधनोंका वर्णन किया गया है।

इसके प्रथमपादमें जीवका परलोकगमन निरूपण द्वारा वैराग्यसाधनका प्रतिपादन किया है। द्वितीय पादमें त्वं एवं तत्पदार्थका शोधन किया है। तृतीयपादमें निर्गुण-ब्रह्ममें अनेक शाखापठित पुनरुक्तपदोंका उपसंहार, तथा प्रसंगवश सगुण ब्रह्ममें अनेक शाखापठित गुणोंका उपसंहार एवं अनुपसंहारका निरूपण किया है। एवं चतुर्थ पादमें निर्गुण-ब्रह्मविद्याके बहिरंग साधन, आश्रमधर्म, यज्ञ, दान आदिका वर्णन, तथा अंतरंगसाधन शम, दम, मनन, निदिध्यासन आदिका वर्णन किया है।

चतुर्थ अध्यायका नाम 'फलाध्याय' है। इसमें सगुण ब्रह्मविद्या तथा निर्गुणब्रह्मविद्याके फलोंका सपरिकर विशेष निर्णय किया है। इसके प्रथमपादमें निर्गुणब्रह्मका श्रवणादि साधनोंके अभ्यास द्वारा तथा सगुणब्रह्मका उपासनाके द्वारा साक्षात् अपरोक्ष करके जीवन-दशामें पुण्यपापादि दोषोंके अलेपरूपा जीवन्मुक्तिका वर्णन किया है। द्वितीयपादमें मरनेवाले प्राणियोंके उत्क्रान्तिप्रकारका चिन्तन किया है। तृतीयपादमें सगुणब्रह्मोपासकके उत्तरायणमार्गका निरूपण किया है। एवं चतुर्थपादमें निर्गुणब्रह्मवेत्ताकी विदेहकैवल्य प्राप्तिका वर्णन, तथा सगुणब्रह्मोपासककी ब्रह्मलोकस्थितिका वर्णन किया हैं।

वेदान्तदर्शनका प्रथमसूत्र है—

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'

अथ यानी साधनचतुष्टयकी प्राप्तिके अनन्तर, अतः यानी यतः स्वयं वेदभगवान् ही ब्रह्मलोकपर्यन्त यावत् कर्मफलरूप नामरूपात्मक संसारको अनित्य एवं मिथ्या बोधन करता है, और एकमात्र ब्रह्मविज्ञानसे ही परमपुरुषार्थरूप, सच्चिदानन्दब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्ष प्रतिपादन करता है, अतः ब्रह्मज्ञानके लिये अधिकारी पुरुषको एकमात्र वेदान्तशास्त्रका ही विचार करना चाहिये।

ब्रह्मका तटस्थ लक्षण कहनेवाला द्वितीय सूत्र है—

'जन्माद्यस्य यतः'

जिससे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय होता है, उसे ब्रह्म कहते हैं।

तृतीय एवं चतुर्थ सूत्र है—

'शास्त्रयोनित्वात्'

'तत्तु समन्वयात्'

ब्रह्मपरमात्मा ऋगादि सकल शास्त्रोंका कारण होनेसे सर्वज्ञ है। अथवा, ब्रह्ममें केवल मुख्य शास्त्र ही प्रमाण है, अर्थात् वह केवलशास्त्रसे समधिगम्य है। तमामशास्त्रोंके परम तात्पर्यका विषय एकमात्र ब्रह्म ही हैं, अतः उसमें ही साक्षात् अथवा परम्परासे सकल शास्त्रोंके वचन समन्वित होजाते हैं।

ब्रह्मके स्वरूप लक्षण प्रतिपादन करनेवाले सूत्र हैं।

'आनन्दादयः प्रधानस्य' (३ । ३ । ११)

'अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः' (१।२।२०)

इत्यादि। प्रधान ब्रह्मके आनन्द, सत्य, ज्ञान, आदि स्वरूप भूत लक्षण हैं। अदृश्यत्व, अग्राह्यत्व, अगोत्रत्व, आदि स्वरूपभूत गुण ब्रह्मके ही ज्ञापक हैं, अर्थात् दृश्यत्वादि सकल प्राकृतिक गुणोंके निषेधद्वारा उस निधर्मक, निर्विशेष चैतन्य ब्रह्मका स्वरूप बतलाते हैं।

इसका परिशेष ७६ पृष्ट के नीचे देखिये।

ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टि

(लेखक—स्वामी कृष्णानन्दजी योगीराज-वैद्यराज)

नित्यानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं
विश्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

प्राणिमात्रके अन्तरमें विराजमान, नित्य आनन्द-स्वरूप, निरतिशय सुखदायक, केवल, (त्रिविध भेद—रहित), ज्ञानस्वरूप, प्रपंचसे पर, आकाशके समान व्यापक, तत्त्वमस्यादि महावाक्योंके लक्ष्यरूप, परब्रह्म, एक, अद्वितीय, नित्य (अविनाशी), मायारूपमलसे सर्वथा और सर्वदा विमुक्त, अचल (क्रियारहित), प्राणिमात्रकी बुद्धिके साक्षी, सर्वभावोंसे पर और तीनों गुणोंसे जो रहित है, उन सद्गुरुदेवको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ ।

ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टिसे (नेत्रेन्द्रियसे) यह प्रतीयमान विश्वप्रपंच कैसा भासता है ? उसको अन्य इन्द्रियोंसे इस जगत्का अनुभव कैसा होता है ? इस संसारके पदार्थोंके विषयमें उनकी आंतर भावना कैसी होती है ? एवं सामान्यजनोंको इससे विपरीत दृष्टिगोचर क्यों होता है ? इस बातकी विचारणा इस छोटेसे निबन्धमें की जायगी। वास्तवमें तो ब्रह्मज्ञानी महापुरुषोंकी दृष्टि, भावना या आचरणका सम्यक् विवेचन, स्थूलवाणी द्वारा या लेखिनी द्वारा प्रकाशित करना असंभव-सा है । यदि टूटी-फूटी भाषामें समझानेकी कोशिश की जाय, तो भी ब्रह्मज्ञानीकी आंतरस्थ भावना और क्रियाके रहस्यको व्यवहारमें रचे-पचे मनुष्य कदापि नहीं समझ सकेंगे । फिर भी कोई-कोई विवेकी मुमुक्षु कुछ अंशमें इससे लाभ उठा सकते हैं । अत एव इस निबन्धसे यदि किसी अधिकारीको ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टिके सम्बन्धमें कुछ बोध हो जाय, तो मेरा प्रयत्न सफल हो जायगा ।

मैं यह स्वीकार करता हूँ, कि—ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टिकी मीमांसा करनेमें मेरी योग्यता नहीं है । न मेरा अधिकार है । तथापि शास्त्र, पूज्य सद्गुरु देव, और ज्ञानी महात्माओंके कृपाप्रसादसे ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टिके विषयमें जो कुछ थोड़ासा बोध मुझे मिला है । उसे विश्वनाथके पाठकोंकी सेवामें निवेदन करता हूँ ।

संसारासक्त मनुष्योंको यह संसार जैसा भासता है, वैसा ब्रह्मज्ञानीको नहीं भासता । अपितु इससे विपरीत, समस्तविश्व ब्रह्मरूपसे सर्वदा, सर्वत्र अनुभवमें आता रहता है, ऐसा शास्त्र और अनुभवी महापुरुषोंका कथन है । उन्हें संसारकी ब्रह्मरूपसे प्रतीति होनेमें कारण यह है, कि- संसार, ब्रह्मरूप अधिष्ठानमें अधिष्ठानके अज्ञानसे भासता है । अज्ञान और अज्ञानके-कार्य अहंता-ममता, विषमता, राग-द्वेष, स्वार्थ, भयादि संस्कार, ये सब ब्रह्मज्ञानीके अंतःकरणसे निर्मूल हो गये हैं । इसलिये उनके ज्ञान, विचार, वाणी और वर्तावरूप सब क्रियाएं व्यवहारिक मनुष्योंकी अपेक्षा, विलक्षण, विशुद्ध, और दिव्य बन जाती हैं ।

ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टिसे देवमूर्त्ति, सूर्य, अग्नि, गंगाजी आदि पवित्र नदियां और पुण्यतीर्थ स्थान ही नहीं, किन्तु संसारके समस्त पदार्थ सच्चिदानन्द ब्रह्मरूपसे ही भासते हैं, अर्थात् ब्रह्मज्ञानीको प्रत्येक पदार्थ, विवर्तोपादान-कारण अधिष्ठान ब्रह्मरूपसे प्रतीत होते हैं । जिससे वे प्राणिमात्रमें अपने आत्माको और अपने आत्मस्वरूपमें प्राणिमात्रको अभिन्न देखते हैं ।

गीतामें कहा है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ (६।२९)

ब्रह्मज्ञानी हिंसक-पशु या पापी-दुराचारीके भी प्रति द्वेष नहीं करते। और किसीको आप्तजन, मित्र, या सम्बन्धी मानकर, उसमें राग नहीं रखते। एवं न किसी पदार्थकी चाह करते हैं, और न किसी पदार्थका शोक करते हैं। मिट्टी, पत्थर, सुवर्णादि द्रव्यमें तथा शीत–उष्ण सुख–दुःख, लाभ–हानि, मान–अपमान, कीर्ति–अपकीर्ति, निंदा–स्तुति और प्रिय-अप्रियादि समस्त भावोंमें सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा समभाव ही रखते हैं।

ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टिमें व्यवहारिक भोक्ता, भोग्यरूप नामरूपात्मक जगत् मिथ्या है। अतः उनको प्रिय पदार्थ और प्रिय सम्बन्धीजनोंकी प्राप्तिसे अथवा प्रतिकूल पदार्थ या प्रतिकूल परिस्थितिकी निवृत्तिसे हर्ष नहीं होता। एवं प्रीतिपात्र और सानुकूल विषयके वियोग या विनाश से तथा प्रतिकूल अप्रिय पदार्थकी प्राप्तिसे विषाद भी नहीं होता। वे तो नित्य निरंतर अपने विशुद्ध अंतःकरणकी अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा स्व-स्वरूपमें ही निमग्न रहते हैं। शिर पर विपत्तियोंकी वर्षा होनेपर भी स्व-स्वरूपसे विचलित नहीं होते।

ब्रह्मज्ञानी जाग्रदवस्थामें प्रतीत होनेवाले नाम, रूप और क्रियायुक्त सकल संसारको स्वप्न, मनोराज्य, इन्द्रजाल, अथवा भ्रान्तिकल्पित पदार्थके समान मिथ्या जानते हैं। जिससे उनके अन्दर जगत्के पदार्थोंमें आसक्ति नहीं होती। एवं उनकी भावना और वर्तावमें स्वार्थ, राग, द्वेष, ईर्षा, दुष्ट विचार या अन्य किसी भी प्रकारके दोषका लेश भी नहीं रहता। उनके अन्तरमें पूर्णता, प्रसन्नता, शान्ति और तत्त्वज्ञान नित्य निरन्तर बना ही रहता है।

ब्रह्मज्ञानीका व्यवहार, स्वार्थ, राग–द्वेष और अहंकार रहित होनेके कारण केवल संसारके हितके लिये ही होता है। ऐसे महापुरुषोंका आचरण संसारमें अधिकारी जनोंके लिये प्रमाणस्वरूप माना जाता है। उनके प्रत्येक विचार और कार्यद्वारा जनताको महान् लाभ मिलता है।

ब्रह्मज्ञानी अपने अन्तरात्माको ब्रह्मस्वरूपसे अनुभव करते हैं। जिससे वे अविद्या, काम, कर्म और कर्मजन्य सुखदुःखरूप फलोंसे सम्बद्ध नहीं होते। संसारासक्त अज्ञानी जीवोंको आत्म–बोध न होनेके कारण वे अपनेको तुच्छ, अज्ञानी, पापी, या शरीररूप मान लेते हैं। एवं मायामय इस प्रपंचको सत्य मानकर रागद्वेष करते रहते हैं। जिससे अनेकजन्मोपर्यन्त दुःखभोगते हैं।

अत एव ज्ञानीको सद्वस्तुका यथार्थ बोध होनेसे उसको संसारका स्वरूप जैसा भासता है, अज्ञानीजनोंको उससे विपरीत प्रतीत होता है–

वराहोपनिषत्में कहा है–

> सर्वगं सच्चिदानन्दं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते।
> अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वन्तं भानुमन्धवत्॥ [२। १८]
> अज्ञस्य दुःखौघमयं ज्ञस्यानन्दमयं जगत्।
> अन्धं भुवनमन्धस्य प्रकाशं तु सुचक्षुषाम्॥ [२।२२]

सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म जो सर्वव्यापक है, उसका ब्रह्मज्ञानी ज्ञानचक्षुद्वारा निरीक्षण करते हैं। परंतु जैसे नेत्रान्ध मनुष्य मध्याह्न कालमें प्रकाशित सूर्यको नहीं देख सकते। वैसे ही अज्ञानी जीव अत्यन्त समीपस्थ प्रकाशमान आत्माराम भगवान्को नहीं पहिचान सकते। जैसे अंध मनुष्यको विश्वमें सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार भासता है। और स्वस्थनेत्रवालोंको संसार प्रकाशयुक्त प्रतीत होता है। वैसे देह और मायिक पदार्थोंमें अहंता–ममता करनेवाले अज्ञानी जीवोंको जगत् दुःखरूपसे और तत्त्वविदोंको सत्–चित् आनन्द स्वरूपसे भासमान होता है।

इस कथनसे यह शंका होती है कि—एक ही वस्तु एकको एक प्रकारकी दीखे, और वही दूसरोंको दूसरे प्रकारकी कैसे दीख सकती है? जो वस्तु एक मनुष्यको शेररूपसे जाननेमें आवे, वही अन्यको घोड़ा, गधा या बैलरूपसे कैसे दीख सकती है?

यह शंका आपाततः स्थूलदृष्टिसे है, परन्तु जब शास्त्रोक्तपद्धतिसे भ्रमज्ञान और यथार्थज्ञानका युक्तिपूर्वक विचार किया जाता है, तब इस शंकाका निराकरण हो जाता है, अत एव पूज्य आचार्योंने युक्तिपूर्वक अनेक दृष्टान्तों द्वारा इस शंकाका समाधान किया है। वही समाधान संक्षेपसे यहाँ बतलाया जाता है।

भ्रम, निरुपाधिक और सोपाधिक भेदसे दो प्रकारका है। निरुपाधिक भ्रमके रज्जुसर्प, शुक्ति रजतादि अनेक दृष्टान्त शास्त्रकारोंने दिये हैं। जैसे किसी मनुष्यको मंद-प्रकाश, दूरता आदि दोषसे ऐसा भ्रम होता है, कि–अमुकस्थानमें एक सर्प पड़ा है। पश्चात् जब वह समीप जाकर शान्तिसे निरीक्षण करता है, तब उसे पता लगता है, कि–यह तो रस्सी है, सर्प नहीं है। इस प्रकार यथार्थज्ञान होने पर प्रथम प्रतीत सर्पका और उसके ज्ञानका बाध हो जाता है। इस प्रकारके दृष्टान्तोंसे यह मानना पड़ता है, कि–कल्पित सर्पके स्थानमें कोई अधिष्ठान वस्तु (रज्जु) है। जिसमें कि–कल्पित-सर्प प्रतीत हुआ था। उसके अज्ञानसे उसमें सर्पका भ्रम हुआ था, तद्वत् यह संसाररूप भ्रम भी किसी अधिष्ठानमें उस अधिष्ठानके अज्ञानसे हुआ है। जैसे अधिष्ठानके बोधसे सर्पका बाध हो जाता है। तद्वत् संसाररूपभ्रम भी अधिष्ठान-ब्रह्मके ज्ञानसे बाधित हो जाता है। और जब तक सर्पके अधिष्ठान-रज्जुका बोध नहीं होता। तबतक सर्पकी सत्यता निवृत्ति नहीं होती। तद्वत् जबतक विश्वप्रपंचके अधिष्ठानरूप ब्रह्मका यथार्थ बोध नहीं होता। तबतक संसारकी सत्यताकी निवृत्ति भी नहीं होती।

द्वितीय भ्रम सोपाधिक है। इस विषयमें शास्त्रकारोंने जपाकुसुमके सम्बन्धसे दीखनेवाले रक्तस्फटिकका, कामलदोषसे भासनेवाले पीत शंखका तिमिरादि–दोष दृष्टिसे भासनेवाले अनेक चन्द्रका, उषरभूमिमें प्रतीत होने वाले मृगजलका आदि-आदि दृष्टान्त दिये हैं। जैसे किसीने एक श्वेत कागज पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी मूर्त्ति चित्रित की है, उसपर रक्त रंगका बटर पेपर (पारदर्शक कागज) लपेटा है। उसे देखनसे लाल कागज पर चित्र निकाला है, ऐसा भान होता है। परन्तु जब उपाधिरूप ऊपरके उस लाल कागजको हटा दिया जाता है, तब श्वेत कागज पर मूर्त्ति साफ दीखने लगती है। इस दृष्टान्तमें पहिले और पीछे जो चित्र प्रतीत हुए हैं, वे दोनों एक ही हैं। प्रथम रक्तवर्णके कागजरूप उपाधिसे लाल चित्र दीखता था अब उपाधिको हटाने पर उसका बाध होकर असली रूपमें दीख पड़ता है। ऐसे ही अविद्यारूप आवरणसे ब्रह्म, नामरूपात्मक जगत् रूपसे भासता है। जब तत्त्वज्ञानसे अज्ञानरूप आवरण नष्ट हो जाता है। तब ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टिमें नामरूप संसार बाधित हो जाता है। और अस्ति भाति, प्रियरूपसे प्रकाशरूप ब्रह्म ही ब्रह्म सर्वत्र दृष्टि गोचर होता है।

गीतामें कहा है—

> ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
> तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ (५।१६)

ऊषरभूमिमें सूर्यकी किरणोंके सम्बन्धसे मिथ्या जलका भास होता है। फिर भी मृगजलके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले उसको सरिता या सरोवरके जलके समान जलरूप नहीं मानते। बल्कि उसे भ्रान्ति-मात्र निश्चित करते हैं। ठीक, उसी प्रकार विश्वके वास्तविक स्वरूप ब्रह्मतत्त्वको जाननेवाले इस विश्वप्रपंचको मायिकरूपसे नहीं देखते, किन्तु सच्चिदानन्द ब्रह्मरूपसे देखते हैं।

मेस्मराईज्म करनेवाले मनुष्य, अपने संकल्पसे वशीभूत किये हुए मनुष्योंको लकड़ीमें साँप, नौला, हाथी, घोड़ा, सिंहादि प्राणी पदार्थ अपने संकल्पके अनुसार दिखा सकते हैं। मध्यरात्रिके समय मध्यान्ह-कालका और मध्यान्ह-कालमें मध्यरात्रिका बोध करा देते हैं। भयंकर शीतकालमें भयंकर उष्णताका बोध कराकर

देह पर धारण किये हुए वस्त्रोंको प्रस्वेदसे भिगो डालते हैं, और उष्णकालमें शीतका अनुभव कराकर थर-थर कँपा देते हैं। इत्यादि विपरीत क्रिया, और बोध प्रत्यक्ष हैं। एवं संकल्पद्वारा अनेक रोगोंका भी शमन हो जाता है। वैसे ही मायासे मिथ्या-प्रपञ्च भी सत्य भासता है, अविद्यासे आत्मा अनात्म-देहादिरूपसे प्रतीत होता है। जब मेस्मराईज्म करनेवालेके संकल्पसे वह मनुष्य मुक्त हो जाता है, तब वह इस संसारका पूर्ववत् अनुभव करने लगता है। वैसे ही अविद्यारूप बन्धनसे जीव जब विमुक्त हो जाता है, तब उसे सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है।

सामान्यजनोंकी दृष्टिमें दिन और रात्रिका परिवर्तन सूर्यके परिभ्रमणसे होता है। शास्त्रज्ञोंके सिद्धान्तके अनुसार दिन रात पृथ्वीके अक्षभ्रमणसे होता है। अज्ञानी मनुष्य सूर्यको छोटीसी थालीके समान, गोल और ४—५ हजार मीलकी दूरीपर मानता है। और विवेकी विद्वान् सूर्यको पृथ्वीसे १३ लक्षगुना बड़ा मानता है, तथा पृथ्वी और सूर्यके बीच करीब ९॥ कोटि मीलका अंतर मानता है। जब शास्त्रबोध बिना व्यवहारिक सत्यका भी निर्णय नहीं हो सकता है, तब अज्ञानीजन बिना शास्त्रबोधके और बिना योगाभ्यासके पारमार्थिक सत्यका अनुभव किस प्रकार कर सकता है? अत एव ज्ञानी और अज्ञानीकी दृष्टिमें महान् भेद रहता है।

भावनाके भेदसे भी वस्तुके स्वरूपमें भेद, परिवर्तन या विपरीतता भासती है। जैसे शालिग्राममें नास्तिक और विधर्मीजनोंको पत्थर भासता है, और आस्तिकोंको साक्षात् विष्णु भगवान् भासता है, क्योंकि सर्वत्र भगवद्भावनासे ही भक्तोंका उद्धार होता है। इस विषयके अनेक उदाहरण मिलते हैं। इतिहास इस बातकी साक्षी दे रहा है।

श्रुतिने कहा है—

भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता।
ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत् ॥
(तेजोबिन्दु उ० अ० । ४१)

यह संसार, भाववृत्तिसे भावरूप, शून्यवृत्तिसे शून्यरूप और ब्रह्माकारवृत्तिसे पूर्ण ब्रह्मरूपसे ही भासने लगता है। इसलिये पूर्णत्वकी भावनाको ब्रह्मचिन्तनका परिपक्व करनेके लिये अभ्यास करना चाहिये।

जैसी-जैसी भावना होती है, उसके अनुसार एक ही वस्तु अनेक रूपसे प्रतीत होती है, अत एव इस विषयको दृढ़ करनेके लिये इस लेखके साथ एक ऐतिहासिक कथाका चित्र भी दिया जाता है। इस चित्रमें महर्षि विश्वामित्र और कामधेनु दोनों खड़े हैं। परन्तु कामधेनु सीधी दृष्टिसे देखनेमें नहीं आती। प्रत्युत कामधेनुके स्थानमें जंगल हो जंगल दीख पड़ता है। वास्तवमें चित्रके मध्यभागमें बड़े वृक्षके नीचे जो श्वेत रंगका उज्वल भाग है, वह जंगल नहीं है परन्तु कामधेनुके उदरका भाग है। चित्रमें कामधेनु विश्वामित्रकी ओर मुख करके शान्त एवं निर्भय हो खड़ी है। विश्वामित्र और कामधेनुके मुखके बीचमें करीब १॥ इञ्चका अन्तर है। उसकी पीठ, वृक्षकी मुख्य मुँड़ी हुई शाखासे लगी हुई है। और पूंछ जमीनसे निकले हुए सीधे स्थूल वृक्षसे लगी हुई है। और वह धेनु नीचे रहे हुए घासमें चारों पैरसे खड़ी है।

इस चित्रको नेत्रके सामने थोड़ा टेढ़ा (वृक्षकी ओरका भाग थोड़ा समीप और विश्वामित्रकी ओरका भाग थोड़ा दूर) करके कामधेनुके मुखकी ओर देखनेसे तुरन्त कामधेनु प्रत्यक्ष हो जाती है। जैसे प्रथम जो स्थान जंगलरूपसे भासता था, वही स्थान पीछे कामधेनुरूपसे प्रतीत होता है। वैसे ही यह नामरूपात्मक मिथ्या विश्व, संसाररूपसे भासमान होता था। वही ब्रह्मज्ञान होनेके पश्चात् ब्रह्म-

विश्वमित्र औ कामधेनु दोय खडे वनमांहि। सूक्ष्म दृष्टि बहुत की सुरभि दीखत नाहि

KOTHARI PRINTING PRESS. FORT BOMBAY.

रूपसे विदित हो जाता है। जैसे चित्रमें एक समय कामधेनुका दर्शन हो जाने पर भी दर्शकको जंगलका मध्य-भाग कामधेनुरूपसे ही दृष्टिगोचर होता रहता है। वैसे ही एक समय ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाने पर यह संसार सवत्र, सर्वदा और सर्वथा ब्रह्मस्वरूपसे ही अनुभवमें आता रहता है। और नामरूपात्मक अंशकी सत्यताका सर्वांशमें बाध हो जाता है।

अत एव छान्दोग्यमें कहा है—

"स एवाधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वमिति।"

(अ० ७।२५।१)

वह ब्रह्म ही नीचे, ऊपर, पीछे, आगे, दाहिनी-ओर, तथा बांयी ओर है। किंबहुना, वही सर्वरूपसे प्रतीत हो रहा है।

एवं बृहदारण्यकश्रुति भी कहती है—

"तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणां तद्धैतत्पश्यन्नृषि र्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्यश्चेति। तदिदमप्येतर्हि य एवं वेदाऽहंब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति। तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशते। आत्मा ह्येषां स भवति।" (अ० १।१०)

देवोंमें जिस-जिसने उस ब्रह्मको जाना, वे सब ब्रह्म हो गये। इसीप्रकार ऋषियोंमें और मनुष्योंमें जिसने उस ब्रह्मका साक्षात्कार किया, वे सब ब्रह्मरूप हो गये हैं। उस ब्रह्मको जानकर वामदेवऋषिने अपना अनुभव प्रकट किया, कि—मैं ही मनु बना हूँ। और मैं ही सूर्य होकर ब्रह्माण्डको प्रकाशित कर रहा हूँ। इस समयमें भी जो मनुष्य इस ब्रह्मको आत्मरूपसे अभिन्न जान लेता है, वह भी सर्वरूप हो जाता है। अर्थात् वह सबको अपने आत्मरूपसे अनुभव कर लेता है। उसके इस सर्वभावको निवृत करनेमें देवता भी समर्थ नहीं होते, क्योंकि वह उन सबका आत्माही हो जाता है।

इसप्रकार सहस्रशः श्रुतियाँ, स्मृतियाँ, श्रीमद्भगवद्गीतादि पुराण, महाभारत और योगवासिष्ठादि इतिहास, तथा आचार्योंके लिखे हुए अनेक प्रकरण ग्रंथ, उस ब्रह्मतत्त्वके निरूपणमें परम प्रमाण हैं। और वर्तमान कालके सन्तजनोंकी प्राकृत वाणी भी इस विषयमें प्रमाणित है। लेखवृद्धिके भयसे इनका प्रदर्शन यहाँ नहीं किया जाता।

ब्रह्मदृष्टि होनेपर सर्वत्र आनन्द ही आनन्द प्रतीत होता है। जीव अपनी महिमामें मस्त हो जाता है। नेत्रोंसे अस्खलित प्रेमाश्रुका प्रवाह बहने लगता है। तथा मन ब्रह्मानन्दामृतका पान करनेमें संलग्न हो जाता है। ऐ वाक्शक्ति! क्या इस ब्रह्मानन्दका वर्णन करनेकी तेरेमें सामर्थ्य है? अगर तेरेमें उतनी सामर्थ्य होती, तो तू मौन क्यों हो जाती? प्रथम जो वासनाएँ दुःख देनेके लिये नाच कूद कररहीथीं, वे भी अब आत्म-सूर्यके प्रकाशसे शान्त हो गईं। और मनका अविद्या-अन्धकार दूर हो गया। एवं पाप पुण्य भी सब जलकर भस्म हो गये। सर्वत्र एक मात्र आनन्दका ही साम्राज्य स्थापित हो गया। ऐ कान! आज तुम्हारा पुरुषार्थ सफल हुआ। ऐ नेत्र! तुम भी कृतकृत्य हो गये। ऐ प्राण-शक्ति! अब तेरा जीवन धन्य-धन्य हो गया। ऐ संसार! वाह! वाह! अब तू कैसा आनन्दमय बन गया है। अरे भाई संसार सर्वदा सबके लिये आनन्दरूपसे ही तू अनुभवमें आया कर। आनन्द ही आनन्द बना रह।

आचार्य शंकर स्वामीने कहा है—

संपूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमाः।
गांगंवारि समस्तवारिनिवहः पुण्याः समस्ताः क्रियाः॥
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी।
सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया, दृष्टे परे ब्रह्मणि॥

आचार्य शङ्कर और आचार्यरामानुज दर्शन-समीक्षा

(अंक ११ पृष्ठ ५१८ से आगे)

(ले०—श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी महेश्वरानन्दजी महाराज)

शाङ्कर-सिद्धान्त

विवेकादि साधन-चतुष्टयकी प्राप्तिके अनन्तर ब्रह्म-विचारका प्रारम्भ होता है।

रामानुज-सिद्धान्त

कर्म-स्वरूपके ज्ञानके अनन्तर ब्रह्म-विचारका प्रारम्भ होता है।

समीक्षा

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस सूत्रमें अथ शब्दसे साधन-चतुष्टय सम्पत्तिका ही ग्रहण हो सकता है, क्योंकि—'यच्च यस्मान्नियतपूर्वभावि तदेव तेनाक्षेप्तुं शक्यते न तु व्यभिचरितम्' जो जिससे नियतरूपसे पूर्वमें होनेकी योग्यता रखता है, वही उससे आक्षिप्त होता है, अतः उससे अनियत-व्यभिचारीका आक्षेप नहीं हो सकता, ब्रह्मविचारके प्रथम कर्मज्ञान व्यभिचारी हैं, क्योंकि कर्म-ज्ञानके बिना भी मोक्षकी अभिलाषावाला ब्रह्मविचार करनेमें प्रवृत्त हो सकता है। जिसे कर्मज्ञान मात्र है, मोक्षकी अभिलाषा नहीं है, वह कभी भी मोक्ष-साधन ब्रह्मविचारमें प्रवृत्त नहीं होगा, यह प्रत्यक्ष है। अतः अन्वयव्यतिरेकन्यायसे मोक्षकी अभिलाषाही ब्रह्मविचारका पूर्ववृत्त है। और उस मोक्षाभिलाषाका नामही मुमुक्षा है, जो साधन-चतुष्टय सम्पत्तिके अन्तर्गत मानी गई है। और यह भी अनुभवसिद्ध है कि—विवक,वैराग्यशीलही एकान्तमें बैठकर शमादिसाधनके बलसे गुरुकी प्रसन्नता प्राप्तकर ब्रह्मविचारमें प्रवृत्त हो सकता है, जो विवेकादि साधनरहित है, और जिसकी बुद्धि विविध-कर्मके फलोंमें आसक्त है, वह कर्मानुष्ठान छोड़कर, फलासक्तिका विरोधी ब्रह्मविचारमें क्यों प्रवृत्त होगा? अतः साधन चतुष्टय-प्राप्तिके अनन्तरही ब्रह्मविचारका प्रारम्भ होता है, यह आचार्यशङ्करका सिद्धान्तही शास्त्र, युक्ति, एवं अनुभव संगत है।

शाङ्कर सिद्धान्त

पूर्वमीमांसा-शास्त्र और उत्तरमीमांसाशास्त्र, पृथक्-पृथक् शास्त्र हैं,अर्थात् इन दोनोंका प्रतिपाद्य विषय भिन्न-भिन्न है. और दोनोंका प्रयोजन, सम्बन्ध और अधिकारी भी भिन्न-भिन्न है।

रामानुज सिद्धान्त

पूर्वमीमाँसा और उत्तरमीमाँसा मिलकर एक-शास्त्र है। क्योंकि दोनोंमें एकमात्र धर्म ही प्रतिपाद्यविषय है। पूर्वमीमांसामें साध्य क्रियारूप धर्म प्रतिपाद्य है, और उत्तरमीमांसामें सिद्ध-ब्रह्मरूप धर्म प्रतिपाद्य है।

समीक्षा

पूर्वमीमाँसा और उत्तरमीमाँसा एकशास्त्र नहीं हो सकता। क्योंकि दोनोंके प्रणेता पृथक्-पृथक् हैं, पूर्वमीमाँसाके प्रणेता हैं महर्षि जैमिनि, और उत्तरमीमाँसाके प्रणेता हैं महर्षि बादरायण (वेदव्यास)। यदि दोनों एक शास्त्र होते तो दोनोंको एक ही महर्षि रच डालते, और दोनोंका प्रतिपाद्यविषय भी भिन्न हैं, पूर्वमीमाँसाका प्रतिपाद्यविषय है कर्म। और उत्तरमीमाँसाका प्रतिपाद्यविषय है ज्ञान। कर्म और ज्ञानका विरोध तो तमःप्रकाशवत् प्रसिद्ध है। अतः आत्मैक्य-ज्ञानमें कर्मानुष्ठान सम्भव नहीं हो सकता। और उत्तर-मीमाँसाका प्रतिपाद्य पुरुषार्थरूप प्रयोजन जैमिनि-ऋषिको सम्मत नहीं है, क्योंकि जैमिनि-ऋषिका मत है—स्वर्गादिकी प्राप्ति ही परमपुरुषार्थ, जो उत्तरमीमाँसाके प्रयोजनसे सर्वथा विरुद्ध है, उत्तरमीमाँसाका प्रयोजन

है—ब्रह्मात्मतत्त्वके अखण्डानन्दसाम्राज्यका अपरोक्ष साक्षात्कार।

अच्छा! यह भी बतलाना आवश्यक है कि—दोनों मीमाँसाओंमें एक शास्त्रत्वका प्रयोजक उभयानुगतरूप क्या है? यदि कहो कि—विचारत्व है, तो उससे व्याकरण-न्यायादि शास्त्रोंकी भी एकशास्त्रता हो सकती है। अतः यह मानना पड़ेगा कि—जैसे प्रतिपाद्य-विषयके भेदसे व्याकरण न्यायादि शास्त्रोंका भेद है, तथा दोनों मीमाँसाओंका भी विषय-भेदसे भेद मानना युक्तिसंगत है। यदि कहो कि—एक शास्त्रत्वका प्रयोजक है—प्रतिपाद्यमान-धर्मत्व। तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि ब्रह्ममें धर्मत्व नहीं हो सकता। स्वयं जैमिनिमहर्षि भी ब्रह्ममें धर्मत्व नहीं मानते, वे तो धर्मका लक्षण बतलाते हैं 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।' जो ब्रह्ममें कदापि घट नहीं सकता।

अत एव विवरणप्रेमयसंग्रहमें विद्यारण्यस्वामीने कहा है—

> 'यदि वेदान्तेषु विधिस्स्यात्तर्ह्येव
> षोडशलक्षणी धर्ममीमाँसा प्रसज्येत।'

अर्थात् वेदान्त (उपनिषद्वाक्य) में चोदना (प्रेरणा) रूपविधि नहीं है, अतः जब विधि-विषयता वेदान्तमें नहीं है, तो उसके प्रतिपाद्य ब्रह्ममें कैसे आ सकती है, अतः ब्रह्ममें धर्मका लक्षण किसी भी प्रकारसे नहीं आ सकता।

यदि कहो कि—एकशास्त्रत्वका प्रयोजक है-'मीमाँसा' ऐसा नाम। तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि जैसे व्याकरण ऐसा नाम, ऐन्द्र, चान्द्र, सारस्वत, पाणिनीय, आदिमें समान होनेपर भी उनका भेद माना जाता है, तद्वत दोनों मीमाँसाओंका भी भेद माना जा सकता है। और दोनों शास्त्रोंको एक माननेपर छः दर्शनशास्त्रकी प्रसिद्धिका विरोध होगा, प्रसिद्धि यह है—

> कपिलस्य कणादस्य गौतमस्य पतञ्जलेः।
> व्यासस्य जैमिनेश्चापि शास्त्राण्याहुःषडेव हि॥

अतः किसी भी प्रकारसे पूर्वमीमाँसा और उत्तर-मीमाँसा एक शास्त्र नहीं हो सकते।

शाङ्कर सिद्धान्त

तत्त्वमस्यादि महावाक्यके अनुसंधानसे आत्म-साक्षात्कार होता है, और उससे शीघ्रही अविद्याकी निवृत्ति होती है।

रामानुज सिद्धान्त

महावाक्यके विचारसे उपासना दृढ़ होती है और उससे परमात्मा प्रसन्न होता है।

समीक्षा

महावाक्यके अनुसंधानसे आत्म-साक्षात्कार ही होता है। भेद-घटित-उपासना, महावाक्यसे कदापि सिद्ध नहीं होती। अत एव समस्त श्रुतियोंमें ज्ञानसे ही मोक्ष प्रतिपादन किया है।

> ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः' (श्वे० ४। १६)
> 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' (श्वे० ३। ८)

इत्यादि। ज्ञानके विना अन्य साधनसे मोक्ष नहीं होता, कहा है—

> 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (श्वे० ३। ८)
> 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'।

इन अधोलिखित श्रुतियोंके पर्यालोचनसे यह निर्णय होता है कि—आत्म-साक्षात्कारही अविद्या-निवृत्तिरूप मुक्तिका साधन है।

> 'अनुविद्य विजानाति' (छा० ८। ७। १)
> 'निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते' (का० ३।१५)
> 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' (बृ० २। ४। ५)
> 'विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत' (बृ० ४। ४। २१)

इत्यादि श्रुतियोंमें 'विजानाति' 'निचाय्य' 'द्रष्टव्य'

आदि-शब्दोंसे अविद्या-निवृत्तिका साधन आत्मसाक्षात्कारका प्रतिपादन किया है। आत्मसाक्षात्कारका साधन है—अनात्म-भावनाका तिरस्कार पूर्वक अनवरत आत्म-भावना। कहा है—

'ॐ इत्येवात्मानं ध्यायत' (मु० २।२।६)
'आत्मानमेव लोकमुपासीत' (बृ० १।४ १५)
'आत्मा वा अरे निदिध्यासितव्यः' (बृ० २।४।५)
'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्' (ब्र० सू० ४।।१)

इस व्याससूत्रने भी पूर्वोक्तही अर्थका प्रतिपादन किया है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥
(मु० २।२।८)

यह मुण्डकश्रुति भी चिज्जड़ग्रन्थिके विमोक्षका साधन 'दृष्ट' पदसे आत्मसाक्षात्कारही बतलाती है। अतः आचार्यशङ्कर स्वामीका सिद्धान्तही श्रुतियोंके अनुसार है।

शांकरसिद्धान्त

सुखदुःखातीत-आत्म-साक्षात्कार हो जानेपर लौकिकशरीर रहने पर भी जीवन्मुक्ति सिद्ध होती है।

रामानुजसिद्धान्त

लौकिक शरीर रहने पर सुख-दुःखका अनुभव अवश्य होगा, अतः कदापि जीवन्मुक्ति सिद्ध नहीं होगी।

समीक्षा

'तमेव विद्वानमृत इह भवति' (नृ० पू० १।६)

इस श्रुतिमें 'इह' शब्दसे अमृतानन्द ब्रह्मतत्त्वका आत्मरूपसे सतत अनुभवरूपा जीवन्मुक्ति प्रतिपादन की है।

'अत्र ब्रह्म समश्नुते' (का० २।६।१४)

यह श्रुति भी 'अत्र' पदसे जीवनकालमें ही ब्रह्मसाक्षात्कारका निरूपण करती हुई जीवन्मुक्तिका निर्देश करती है, अतः 'जीवन्मुक्ति' कोई वस्तु ही नहीं है, यह कहना केवल हठाग्रह और श्रुतियोंका तिरस्कार करना मात्र है। और

'विमुक्तश्च विमुच्यते' (का०)

यह श्रुति भी प्रथमपदसे जीवन्मुक्तिका तथा द्वितीयपदसे विदेहमुक्तिका निरूपण करती है। और 'सचक्षुरचक्षुरिव सकर्णोऽकर्ण इव समना अमना इव सप्राणोऽप्राण इव' यह भी श्रुति लौकिक-चक्षुरादि कार्यकरण समुदाय रहने पर भी सुखदुःखातीत जीवन्मुक्त अवस्थाका वर्णन करती है।

स्मृति-पुराणादिओंमें तो जीवन्मुक्तिका प्रचुर वर्णन है—यथा—

'ब्रह्मन्विदेहमुक्तस्य जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्।'

× × × ×

नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मुखप्रभा।
यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

भगवान् श्रीरामने वसिष्ठ महर्षिसे पूछा—हे ब्रह्मन्! विदेहमुक्तका तथा जीवन्मुक्तका लक्षण कहिये। वशिष्ठजी बोले—सुखावस्थामें जिसकी मुख-प्रभा प्रफुल्लित नहीं होती तथा दुःखावस्थामें जिसकी मुख प्रभा म्लान नहीं होती, किन्तु जिसकी स्थिति सर्वदा यथा प्राप्तमें एकरस रहती है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है।

यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते।
यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

जो लौकिक-दृष्टिसे जागत्, अर्थात् व्यवहारयुक्त है, परन्तु स्वदृष्टिसे सुषुप्तस्थ है, अर्थात् व्यवहाररहित है। जिसे वासनारहित आत्मज्ञान है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः।
यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥

संसारके समस्त संकल्प जिसके शान्त हो गये हैं, लौकिकदृष्टिसे संकल्पोंसे युक्त प्रतीत होनेपर भी वस्तुतः जो संकल्प शून्य है। अत एव जो चित्तवाला होनेपर भी चित्त-रहित है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

इसीही जीवन्मुक्त-महापुरुषको गीतामें भगवान्‌ने 'स्थितप्रज्ञ' 'गुणातीत' एवं 'भगवद्भक्त' नामसे व्यवहृत किया है। तथा अन्यस्मृतियोंमें 'अतिवर्णाश्रमी' 'ब्राह्मण' आदि शब्दोंसे कहा है।

अतः पूर्वोक्तप्रमाणोंके पर्यालोचनसे जीवन्मुक्तिका सद्भाव सिद्ध होता है, इसलिए आचार्यशङ्करस्वामीका सिद्धान्त ही शास्त्रानुकूल है।

शाङ्कर सिद्धान्त

प्रारब्धकर्मका क्षय होनेपर शरीर छूटनेके बाद स्वस्वरूपमें पूर्ण-स्थिति ही विदेह-मुक्ति है, इसीका दूसरा नाम है–विदेहकैवल्य, एवं ब्रह्मनिर्वाण।

रामानुज-सिद्धान्त

प्रारब्धकर्मका क्षय होनेपर लौकिक शरीर छूट जाता है, और साकार परमात्माके सदृश दिव्य-शरीर प्राप्त होता है, यही विदेह-मुक्ति है।

समीक्षा

'यदल्पं तन्मर्त्यम्' इस श्रौत सिद्धान्तके अनुसार दिव्य-देह-प्राप्ति, विदेह-मुक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि–दिव्य-देह भी तो अल्प (परिच्छिन्न) है, और जो अल्प होगा, वह अविनाशी कदापि नहीं हो सकता।

'अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः' (छा० ८।१२।१)

यह श्रुति, शरीररहित मुक्तिको ही प्रियाप्रिय सम्बन्ध रहितरूपसे प्रतिपादन करती है। यदि मुक्तिमें भी शरीर रहेगा तो उसकी मृत्यु भी अवश्य होगी, अतः मुक्त-सशरीर नहीं होता।

भगवान्‌ने गीतामें मुक्तिका 'ब्रह्मनिर्वाण' नामसे वर्णन किया है। निर्वाण शब्दका अर्थ है–शरीराभाव। 'वाति गच्छतीति वाणं-शरीरम्' यह व्युत्पत्ति वाणकी है, जिससे वाणका अर्थ शरीर होता है।

भगवान् कहते हैं—

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥
(गी० ५।२४।२५।२६)

जो अन्दरसे ही दिव्यानन्दका अनुभव करता है, जिसने अपने आपमें ही आराम पाया है, जिसे भीतरमें ही स्वयंज्योति मिल गयी है, वह योगी ब्रह्मरूप हुआ ब्रह्मनिर्वाणरूप मोक्ष प्राप्त करता है। जिन तत्त्वदर्शी ऋषियोंकी भेद-बुद्धि दूर हो गई है, जिनके समस्त दोषरूप पाप नष्ट हो गये हैं, जो सभी प्राणियोंके हितसाधनोंमें तत्पर हैं, ऐसे संयमी, पवित्र, महानुभाव ही ब्रह्मनिर्वाण-रूप मोक्षको प्राप्त होते हैं। काम-क्रोधरहित, संयमी, आत्मज्ञानसम्पन्न, यति-संन्यासीको अभितः प्राप्त अर्थात् सर्वत्र, सर्वदा, स्वतःसिद्ध ब्रह्मनिर्वाणरूप मोक्ष मिल जाती है।

अतः आचार्यशङ्करका सिद्धान्त ही शास्त्रानुकूल एवं युक्ति-संगत है।

इसप्रकार तत्त्वजिज्ञासुओंके लिए संक्षेपसे दोनों आचार्योंका मत दिखलाकर किस आचार्यका मत श्रुति-स्मृति अनुकूल है, यह दिखलानेके लिए श्रुति स्मृति वाक्यों-का प्रदर्शनकर युक्ति एवं न्यायपूर्वक यह सिद्ध किया कि–आचार्य श्रीशङ्कर स्वामीका सिद्धान्त ही परम श्रद्धेय एवं यथार्थ है।

हरि ॐ तत्सत्

आजसे मैं खूब विचारसे काम लूंगा

(लेखक—स्वामी श्री रामानन्द शास्त्री संन्यासी व्याकरणाचार्य्य काशी)

(अद्भुत स्वप्न)

हरिद्वारसे आगे हृषीकेशके रास्तेके पास वीरभद्र महादेवके मन्दिरके नीचे बहती हुई रम्भा नदीके ऊंचे तटपर फूँसकी झोपड़ीमें एक दिगम्बर परमहंस संन्यासी निवास करते थे, वे एक दिन सायंसन्ध्योपासनासे निवृत्त हो बैठकर 'मनुष्य-स्वभाव' के विषयमें कुछ सोचने लगे कि—

"मनुष्यजन्म-प्राप्ति पुराकृत पुण्य-पुञ्जका फल है, अवश्य ही पाप पुण्यके विना मनुष्यजन्मलाभ सम्भव नहीं, पर 'भूयसा व्यपदेशात्' न्यायसे शास्त्रकारों और सन्तोंने इतरप्राणी-सापेक्ष मानव जन्मलाभ, पुण्यजनक कर्म्मोंसे ही बताया है, पर इसके कुकृत्यपूर्ण व्यवहारों से तो यही प्रतीत होता है कि—यह सीधा नरकसे ही आया है। जब पुण्यसंघ-सम्भूत-मानव-देहको दानवोचित कार्य करते देखते हैं तो साश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। मनुष्य सामाजिक जीव है, पर आज तक इसे समाजमें रहना नहीं आया, स्वार्थसाधनके लोभ-लाभसे लुब्ध हो इसने जिन साधनोंकी सृष्टिकी है, उनसे इसने अपनी अशान्तिको बढ़ाया है, यह जिस व्यवहारसे स्वयं सुखी रहना चाहता है, उसका प्रयोग दूसरेके लिये नहीं करना चाहता, बुद्धिसागर होनेका दावा करता हुवा भी सदा पशुबल या पशुधर्मका आश्रय लिया करता है। यह सच है कि—सभी मनुष्य शरीर पापकर्म निरत नहीं होते, पर वे अपवाद हैं, विचार तो इस समय यह है 'जब कि—मनुष्य-शरीर पुण्योंका फल है, फिर यह ऐसे कुकृत्य क्यों करता है ? जिसे नारकी जीव भी करनेमें संकोच करें', इसे लोभ, काम, चालाकी, धूर्तता, स्वार्थ आदि दुर्व्यसनोंको आश्रय दे संसारको स्वर्गसे नरक बनाकर अशान्त जीवन बिताने में क्या मिलता है ? जब कि—यह शाक, पात, फल, फूल, आदिसे जो कि—प्रकृतिके साम्राज्यमें अधिक संख्यामें समुपलब्ध हैं, अपने दग्धोदरकी पूर्ति आनन्दसे कर सकता है, फिर क्यों ईश्वरकी बनाई अपनी ही जैसी मूर्तियोंका नाश करके धन्यम्मन्य बनता है। यह इस जरासी बातको नहीं सोचता कि—जिसको मैं बना नहीं सकता उसे विगाड़नेका मुझे क्या हक है ? यह अपने सामने दूसरोंको क्यों तुच्छ समझता है ? इसने अपने सुन्दर-शरीर-मन्दिरमें दम्भादि अन्तः शत्रुओंको क्यों टिका रखा है ? यह अन्य जीवोंके साथ क्रूरताका बर्ताव क्यों करता है ? यह दूसरोंसे ठीक वैसा ही वर्ताव क्यों नहीं करता, जैसा दूसरोंसे चाहता है ? यह पारस्परिक ईर्षानलसे अपनी अन्तरात्माको क्यों जलाया करता है" इत्यादि 'मनुष्य-स्वभाव' पर बहुत सी बातें सोचते-सोचते महात्माको निद्रादेवीने अपना कृपापात्र बना लिया, याने अन्य दिनोंकी अपेक्षा उस रात्रीको साधु गाढ़ निद्रामें सो गया।

कुछ देर बाद महात्मा देखता क्याहै कि—एक सूर्यकी जगह द्वादशादित्यउदय हो गये, देखते-देखते वन, उपवन, नदी, नाले, कूप, तड़ाग आदि सबके सब सूख गये, प्राणिमात्र हाहाकार करता हुवा लूमें मक्खी तथा, मच्छरों की तरह झुलसने लगा, इतने में भूगर्भ विदीर्ण करके वह्निज्वालामालायें जिह्वा लपलपाती हुई राक्षसनीकी तरह पूर्वसन्तप्त वस्तु जातको और अधिक दग्ध करने लगी। महात्मा खोपड़ी बचानेके लिये अपनी झोपड़ीमें गये, तो उसमें भी आग लग गई। प्राणियोंके देह, भाड़में दानोंकी तरह भुनने लगे। फिर उनचाश ४९ वायु बहने लगीं, बड़े-बड़े पहाड़ और वृक्ष

उड़ उड़ कर एक दूसरेसे टकराने लगे, उसके भयानक कठोर-कर्कश शब्दोंसे कानकी झिल्ली कपड़ेकी तरह झरझर फटने लगी। प्राणियोंके कलेजे लक्ष्मण झूलेके पुलकी तरह हिलने लगे, पनचक्कीके पाटकी तरह सबके सिरमें "चक्रिकापत्ति" आ गई। एकने दूसरेका 'अन्योन्याश्रय' चाहा। जब अन्यका अन्यने 'एकका दूसरेने) कुछ उपकार न किया तो 'आत्माश्रय' से ही काम लेना चाहा। महात्माने देखा कि—ज्वालामुखी 'सिद्धसाधन' कर रही है, क्योंकि बारह सूर्योंने एक साथ उदय हो जब संसारको दग्धप्राय कर ही दिया है, फिर उन्हीं मरोंको मारने ये आगकी लपटें अपनी बहादुरी दिखाने आई हैं। फिर देखते-देखते नभ मण्डल मेघाच्छन्न हो गया, महात्माने समझा उत्पात शान्त हुआ, जान बच जायगी, वृष्टिकी, झपटके आगे आगकी लपटें सिटमिटा जांयगी। मूषलधार पानी बरसने लगा, जहां तहां पानी ही पानी हो गया, स्थावर जंगम सब डूबने लगे, समुद्र उमड़ आया, सच्छिद्रा नवकाकी तरह पृथिवी समुद्रके अतलतलमें समाने लगी, पहाड़ोंसे भी ऊंची उत्तुङ्गतरङ्गोंने सागरकी छाती पर नृत्यारम्भ कर दिया। महात्माकी कुटियाके ऊंचे स्थानतक पानी आ गया, महात्मा भागकर पासके पहाड़ पर चढ़ गया। देखते-देखते कुछ देरमें वहां भी जल आ गया, महात्मा घबराया, उसे अपनी उतनी चिन्ता नहीं, जितनी अन्य जीवोंकी, जो अपनी दुर्दशा से करुण-क्रन्दन करते हुए सन्तके दयार्द्र हृदयको अरुन्तुद पीड़ा पहुंचा रहे थे। महात्मा सोच रहा था देखो, जो भूतसंघ (पृथिवी-जल तेज-वायु और आकाश) सब जड़ चेतनका जीवनाधार था, आज वही इनके विनाश करनेमें अहमहमिकया कितना भयंकर सिद्ध हो रहा है। क्या सचमुच यह ऊंचा पहाड़ भी डूब जायगा ? रंगढंगसे तो मालूम होता है कि—ऐसा ही होनेवाला है। महात्मा किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो यह सोच हीरहा था कि-इतनेमें सामनेसे एक अवधूत महात्मा आते हुए दिखाई दिये, पास आये और बोले क्यों—"घबरा गया ? क्या इस समय जो हो रहा है, उसे नहीं समझा ? जिसे तुमने ग्रन्थोंमें पढ़ा है, और विज्ञोंसे सुना है। वही यह प्रलयकालका अवाञ्छनीय दृश्य है, इसीको महाप्रलय कहते हैं. जो प्राकृतिक सामग्री संसारकी संरक्षक थी, देखो आज वह किस भयानकतासे एक दूसरीकी घातक हो रही है, बस सावधान हो जा; चलना है समाधिस्थ ......इस अर्धोक्तिको कहते-कहते अवधूतजी मेंह बरसनेमें अन्तर्धान हो गये। इधर प्रतिक्षण वर्द्धिष्णु पानीकी बाढ़में पहाड़ डूब गया। साथ ही महात्माजीको भी स्वयं जलसमाधि मिल गई।

आगे महात्मा क्या देखते हैं कि—जैसे हरिद्वार प्रयागके कुम्भ महामेलोंमें आये लाखों मनुष्योंको स्पेशलट्रेन द्वारा रेलवे कर्मचारी ढोकर घन्टों दिनों या हफ्तोंमें जहां तहां पहुंचा देते हैं, इसीप्रकार यह सारा संसार किसी अलौकिक शक्तिकी सहायतासे अपूर्व यानमें बैठाकर परलोक नामक किसी विलक्षण प्रदेशमें पहुंचा दिया गया।

महात्माने उस देशमें इस देशसे बड़ी-बड़ी विलक्षणतायें देखी, वहां दुर्बलताके महापापसे सब मुक्त हैं किसीको किसीकी स्वतन्त्रतामें बाधक होनेका हक हासिल नहीं है, वहां धर्मका नाम बदनाम करनेके लिये हिंसा नहीं होती, वहां ऊंचनीचका वहम नहीं है, वहां कुल देश जातिकी कोई कदर नहीं। बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष, का कोई खयाल नहीं, वहां कर्मोंके कांटे पर सबके व्यवहार तौलकर सब निर्णय किया जाता है, वहां ज्ञान और त्यागको महत्त्व दिया जाता है। वहां जो जैसी भाषा बोले, और जैसी लिपी लिखे, सबको सब बोल और पढ़ लेते हैं, वहां सच्ची बात जो कहदे, वही मानली जाती है, फिर वह बात किसी पोथी पत्रेमें लिखी हो या न लिखी हो।

एक दिन उस सच्ची दुनियाके बाजारमें घूमते हुए साधुने एक, 'विज्ञापन' देखा। नोटिस बहुत बड़ा था, उसकी सब बातें तो महात्माको याद नहीं रहीं, पर जो स्मरण रहीं, वे ये थीं, उस नोटिसका शीर्षक था "महासमेम्लन" 'परसों रविवारको दिनके दो बजेसे-"अखिल विश्व-तिर्यक्-महासम्मेलन' होगा। अर्थात् सारी दुनियाके जीव-जन्तुओंकी बड़ी भारी सभा होगी। सभापति होंगे भवानीके 'मृगराज महाराजदेव बहादुरजू'। विषय—'मनुष्य-व्यवहार-समालोचना'। नोट—'निशाचर जन्तुओंके लिये अन्धकार और जलचरोंके लिये पानीका भी प्रबन्ध किया गया है। मन्त्री 'नीलकण्ठ।'

उक्त विज्ञापन वांचकर मैं नियत समयसे १ घन्टा पूर्व ही सभास्थलमें पहुंच गया, प्रवन्ध बहुत उत्तम था, जलचर, नभचर, स्थलचर, प्रभृति जन्तुओंके लिये अलग-अलग स्थान नियत थे। 'हंसमण्डल' का विल्ला लगाये, हंसलोग आगन्तुक तथा प्रतिनिधियोंके बैठाने आदिका स्वागत कार्य कर रहे थे। शुक शारिकाओं द्वारा मंगल गायनके अनन्तर काकभुशण्डीके प्रस्ताव नन्दिकेश्वरके अनुमोदन तथा गङ्गाजीके नक्रके समर्थन करने पर करतलतालध्वनिके साथ 'मृगेन्द्र महाराज' ने सभापतिका आसन सुशोभित किया।

सभामें बड़े-बड़े सारगर्भित व्याख्यान हुए, साधुने कहा-वे सब मुझे याद नहीं हैं, पर भाव प्रायः सबका स्मरण है, क्योंकि— मैं बड़े ध्यानसे सुन रहा था, इस सम्मेलनमें मनुष्यके विरुद्ध मुझे ऐसी-ऐसी बातें सुननेको मिली, जिन्हें मैं स्वप्नेमें भी नहीं सोच सकता था।

सभापतिने सभाका कार्य प्रारम्भ करते हुए अपने छोटेसे अथच सारगर्भित प्रारम्भिक भाषणके उपक्रममें कहा कि—"सज्जनो! आज यहां हमलोग 'मनुष्यकी करतूत' पर विचार करनेके लिये एकत्र हुए हैं, अब समय आ गया है कि-हमलोग सब मिलकर "मनुष्य-स्वभाव" की तीव्र समालोचना करें, और अपनी जातिको इसके अत्याचारसे सर्वनाश होनेसे पहिले ही बचावें, यह सब काम आप लोगोंकी सम्मिलित शक्तिके भरोसे ही पूर्ण हो सकता है, अस्तु—इस विषयमें बड़े-बड़े विज्ञ आगन्तुक प्रतिनिधि आपके सामने अपनी अमूल्य सम्मतियां प्रकट करेंगे, आशा है—आपलोग सावधान हो सुनेंगे, सोचेंगे और लाभ उठावेंगे, विपत्तिके समय आपलोगोंको पारस्परिक वैरभाव भूलाकर बद्धपरिकर हो अपने उद्धारके काममें लग जाना चाहिये।

सबसे प्रथम सूर्यके अश्वकी वक्तृता हुई—उसने कहा—"सभापति महोदय! तथा उपस्थित जन्तु मंडल!! आज मैं आप लोगोंके समक्ष 'मनुष्य-स्वभाव' पर कुछ अपने अनुभूत विचार प्रकट करना चाहता हूं-विषय बहुत बड़ा है पर समय बहुत ही कम मिला है, अस्तु—मैं थोड़ेमें ही अपना वक्तव्य समाप्त करनेका यत्न करूंगा। भाइयो! मनुष्य जैसा भयंकर प्राणी न आज तक हुआ न होगा, इसने हमारी पशुजातिका तो सत्यानाश ही कर दिया है वनमें स्वच्छन्द विचरने और तृणपातसे उदर पूर्ति करनेवाले हस्ती बैल, मेष, घोड़े, तथा अजा आदि जीवोंको पकड़ कर इसने अपना नित्य-दास बना लिया है, दिन रात इसकी चाकरी करते-करते पशुओंकी नशल महादुर्बल हो गई, मृग, शश, शूकर, शृगाल और अजाप्रभृति पशुओंको खाद्य सामग्रीमें मान लिया है। यह पशुओंको निर्दयतासे बहुत मारा करता है, और खानेको नहीं देता, यह किसीको आरामसे नहीं रहने देता, इसने अपने आरामके लिये अनेक आवश्यकताएं बढ़ाली हैं, हमारी खालके जूते और हमारे रोमके वस्त्र धारण करके हमींको मारने जंगलोंमें निष्कण्टक घूमा करता है। सुना है-यह बुद्धिमान् होता है, तब तो इसकी बुद्धिका उपयोग जीवोंको सुख पहुंचानेमें होना चाहिये था, पर यह बुद्धिसे तीर, धनुष, बरछी, तलवार, वन्दूक, तोप,

गोले, आदि अस्त्रशस्त्रोंकी कल्पना-रचना करके दूर ही बैठे ही बड़े-बड़े द्रुतगामी जीवोंके प्राण हरण कर लेता है। इसने शस्त्रास्त्रोंकी रचना हमारे नाशके लिये की थी, उनका यह परस्पर भी व्यवहार करने लगा है। यह अपने जैसे ही मनुष्यको मार देनेमें भी संकोच नहीं करता. इतने पर भी इसे बुद्धिमान् कहना, रातमें सूर्योदयकी इच्छा करना है, आपलोगोंको चाहिये कि—इससे असहयोग करें, इसकी आज्ञाकी अवहेलना करें, हमलोग इसका कोई काम न करें।"

इसके अनन्तर मानसरोवरस्थ राजहंसने कहा—"सज्जनो! यदि मनुष्यका दृष्टिकोण बदल जाय तो इससे हम लोगोंका ही नहीं, इसका भी भला हो सकता है, मनुष्यकी रचना-शैलीपर विचार करनेसे तो मालूम होता है कि—यह परम सात्त्विक प्राणी है, सच्चे ज्ञान-का अधिकारी यही है, क्या किया जाय? कुछ थोड़ेसे मनुष्योंके अत्याचारसे सारा संसार छिन्नभिन्न हो रहा है, मानव तो महापावन है, पर स्वभावके बुरे होते ही यह दावनसे भी बढ़कर हो जाता है, मायाकी छाया पड़ते ही मनुष्यकी कायामें स्वार्थका भूतावेश हो जाता है। इसीसे यह स्वार्थ साधनके लिये धर्म और नीतिको दूषित किया करता है, यह पक्षियोंका नाश करनेके लिये उनके पीछे व्यर्थ पड़ा रहता है। भाइयो! आप लोग आशावादी बने रहें, एकदिन ऐसा आ सकता है कि—मनुष्य-स्वभावमें परिवर्तन अवश्य होगा, बड़े २ ऋषि, मुनि, साधु, भक्त, अवतार, मानव-स्वभाव सुधारके यत्न-में लगे हैं. आप लोग भी अपने दोषोंको दूर करो, फिर देखोगे तुम्हारे पर मनुष्यका अत्याचार अवश्य न्यून हो जायगा।"

राजहंसके उक्त व्याख्यानको, जो बहुत नरम-शान्त भाषामें दिया गया था ना पसन्द-सा करते हुए नील-कण्ठ गरुड़ व्याख्यान देने खड़े हुए बोले—"सज्जनो! अति हो गई, हम लोग मनुष्यके अत्याचारका सह नहीं सकते. या तो हम इस दुनियामें नहीं रहेंगे या मनुष्यको जगत्पृष्ठसे अशुद्ध अक्षरकी तरह सदाके लिये मिटा देंगे, यदि सभी जन्तु एकता करके मनुष्य-जाति पर हमला कर दें, तो एक दिनमें इसका बीज-नाश कर सकते हैं, इसके तीर, तलवार, धरे रह जायंगे, इसकी चतुराई चालाकी इसे स्वयं खा जायगी, यदि मैं सर्पोंका संहार करना छोड़ दूँ तो इसे तो केवल सांप ही यमसदनातिथि बनानेमें पर्याप्त हो सकते हैं, यह पक्षियोंको आकाशमें उड़ने नहीं देता, किसीको मारकर खा जाता है, और किसीको पिंजरेमें बन्द करके आमोद-प्रमोदकी सामग्री बना लेता है, पशु-पक्षियोंको मारकर उनके रुधिरसे अपने इष्ट देवताओं को तृप्त करनेवाले इस दैत्यके कुकृत्योंसे मर्त्यलोक नरकसे भी बढ़कर हो रहा है, यह धर्म कमाता है, हमारी जान जाती है (जरा जोशमें आकर)

हे निर्दय! ईश्वरकी सृष्टिमें तू कौन होता है? दूसरोंकी स्वतन्त्रता और जीवनहरण करनेवाला। तू पशुपक्षी होता तो अज्ञ होनेके नाते ये तेरे अपराध क्षन्तव्य थे, पर तूने तो कागज़ काले कर करके बड़े २ पोथे रच रखे हैं, सुना है—इन पोथोंमें धर्मके मसाले भरे हैं?। किस वास्ते यह वंचना कर रखी है? किसको सुनाने भुलानेके लिये? ऐसा कह जोशमें आ गरुड़जीने अपने वेष्टन (बस्ते) में से कुछ पुस्तकें निकाली और मेजपर पटक दी, फिर इनको लक्ष्य करके बोले—"देखो—इन पुस्तकोंमें क्या लिखा है—"यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति। सर्व-भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥" अर्थात्—जो कोई सब चीजोंको आत्मामें और आत्माको सब चीजोंमें देखता है, फिर वह किसीसे जुगुप्सा (नफ-रत) नहीं करता। यही बात पारस्य भाषामें विज्ञोंने यों कही है—"ऐ बचश्मानि दिल् म बीं जुज दोस्त। हर चि बीनी बिदाँ कि मज़हरी ऊस्त॥" अर्थात्—

दिलकी आँखसे सबको दोस्त ही दोस्त देखो, जो कुछ देखो उसको उसी अल्ला (परमात्मा) का रूप जानो ।। यही बात सूफियोंने अरबी भाषामें कही है—"मन्-अरफ़ा-नफ़्सहू-फ़क़द्-अरफ़ा रब्ब हू" अर्थात् जिसने अपने आपको पहिचाना उसने रब्ब (ब्रह्म) को पहिचाना । कुरानशरीफमें फरमाया है कि—"अल्ला हो वि कुल्ले शयीन मुहीत" याने—परमेश्वर सबको घेरे हैं । उपनिषद में यों कहा है-"ब्रह्म......सर्वमावृत्य तिष्ठति" याने-ईश्वर सबमें वर्तमान है । गीतामें लिखा है कि-"अहमात्मा गुडाकेश ! सर्वभूताशयस्थितः, अहमादिश्चमध्यञ्च भूतानामन्तएवच" अर्थात्-यही कुरान शरीफमें अरसाद है—"हुवल् अव्वल हुवल् आखिर् हुवल् जाहिर हुवल् बातिन् व हुवा अला कुल्ले शयीन् कदीर" । यही अंजीलमें कहा है—"गाड इज् दी आल्फा एंड् दी आमेगा" याने परमेश्वर आदि मध्य अन्तमें है, और हमारे बाहिर भीतर भी है । 'तत्त्वमसि' याने हमाऊस्त, हमा अज ऊस्त, हमा अन्दर ऊस्त,। 'सोऽहम्' याने हक्क तूई । 'अहं ब्रह्मास्मि', याने अन् अल् हक्क् । अग्रेजी भाषामें ईसाने कहा है कि—"आइ एंड् माइ फादर आर वन्, यी आर दी लिविङ् टेम्पल्स् आफ गाड, इन् हिम् आल् थिंग्ज लिव् एण्ड मूव हाव् देयर वीङ्" अर्थात्—मैं और मेरा बनानेवाला एक ही है तुम्ही परमात्माके जिन्दा मन्दिर हो, उसी परमात्मा (चेतन) में सब चीजें जीती हैं, बसती हैं, और उसीसे अपनी सत्ता पाती हैं, शास्त्रों पुराणों और वेदोंमें भी यही बातें बार-बार कहीं हैं. यथा—"यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् । योऽस्मात् परस्माच्चपरस्तं प्रपद्ये महेश्वरम् ॥ भाग० ॥ ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि सर्वाणि रूपाणि सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति" । "हृद्यन्तर्ज्योतिपुरुषः" "स वा एष आत्मा हृदि" "विद्धि त्वमेनं निहितं गुहायाम्" "एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा" "सर्वंखलु इदं ब्रह्म, तज्जलान्" 'शिवोऽहम्' "नेह नानास्ति किञ्चन" "एकमेवाद्वितीयम्" "देवो देवालयःप्रोक्तः" हैं

इत्यादि अवतरणोंसे आपलोग जान गये होंगे कि—ग्रन्थोंमें मनुष्यको कितना समझाया, सुझाया, सुनाया गया है, पर इस पर किसीका असर नहीं पड़ा सब चराचरमें ईश्वर (ब्रह्म) ओतप्रोत है, किसी प्राणीको सताना भगवान्से द्रोह करना है, यह सब कुछ कहा गया, पर इसने 'शृण्वन्नपि न शृण्वति' को ही अपनाये रखा । मैं मानता हूँ कि—लंकामें विभीषणकी तरह कोई आदमी अच्छे भी होंगे, किन्तु वे भी तो उसी अन्यायी मनुष्य समाजमें सम्मिलित हैं, वे भी तो हमारा स्थायी लाभ नहीं कर सके, संसारमें हमारा सबसे बड़ा शत्रु मनुष्य है, यदि यह संसारसे उठ जाय तो आज जगत् नरकसे स्वर्गमें परिणत हो जाय, यह परस्पर भी तो सुख शान्तिसे नहीं रहता. एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके खूनका प्यासा बना है. मैं आपलोगोंका बहुत समय ले लिया अस्तु—समय पड़ने पर मैं बहुत कुछ कहूँगा"।

इसके बाद नन्दीश्वरजी कुछ कहनेको उठे—"सज्जनो ! हम भोले हैं, हमारी जातिके लोग सीधे हैं, अबतक भी मनुष्यकी चालाकी नहीं समझ सके । वस्तुतः मनुष्य बड़ा ही दुर्बल और हृदयहीन प्राणी है, इससे जितना डरो, उतना ही यह सिर चढ़ता है, और जितना अड़ो उतना ही पीछे हटता है, यदि चाहे तो इसे तो चिउंटियां ही नहीं जीनें दें । इसका शरीर किसी काममें नहीं आता, यह हम लोगोंसे सिवाय एक बातके और किसी बारेमें बढ़ कर नहीं है, जब यह अपनी सुन्दरता बखानने लगता है, तो उपमा हमीमेंसे किसीकी या किसीके अंगकी देता है. यथा—शुकवत नाशा, केहरिकटी, खंजन, शुक, कपोत, मृग, मीन, और

भ्रमर आदि जीवोंकी तत्तत् अंगोसे उपमा देकर ही इसे अपने सौन्दर्यका परिचय देना पड़ता है। अज्ञ भी पूरले सिरेका है, विषाक्त वस्तु खाजाय पर पता नहीं लगेगा, औषध पासमें धरी रहेगी, पर रोगसे दुःख पाता रहेगा, अपने जैसे मनुष्यकी बोली तक तो समझ नहीं सकता, फिर पशु, पक्षी, सरीसृप, कीट, पतंग आदिकी तो क्या समझेगा? अल्पज्ञ भी पूरा है, बातें याद नहीं रहती, दूसरेके हृदयस्थ भावको नहीं जान सकता। ऐसे गये गुजरे अत्याचारीको हमी लोगोंने अत्याचार करनेका मौका देकर इसे हिंसक बनाया है। हमें इसे रास्ते पर लाना होगा, नहीं तो हमें यह जीने नहीं देगा, यदि सबकी एक राय हो जाय तो मैं भी अपने सीगोंसे अनेकोंके उदर फांड़कर स्वशत्रुसंन्यके कुछ आततायियोंको कमकर सकता हूँ। हम सबको इस राक्षससे बचनेके लिये कोई न कोई उपाय अवश्य ढूंढ निकालना चाहिये, आपलोग जरासा बलप्रयोग करें, फिर तो यह पापकर्म–जर्जरित–दुर्बल–हृदय, स्वयं परास्त हो जायगा, "क्लैब्यं मास्म गम पार्थ !.........उत्तिष्ठत जाग्रत........" आदि उपदेशोंका स्मरण करके अपने काममें लग जाना चाहिये।

इसके बाद और भी बहुतसे व्याख्यान हुए पर सबका क्रोध मनुष्यजातिपर था, यदि मनुष्यजातिके विरुद्ध ये वक्तृतायें मर्त्य लोकमें हुई होतीं, और मनुष्य इनको समझ पाता तो मनुष्येतरप्राणियोंके लिये कतले आम कर बैठता, पर यहां तो कौन्सिलकी तरह स्वर्ग या परलोकमें इसका भय नहीं था, इसीसे मामूली जीवोंनेभी जो कभी मनुष्यके खिलाफ चूँ तक नहीं करते थे, खूब जहर उगला,

अन्तमें काकभुशुण्डीका सयुक्तिक सारगर्भित व्याख्यान हुवा—"महोदय! आपलोगोंने सबकी बातें सुनली, पूर्व वक्ताओंने जो कुछ कहा है, सच कहा है, भाईयो! यदि ज्ञानी, अज्ञानियों जैसा व्यवहार करने लगे तो बड़े दुःखकी बात है। यदि धर्मात्मा लोग धर्मकी आड़में अनर्थ करने लगें तो बहुतों का सत्यानाश हो सकता है, साक्षर पण्डितोंको दुर्व्यवहार ही राक्षस रूपमें परिणत कर देता है, जिसको हमने भला समझा उसके सभी व्यवहार हमारी जातिके लिये बुरे सिद्ध हो रहे हैं। मनुष्य चाहता तो अपनी प्रतिभा, सामर्थ्य, तथा बुद्धि आदि योग्यताओंसे संसारमें सुख शान्तिकी मन्दाकिनी बहा देता। पर इसने इस स्वर्ण सुयोगसे लाभ नहीं उठाया। मनुष्यने रक्षाके जितने साधन तय्यार किये हैं, उससे कहीं बढ़कर विनाशकी सामग्री सरजी है, यह अपनी तो रक्षा चाहता है, किन्तु दूसरोंके विनाश करनेसे बाज नहीं आता। यह भली भांति जानता है कि - यह देह क्षणभंगुर है, जरासी चोटसे कभी भी ढेर हो जा सकती है, पर बन्दिशें ऐसी-ऐसी बांधता है कि—मानो अमृतत्वका पट्टा लिखाकर लाया है, आया अकेला है, जायगा भी अकेला ही। किन्तु कुटुम्बकी फौजके लिये ऐसे-ऐसे अनर्थ करता है, जिसकी कालिमाका दाग़ इसके मुंहपरसे मरनेके भी बाद नहीं छूटेगा अस्तु—यह जैसा भी हो हमें इस विषयमें कुछ नहीं कहना है। हमतो इसके अन्यायसे बचना चाहते हैं। इस समय हम खिन्न हैं, परेशान हैं, हमने मनुष्यके प्रति जो कहा है, अनिच्छासे कहा है, दुःखी होकर कहा है।

अब मैं इसके अन्यायसे बचनेके दो ही उपाय देखता हूँ एक तो यह कि—हम सब जीवजन्तुसम्मिलित शक्तिसे इसके शत्रु हो जायं, इसको जहां जिस जगह जिसप्रकार जैसे पावें नोच डालें, खा लें काट लें भंभोड़ लें, डस लें, इसकी उपयोगी सामग्रीको नष्ट कर दें, इसका चलना, बैठना, सोना, खाना, पीना, पहनना, आदि कुल व्यवहार दुःसाध्य कर दें, तात्पर्य यह है कि—इसका संसारमें रहना मुश्किल कर दें। ऐसा करनेसे यातो यह संसार पृष्टपरसे अशुद्ध अक्षरकी

तरह सदाके लिये मिट जायगा। अथवा अपने दुराचरणों पर पश्चात्ताप करता हुवा इतर जातियोंके प्रति अन्याय करना छोड़ देगा। दूसरा उपाय यह है–हम सबलोग परमपिता परमात्माके दरवारमें हाजिर हो अपनी करुण दुःखद गाथा-वर्णन करते हुए इसके अन्यायसे वचनेकी प्रार्थना करें। भगवान् करुणालय है, गरीव नमाज़ है, न्यायकारी है, दुष्टदल-दलन कर्ता है, उसकी सरकारमेंकी हुई हमारी प्रार्थना व्यर्थ न जायगी। अखिल विश्वकी मर्यादा-रक्षा करना उसके जिम्मे है।

मैं समझता हूं अन्तिम उपाय ही निष्कण्टक है, क्योंकि—पहले उपायका अवलम्वन करनेसे भूत-द्रोह करना पड़ेगा, महाभारत छिड़ जायगा जब ठन जायगी तब मनुष्य जातिको हम मिटा देंगे, विजय हमारी होगी इसमें सन्देहका लेश नहीं, क्योंकि—धर्म हमारे पक्षमें है, इसको तो इसीका पाप चाट जायगा, हम निमित्त मात्र बनेंगे। परन्तु मेरी सम्मति शान्तउपायसे ही काम लेनेकी है। समय बहुत हो गया, मुझे कहना तो बहुत कुछ था, अनेक शताब्दियोंके अत्याचारका संक्षेपसे मिनटोंमें कैसे वर्णन किया जा सकता है? अतः मैं 'मनुष्य-स्वभाव' का कुछ ह दिग्दर्शन करा कर बैठ जाना चाहता हूँ।

इस व्याख्यानका सब जीवोंने करतल-ताल-ध्वनिसे सहर्ष समर्थन किया। अनन्तर सभापतिजीने जलचर-नभचर और स्थलचर प्रभृति प्राणियोंका एक शिष्टमण्डल, (डेपूटेशन) बनाया, जो परमेश्वरके समक्ष उपस्थित हो अपना अभिप्राय प्रकट करे।

अगले दिन सात जन्तुओंका 'शिष्टमण्डल' परमेश्वरके सामने जा उपस्थित हुवा। भगवान् का दरवार लगा था, प्रभु स्वयं सबकी सुन रहे थे, वहाँ वकील, दलील-अपील की आवश्यकता नहीं थी, वे खुले आकाशके सामियानेके नीचे पृथ्वीकी विस्तृत जाजम बिछाये बैठे थे, विना किसी सम्वाद-सूत्रकी सहायताके उनके पास प्रत्येक-प्रत्येक घटनाकी प्रतिक्षणकी खबर साङ्गोपाङ्ग पहुँच जाती थी, जगन्नियन्त्रण उनके लिये चुटकी बजाना है। सभामें राम, कृष्ण, बुद्ध शंकर, प्रभृति बड़े-बड़े अवतार, महापुरुष, ऋषि और सिद्ध विराजमान थे। 'शिष्ट-मण्डल' के प्रधान श्री राजहंसने आद्योपान्तस्थिति और प्रार्थना घट-घटके पट-पटकी सब खटपटजाननेवाले भगवान्के समक्ष बहुत अच्छे शब्दोंमें निवेदन की।

महात्माने कहा—ईश्वरके समस्त जीव जन्तुओंकी तरफसे मनुष्यके विरुद्ध जो बहुत लम्बी प्रार्थनाकी गई थी, उसका सारांश यह था कि—"हे परमपिता! अबकी वार जो संसार रचाजाय, उसमें मनुष्यको न भेजा जाय, इसे आप अपने ही पास रखलें। यदि आप संसारमें भेजना ही उचित समझें, तो इसको किसी दूसरे जगत (दुनिया) में भेज दीजिये, जहां हममेंसे कोई न हो; न हमारे तक इसकी कदापि पहुँच हो।"

यह सुन ईश्वरने मनुष्यके प्रतिनिधियोंको बुलाकर जन्तुओंके लगाये अभियोग (इलजाम) को सुनाकर कहा—"इस विषयमें तुम क्या कहना चाहते हो?"।

मनुष्यने कहा—"देवाधिदेव! आपको सब अवगत है, आपके समक्ष हम अन्यथा नहीं बोल सकते, हमने आपकी रची सब वस्तुओंको अपना भोग्य समझा, हमारा निश्चय था, और है कि–'संसारमें जो कुछ है मनुष्यके लिये है।' इसीसे हमने उचितानुचितका कुछ भी खयाल न करके अपनी भोग्य वस्तुओंका यथेच्छ उपयोग किया।"

ईश्वरने कहा—"ठीक है तुमने जो कुछ समझा स्वार्थपूर्ण समझा, 'संसारमें जो कुछ है मनुष्यके लिये है' यह तो तुमने समझा। किन्तु–'मनुष्यका जो भी कुछ है वह संसारके लिये है' यह तुमने नहीं समझा।

तुमने स्वार्थ-परायण हो अपना प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये इनको अपना समझ लिया, पर परार्थैक-प्रवण हो अपना सब कुछ दूसरोंके लिये है, यह उचित नहीं समझा।"

अच्छा यह बताओ—"तुमने अनेक बहाने बना बनाकर जीव-जन्तुओंके साथ बुरेसे बुरा अत्याचार क्यों किया? मैंने तुझे संसारमें 'प्राणियोंमें सर्व श्रेष्ठ, बनाकर इसीलिये भेजा था? क्या तुमने मनुष्यताके घमण्डमें आकर नरसे नारायण हो जानेका स्वर्ण सुयोग नहीं गवां दिया?। कारण बतलाओ कि-तुम्हारे पर बुद्धिपूर्वक विश्वासघात करने और अधिकारके दुरुपयोग करनेका अभियोग क्यों न चलाया जाय?।

महात्माने कहा—भगवान्‌ने मनुष्यको बहुत कुछ कहा, वह सब मुझे याद नहीं है, पर भगवान्‌की कड़ी फटकारसे मनुष्य कांप गया और निरुत्तर हो गया।

अनन्तर सभामें बैठे अवतार ऋषि तथा महात्माओंने भगवान्‌से सम्मिलित प्रार्थना की कि-"करुणालय! पतितपावन!! रक्षक!!! यह इसकी पहली शिकायत है, अबकी बार क्षमा कर दीजिये, आगे ऐसा नहीं होने पावेगा, आपके समक्ष यह प्रतिज्ञा करता है कि-आजसे मैं खूब 'विचार' से काम लूँगा" और यह भी प्रतिज्ञा करता................वस इस अर्द्धोक्तिको सुननेके समय महात्माजीकी निद्रा भंग हो गई, साधु जाग गया। जागने पर भी महात्माको यही मालूम होता रहा कि-मैं अब भी स्वप्न देख रहा हूँ। कुछ देर बाद यह अद्भुत-स्वप्न महात्माने हरिद्वार कुम्भ पर 'सिद्धाश्रम' में हुई 'सन्त-सभा' को सुनाया। सुनकर प्रत्येक सन्तने बार-बार उक्त वाक्यको इस प्रकार दोहराया कि-"आजसे मैं खूब 'विचार' से काम लूंगा।"

सितार?

(ले०—श्रीमान् पं० हरदत्तजी. शर्मा)

बजालेरे मन! प्रेम सितार, रिझाले श्रीपति नन्दकुमार॥ टेक॥
पुराने वासना वस्त्र उतार, नहा संयम गंगाकी धार।
खूब मल-मल कर मैल उतार॥ रिझाले श्री पति०॥ १॥
बनाले प्राण अपान समान, त्याग ममता आलस अभिमान।
मिटाले आवागमन विकार॥ रिझाले श्री पति०॥ २॥
यह शरीर शुभ सुन्दर सार, है सोई सितार आकार।
शास्त्र गुरूका ज्ञान विचार॥ रिझाले श्री पति०॥ ३॥
तनकी नस तार बनाले, कस-कस कर करताल मिलाले।
भरदे प्रेममयी झनकार॥ रिझाले श्री पति०॥ ४॥
यही है भक्ति यही है ज्ञान, यही है योग यही निर्वाण।
कि निकले रग-रगसे ओंकार॥ रिझाले श्री पति०॥ ५॥
तेरे हृदय कमल दरबार, विराजे हैं जीवन आधार।
सोहि निराकार सोई साकार॥ रिझाले श्री पति०॥ ६॥

प्रेषक, भि० ब्र० शिवचैतन्य।

शिव-भक्त महर्षि दधीचिजी

(लेखक—सेठ गौरीशङ्कर गनेड़ीवाला)

मुनीन्द्र दधीचि और राजा क्षुपमें बड़ी घनिष्ट मित्रता थी। उन दोनोंका खान-पान उठना-बैठना सदा एक-साथ हुआ करता था। एक बार दैववश दोनोंमें झगड़ा होगया। दधीचि कहते थे कि—ब्राह्मण उत्तम होते हैं, और क्षुप कहते थे कि—नहीं, क्षत्रिय उत्तम हैं। क्षुप का कहना था कि—राजा आठों दिक्पालोंके अंशसे उत्पन्न होता है, इसलिए मैं ही इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और कुबेर हूँ। मैं ही साक्षात् परमेश्वर हूँ, मुझसे बढ़कर संसारमें और कौन हो सकता है? हे दधीचि! मैं पूज्य हूँ, इसलिए तुम मेरी पूजा किया करो।

एक क्षत्रियके ऐसे अभिमान भरे वचन सुनकर परम तेजस्वी दधीचि मुनिको बड़ा क्रोध आया, और उन्होंने बायें हाथसे क्षुपके सिरमें एक घूँसा मारा। राजा क्षुप इस प्रहारसे बहुत कुपित हुए और उन्होंने दधीचि को वज्रसे मारा। उस वज्रके प्रहारसे दधीचि पृथिवी पर गिर पड़े और आर्त होकर विलाप करने लगे। तब उन्होंने शुक्रका स्मरण किया। स्मरण करतेही शुक्र आकर उपस्थित हो गये, और मृतसंजीविनी विद्याके द्वारा उनका शरीर पहिलेके समानही सुन्दर कर दिया।

दधीचिके स्वस्थ हो जानेके अनन्तर शुक्रने कहा कि—हे मुने! मैंने भगवान् उमापतिकी आराधना करके मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की है, और भगवान् शम्भुके भक्तोंको मृत्युसे भी भय नहीं होता। इसलिये आप उन्हीं की आराधना करके अजर-अमर बन जाइये। उनकी सेवा करनेसे संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो न प्राप्त हो सके। महामृत्युञ्जय महादेवके पूजनसे मृत्यु का भी भय नहीं रह जाता।

शुक्रके कथनानुसार दधीचि मुनिने अत्युग्र तपस्या कर शङ्कर भगवान्को संतुष्ट कर लिया और उनकी कृपा से उनकी सभी हड्डियाँ वज्रके समान कठोर हो गयीं। इसीके साथ-साथ अवध्यत्व और अदीनत्व वर भी उन्होंने प्राप्त कर लिया।

इसप्रकार देवेशकी आराधना करके दधीचिने राजेन्द्र क्षुपको पैरोंसे खूब मारा। उन्होंने भी अपने वज्रसे दधीचिकी छातीमें प्रहार किया, परन्तु वज्र स्थिर होनेके कारण उस प्रहारका उन पर कुछ भी असर नहीं हुआ। भगवान्की कृपासे उस वज्रका प्रहार उनको पुष्प-प्रहार सा प्रतीत हुआ।

अपने अव्यर्थ वज्रके प्रहारको निष्फल होता देख कर राजा क्षुप बहुत चिन्तित हुए और दधीचिसे बदला लेनेके लिये भगवान् मुकुन्दकी आराधना करने लगे। चिरकाल तक कठिन तप करने पर वे प्रसन्न हुए, और शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए, बनमालासे सुशोभित, भगवान् विष्णु गरुड़ पर चढ़कर राजा क्षुपके सामने आये।

भगवान्की सौम्य मूर्तिको देखकर वे भक्तिपूर्ण हृदयसे स्तुति करते हुए रो रो कर कहने लगे कि—हे देवदेव! हे जगन्निवास! हे शरणागतपरिपालक! दधीचि ने पैरोंसे ठुकराकर मेरा बड़ा अपमान किया है। वे पहले तो मेरे मित्र थे, पर अब शत्रु हो गये हैं। उन्हें इतना अभिमान हो गया है कि—वे किसीसे भी नहीं डरते। वे अब अपनेको अवध्य एव अजेय समझने लगे हैं। हे महाराज! मैं उनसे बदला लेना चाहता हूँ। आप ऐसी कृपा कीजिये कि—मैं उन्हें नीचा दिखा सकूँ।

सर्वज्ञ भगवान् विष्णुने महात्मा दधीचिके अवध्

व्यग्य पर विचार कर तथा भगवान् महेशके अतुल प्रभाव को सोचकर राजा क्षुपसे कहा कि हे राजेन्द्र ! रुद्र का भक्त यदि नाच भी हो तो उसे किसी प्रकारका भय नहीं रहता, ब्राह्मण यदि शिवका भक्त हो जाय तो उसे भयकीही आशङ्का नहीं हो सकती । परमशैव दधीचि मुनीन्द्रका तो कहनाही क्या, वे एक असाधारण शिव भक्त हैं । इसलिए दधीचिको हराना तुम्हारी शक्तिके बाहरकी बात है । युद्धमें तुम उनको किसी प्रकार पराजित नहीं कर सकते । परन्तु तुमने मेरी आराधना की है, इसलिये मैं प्रयत्न करूँगा कि—किसी प्रकार उनका पराजय हो ।

ऐसा कहकर भगवान् विष्णु ब्राह्मणका रूप धारण कर दधीच ऋषिके आश्रममें गये, और विनीतभावसे दधीचिको प्रणाम करके कहने लगे कि—हे महाराज ! मैं आपसे एक वर मांगता हूँ। आप शिवजीके परम भक्त हैं । अतएव आपको मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करनी चाहिये । महर्षि दधीचि विष्णु भगवान्‌की इस मायाको समझ गये, और उन्होंने कहा कि—हे जनार्दन ! मैं आपका अभिप्राय समझ गया । मैंने जान लिया है कि—आप विष्णु हैं और ब्राह्मणका रूप धारण कर यहां आये हैं । राजा क्षुपने तप करके आपको प्रसन्न कर लिया है, उसीकी कामनापूर्तिके लिये आप मेरे पास पधारे हैं। हे मुरारे ! मैं आपकी भक्तवत्सलताको अच्छी प्रकार समझता हूँ । भगवान् शंकरकी कृपासे मुझे भूत, भविष्य और वर्तमानकी सभी बात अच्छी तरह ज्ञात हो जाती है । अतः हे पूज्य भगवन् ! इस विप्रवेषको त्यागकर आप अपना असलीरूप धारण कीजिये । हे महाराज ! मैं सच्ची बात कहता हूँ और महादेवजी पर भरोसा करके संसारमें सुर-असुर किसीसे भी नहीं डरता ।

दधीचिके ऐसे बचन सुनकर विष्णुने विप्रका वेष त्याग दिया और असलीरूप धारण कर मुस्कुराते हुए बोले कि—हे दधीचि ! मुझे अच्छी तरह ज्ञात है कि—आप शिवभक्त हैं, सर्वज्ञ हैं । इससे आपको संसारमें किसीसे भय नहीं है, पर मेरे कहनेसे आप एक बार राजा क्षुपसे कह दीजिये कि—मैं तुमसे डरता हूँ । मुझे आशा है कि—आप मेरी इस छोटीसी बातको अवश्य मान लेंगे ।

भगवान्‌के ऐसे विनीत वचन सुनकर भी दधीचि ने कहा कि—मैं किसीसे नहीं डरता, किसीके सामने विनीत और भीत वचन नहीं कह सकता । मैं त्रैलोक्यपति सर्वसुखप्रद भगवान् शङ्करका भक्त हूँ, मेरे मुख से ऐसे दीन वचन नहीं निकल सकते ।

दधीचिके ऐसे अभिमानपूर्ण बचन सुनकर भगवान् विष्णुको क्रोध आ गया और दधीचिको मारनेके लिये उन्होंने अपना अकुण्ठित सुदर्शन चक्र चलाया, पर वह चक्र भी मुनि पर कुण्ठित हो गया । चक्रको व्यर्थ होते देख दधीचि हँस कर बोले कि—आपने यह दारुण सुदर्शन चक्र बड़े प्रयत्नसे चलाया था, पर वह मुझे मार नहीं सका । आप मेरे ऊपर ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र आदि जो चाहिये, वह अस्त्र-शस्त्र चला कर देख लीजिये । कदाचित् आपकी अभिलाषा पूरी हो जाय !

अपने चक्रको निर्वीर्य होते देखकर विष्णु भगवान्‌ने उनके ऊपर अनेक अस्त्र-शस्त्र छोड़े, सब देवता भी विष्णुकी सहायताके लिये आ गये और उन अकेले ब्राह्मणके ऊपर अपने अनेक आयुध छोड़ने लगे । दधीचि ने शङ्कर भगवान्‌का स्मरण कर एक मुट्ठी कुश उठा लिया और देवोंके ऊपर फेंक दिया । उन कुशोंका परम भीषण कालाग्नि सदृश त्रिशूल बन गया और वह सब देवोंको भस्म करने लगा । देवों द्वारा चलाये हुए सभी अस्त्र-शस्त्र उस त्रिशूलको नमस्कार करने लगे और सब देवता प्राण लेकर वहांसे भागे ।

विष्णुने अपने शरीरसे ऐसे लाखों पुरुष उत्पन्न

किये, पर उन सबको उस त्रिशूलने क्षण भरमें भस्म कर डाला। तब विष्णु भगवान्‌ने अपना विराट् रूप धारण किया। दधीचिने उनके शरीरमें असंख्य देवता, करोड़ों रुद्र और करोड़ों ब्रह्माण्ड देखे। पर दधीचि महर्षिने अपने कमण्डलुके जलसे अभ्युक्षण कर उस विराट्‌रूपको शान्त कर दिया और स्वयं विराट्‌रूप धारण करके विष्णुको अपने शरीरमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सभी देव दिखाते हुए कहने लगे कि -हे विष्णो! इसप्रकारकी माया दिखानेसे क्या होनेका है? ऐसी माया तो मैं स्वयं दिखा सकता हूँ। यदि युद्ध करना हो तो इस मायाका परित्याग कर वीरताके साथ युद्ध कीजिये। वीरता के साथ युद्ध करनेमें ही जय और पराजयका पता चल सकता है।

महर्षिके कथन पर ब्रह्माजीने विष्णुको युद्ध करने से रोक दिया और वे उन मुनिको प्रणाम कर चले गये। राजा क्षुप बहुत दुःखित हुए और पूज्य महर्षि दधीचि-को प्रणाम कर कहने लगे कि—हे महर्षे! मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मैंने अज्ञानसे आपके साथ दुर्व्यवहार किया और आपका प्रताप नहीं जाना। अब मुझे विश्वास होगया कि—शिवभक्तका संसारमें कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। आप शिवभक्त हैं, आपके साथ वैर करके मैंने बड़ी भूलकी है। हे महाराज! मेरा अपराध क्षमा कीजिये।

ब्राह्मणोंका हृदय कोमल तो होताही है, इतनी प्रार्थना करनेसे महर्षि दधीच प्रसन्न हो गये और उन्होंने उनका अपराध क्षमा कर दिया। तभीसे उस स्थानका नाम* स्थानेश्वर पड़ गया और वह परम पावन तीर्थ माना जाने लगा। स्थानेश्वर तीर्थमें पहुँच जानेहीसे शिवसायुज्यमुक्ति प्राप्त होती है। लिङ्गपुराणमें लिखा है कि—

'तदेव तीर्थमभवत् स्थानेश्वरमिति स्मृतम्।
स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ७७॥'
(लिं० पु० पू० ३६ अ०)

योगतत्त्व-मीमांसा

(प्रथमखण्ड-पृष्ठ-५६ से आगे)

वेदान्त-सिद्धान्तमें एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, और नामरूपात्मक सकल विश्व मिथ्या है। 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' अर्थात् जीव और ब्रह्म एकही हैं, भेदका कारण अविद्या है। अविद्यासे ही जीव अपनेको ब्रह्मसे पृथक् मानता है। अतः वेदान्त-दर्शनका मुख्य उद्देश्य है—जीवको दुःखमय संसारसे मुक्त करके आनन्दनिधि ब्रह्मस्वरूपमें स्थापित करना। जीव-ब्रह्मका अभेद बतलानेवाला सूत्र है—

आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च।' (४।१।३)

जीवात्मा ही परमात्मा हैं, इसप्रकार निश्चय करना चाहिये। क्योंकि सकल उपनिषदोंमें उस परमात्माको जीवरूपसे प्रतिपादन किया है, अतः सकल विद्वान् जीवात्माको परमात्मरूपसे ही निश्चय करते हैं, तथा अपने शिष्योंको इसप्रकार ही उपदेश देकर ग्रहण कराते हैं।

यह जगत् ब्रह्मका विवर्त है। 'अतत्त्वतोऽन्यथा-प्रथा विवर्तः' अर्थात् स्वस्वरूप ब्रह्मात्मतत्त्व निर्विकार-एवं असङ्ग रहने पर भी जो उसमें अन्यथा प्रतीति है, उसे विवर्त कहते हैं। निर्विकार निराकार एकरस-पूर्ण ब्रह्म कदापि जगत् रूपसे परिणत नहीं होता। किन्तु मायाके सम्बन्धसे उसमें जगत्‌की भ्रान्ति होती है। जैसे मरुस्थलमें जल न होने पर भी दोषसे अज्ञ-पुरुषको उसमें जल-भ्रान्ति होती है, तद्वत् अद्वितीय-परब्रह्ममें वस्तुतः द्वैत-संसार न होने पर भी भ्रान्तिसे उसमें प्रतीति होती है।

(क्रमशः)

* स्थानेश्वर शिव कुरुक्षेत्र जिला अम्बालामें है।

भाषण

(लेखक—'विश्वनाथ' सम्पादकजीका)

मित्रो ! सज्जनो ! राम-कृष्ण परमहंसदेवजी एक बड़े भारी ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष थे। जिनने संसारके अनेक अज्ञजनोंका ज्ञान उपदेशके द्वारा अज्ञानान्धकार दूर किया। ऐसे ज्ञान-प्रदाता महापुरुषकी उपमा संसारके किसी भी पदार्थके द्वारा नहीं दे सकते, अतएव ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी महापुरुष अलौकिक एवं निरुपमेय ही रहते हैं।

आचार्य श्रीशंकर स्वामीने कहा था—

दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातुः।
स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्यः स नयति यदहो स्वर्णतामश्मसारम्॥
नो स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरणयुगे सद्गुरुः स्वीयशिष्ये।
स्वीयं साम्यं विधत्ते भवति निरूपमस्तेन वाऽलौकिकोऽपि॥

ज्ञान प्रदाता सद्गुरुके स्वरूपका निर्णय करनेके लिये विद्वानोंको त्रिभुवनमें भी उपमेय दृष्टान्त नहीं मिल सकता। यदि कहो कि—गुरुकी उपमाके लिये पारसमणि दृष्टान्त हो सकता है, पारसमणि जैसे लोहेको सुवर्ण बना देती है, तद्वत् सद्गुरु भी लोहेके समान मलीन अज्ञानी जीवको सुवर्णके समान शुद्ध-ज्ञानी बना देते हैं। परन्तु यह भी दृष्टान्त ठीक-ठीक नहीं घट सकता। क्योंकि पारसमणि लोहेको सुवर्ण तो बना देती है, परन्तु अपने समान पारसमणि नहीं बना सकती और सद्गुरुदेव अपने चरणाश्रित-शरणागत-शिष्यको ज्ञान देकर अपने समान शुद्ध ब्रह्मस्वरूप बना देते हैं, इसलिये सद्गुरु अलौकिक एवं अनुपमेय हैं।

किसी भाषाके कविने भी कहा है—

सन्त अरु पारसमें, बड़ो अन्तरो जान।
वो लोहा कञ्चन करे, वो करे आप समान॥

परमहंस देवजीका उपदेश सारगर्भित अथच अपने ढंगका अनोखा था। जैसे भगवान् श्रीकृष्णजीने अपने प्रिय शिष्य अर्जुनको उपदेश दिया था कि—

तांस्तितिक्षस्व भारत।

हे भारत ! अर्जुन ! तितिक्षा कर, सहन कर।

इसी प्रकार परमहंसदेवजीने भी विलक्षण ढंग द्वारा दृष्टान्त बनाकर उपदेश दिया था कि—

वर्णमालामें 'क' 'ख' आदि सभी अक्षर एक-एक हैं परन्तु सकार तीन हैं, दन्त्यसकार, तालव्यशकार और मूर्धन्यषकार। इनका मतलब है कि—सहो, सहो और सहो। जो जितना सहनशील होगा, वह उतना ही अपने साधन-मार्गमें आगे बढ़ता चला जायगा।

परमहंसदेवजी अपने इष्ट-देवके उपासक भी अद्वितीय थे। वे सच्चिदानन्द, जगदन्तर्यामी, विश्वेश्वर भगवान्की उपासना, स्नेहमयी, दयामयी, अमृतमयी, जगज्जननी, आनन्दरूपा, माताके रूपमें करते थे। अतएव उनकी उपासना मृदुल एवं मधुर थी। भगवान सर्वरूप हैं। उस एक ही भगवान्के अनन्त नाम एवं अनन्तरूप हैं। अपनी-अपनी भावनाके अनुसार चाहे किसी भी रूपकी किसी भी नामके द्वारा उसकी उपासना की जाय, वह भक्तकी भावनके अनुसार उसी रूपमें प्रकट हो जाता है।

कहा है—

भक्तभावानुसारेण जायते भगवानजः।

हरि व्यापक सर्वत्र-समाना, प्रेमसे प्रकट होहिं मैं जाना।
जाकि रही भावना जैसी, प्रभु मूरत तीन्ह देखी तैसी॥

तमाम विश्व एकमात्र अपने इष्ट-देवमय हो जाय, सभीमें उस एकमात्र इष्टका ही दर्शन हो, यही उपासना

की परिपक्व अवस्था है। भक्त अपने भगवान्को छोड़कर अन्य वस्तु देखना नहीं चाहता। भक्तोंकी एकमात्र भगवन्मय ही निष्ठा होती है।

कहा है—

एकान्तभक्तिर्गोविन्दे, यत्सर्वत्र तदीक्षणम्।

ज्ञान-योगी महर्षि शुकदेवजीकी दृष्टि एकमात्र ब्रह्ममयी थी। नाम-रूपात्मक पदार्थोंकी पृथक्-सत्ता उनकी दृष्टिसे गायब हो गई थी। श्रीमद्भागवतमें उनका चरित्र-चित्रण बड़े अच्छे ढंगसे किया है—

दृष्ट्वाऽनुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नम्,
देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम्।
तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति,
स्त्रीपुम्भिदा नतु सुतस्य विविक्त दृष्टेः॥

ब्रह्मतत्त्वका यथार्थ द्रष्टा मस्ताना योगी शुकदेवजी जंगलमें जा रहे हैं। उनकी अवस्था षोड़शवर्षकी है, शरीर हृष्ट-पुष्ट—सुन्दर एवं चित्ताकर्षक है। मार्गमें एक सरोवर आता है, वहां देवाङ्गनायें, नग्नस्नान कर रही हैं। उसके समीपसेही नग्नवेशमें शुकदेवजी जा रहे हैं। पीछेसे हे पुत्र! हे पुत्र! इस प्रकार पुकारते हुए व्यास महाराज आ रहे हैं। शुकदेवजीको देखकर देवाङ्गनाओं ने कुछ भी शरम नहीं किया, वस्त्र नहीं धारण किये। वृद्ध व्यासजीको देखकर देवाङ्गनाओंने लज्जा की, और वस्त्र पहिन लिये। व्यासजीने इसका कारण उनसे पूछा—देवाङ्गनाओंने कहा—आप यद्यपि वृद्ध हैं, वस्त्र पहिने हुए हैं, तथापि आपकी दृष्टिमें स्त्री पुरुषका भेद विद्यमान है। और आपका वह पुत्र शुकदेव यद्यपि नग्न है, नवयुवक है, तथापि उसकी दृष्टिमें स्त्री-पुरुषका भेद नहीं है, वह इस नामरुपात्मक मिथ्या-दृश्यको नहीं देखता, इसकी दृष्टिमें एक मात्र-ब्रह्मतत्त्वका ही प्रवेश है। इसलिये उससे लज्जा नहीं किया। उनका ऐसा सयुक्तिक उत्तर सुनकर व्यास महाराज चुप हो गये।

जिस प्रकार बाल-योगी शुकदेवजीकी दृष्टि-एक मात्र ब्रह्ममयी थी, उसी प्रकार हमारे चरित्र-नायक, वर्तमान युगके तत्त्वदर्शी प्रातः स्मरणीय, परमहंसदेवजी की दृष्टि भी एक मात्र इष्ट-देवमयी थी। सभी पदार्थोंमें उनको एकमात्र भगवतीका ही दर्शन होता था। एक समय उनके सामने एक युवती आ गई। परमहंसजी मां काली! मां काली! पुकारते हुए दौड़े और उसके चरण स्पर्श किया। लोगोंने कहा—यह तो एक साधारण स्त्री है, मां काली कैसे हो सकती है? परमहंसजीने कहा—मां कालीसे अतिरिक्त और क्या हो सकती है? मां कालीही अनेक—रूपोंमें दर्शन दे रही है। यह थी उनकी अनन्यनिष्ठा।

यद्यपि ऐसे ब्रह्मस्वरूप महापुरुषोंके दिव्य चरित्रों का अन्त नहीं होता, अनन्तका अन्त किस प्रकार पाया जा सकता है। तथापि अपनी वाणीको मन-बुद्धिको सफल बनानेके लिए सभी वक्ता कुछ न कुछ कहतेही हैं। नमः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः।' अलमधिकेन।

भाषण

[सभापति-पदासीन श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ-अद्वैतब्रह्मविद्यामार्तण्ड श्रीस्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज महामण्डलेश्वरजीका व्याख्यान]

शङ्करं शङ्कराचार्यं, केशवं बादरायणम्।
सूत्र-भाष्यकृतौ वन्दे, भगवन्तौ पुनःपुनः ॥

सज्जनो ! प्रभुके प्रेमियो ! आज हम उस महापुरुषके जन्म-दिनका उत्सव मना रहे हैं कि—जिसका यशःसौरभ समग्र पृथिवी मण्डलमें व्याप्त है। जिसके अमूल्य-उपदेशोंके फलस्वरूप, 'राम-कृष्ण-मिशन' देश विदेशके अनेक नगरोंमें वेदान्त—ज्ञानके साथ—साथ योगियोंके लिये भी दुर्लभ—सेवा धर्मका आदेश प्रकट कर रहा है।

हमारे वेदोंमें कहा है— आत्मानमेव लोकमुपासीत' लोक स्वरूप सर्वमय आत्माकी उपासना करो। आत्मा क्या वस्तु है ? बृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च ब्रह्म आत्मेति गीयते' जो सबसे बड़ा है, जिसकी सत्तास्फूर्ति सर्वत्र विद्यमान है, उस ब्रह्मको ही आत्मा कहते है। अद्वैत सिद्धान्तमें ब्रह्म ही आत्मा है। और वह ब्रह्म सर्वत्र है, सर्वाभिन्न है उससे भिन्न कुछ नहीं। श्रुतियोंमें कहा हैं —

'ब्रह्मैवेदंसर्वम्' 'आत्मैवेदं सर्वम्' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'

यह सब कुछ ब्रह्म ही है, आत्मा ही है।

भगवान्ने भी गीतामें कहा है—

'वासुदेवः सर्वमिति'

सब कुछ वासुदेव ही है। यही आत्मज्ञान है। उसे प्राप्त करनेवाला ही महात्मा है, ऐसा महात्मा दुर्लभ है।

अतएव सबको आत्मस्वरूप-ब्रह्मस्वरूप समझकर निष्कामभावसे सबकी सेवा करनी, सबके हितकार्यमें प्रवृत्त होना यह भी एक प्रकारकी आत्म—उपासना है। रामकृष्ण—परमहंसजीने संसारको यह उपदेश दिया था कि—प्रथम देव सेवा करो, पश्चात् देव—सेवासे शक्ति—सम्पन्न होकर देशसेवा करो। जिसने देव सेवा नहीं की है, वह कदापि देश—सेवा नहीं कर सकता। वर्ण—मालाके आनुपूर्वी-अक्षर हमें यही शिक्षा दे रहे हैं, वर्णमालामें प्रथम अक्षर है 'व' और उसके पश्चात् अक्षर है 'श'।

जो देवसेवा करता है, वह शक्तिशाली होकर सभीको अपने सद्गुणोंसे 'वश' में कर लेता है, क्योंकि 'व' के बाद है 'श'। और जो देव सेवाकी उपेक्षाकर केवल देश सेवाके लिये प्रयत्न करता है। अथवा जो प्रथम 'देश-सेवा' करनेके लिये उद्यत होता है, और देव-सेवाको पीछे रखता है, उसके लिये वर्णमालाके आनुपूर्वी 'व' और 'श' अक्षर उलट होकर 'श' और 'व' बन जाते हैं, अर्थात् देश सेवाके लिए देवसेवाकी उपेक्षा करनेवाला 'शव' यानी मूरदा शक्तिहीन बन जाता है। अतः प्रथम देव सेवा करनी चाहिये और पश्चात् देश-सेवा, क्योंकि देव भगवान्की कृपासे ही देश सेवा करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। परमहंसदेवजीने यही उपदेश अपने शिष्योंको दिया था। अतएव रामकृष्ण सेवाश्रममें इस उपदेश की झलक स्पष्ट देखनेमें आती है।

सज्जनो ! गुरु और परमात्मामें कुछ भेद नहीं है। गुरु भी देव हैं, और परमात्मा भी देव हैं। जिस प्रकार परमेश्वरकी भक्तिके लिये शास्त्रने उपदेश दिया है, उस प्रकार गुरु भक्तिके लिए भी कहा है——

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

जैसी मनुष्यकी परमेश्वरमें पराभक्ति होती है, उसी प्रकार गुरुमें पराभक्ति रखनेवाले शिष्यके हृदयमें शास्त्र-उपदिष्ट सकल-अर्थ प्रकाशित हो जाते हैं ।

राम-कृष्ण सेवाश्रमके अनुयायी संन्यासियोंकी गुरु-भक्ति प्रशंशनीय है । जिन्होंने अपने गुरु रामकृष्ण-परमहंसजीके शताब्दी समुत्सवके उपलक्ष्यमें '३६०' दिन तक देश-विदेशमें सर्वत्र गुरु-जयन्ती मनाई थी।

हरि ॐ तत्सत्

योगतत्त्व-मीमांसा

(द्वितीयखण्ड पूर्व प्रकाशितसे आगे)

(लेखक—श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामीजयेन्द्रपुरीजी महाराज मण्डलेश्वर)

श्रीशुकदेवजीने किसी एकदेशीके मतसे धारणाके विषयका वर्णन राजा परीक्षितसे इस प्रकार भागवतके दूसरे स्कन्धमें किया है—

केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे
　　प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ।
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्ख-
　　गदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥ (२।८)

प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं
　　कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससम् ।
लसन्महारत्नहिरण्मयाङ्गदं
　　स्फुरन्महारत्नकिरीटकुण्डलम् ॥

उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये
　　योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ।
श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकन्धर-
　　मम्लानलक्ष्म्या वनमालयाऽञ्चितम् ॥ (२।१०)

विभूषितं मेखलयाङ्गुलीयकै-
　　र्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः ।
स्निग्धामलाकुञ्चितनीलकुन्तलै-
　　र्विरोचमानाननहासपेशलम् ॥ (२।११)

अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्-
　　भ्रूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् ।
ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं
　　यावन्मनो धारणयाऽवतिष्ठते ॥ (२।१२)

एकैकशोऽङ्गानि धियानुभावयेत्
　　पदादि यावद्धसितं गदाभृतः ।
जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत्
　　परं परं शुद्ध्यति धीर्यथा यथा ॥ (२।१३)

यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्
　　विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ।
तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं
　　क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत् ॥ (२।१४)

हे राजन्, कोई-कोई लोग स्वदेहके भीतर हृदयाकाशमें रहनेवाले प्रादेशमात्र (अङ्गुष्ठ और तर्जनीको फैलानेसे जितना प्रदेश होता है उतने बड़े) चतुर्भुज शङ्खचक्र-गदा-पद्मधारी स्मरण करते हैं । वह पुरुष है कैसा—प्रसन्न मुख है, कमलपत्रके तुल्य बड़े-बड़े उसके नेत्र हैं, केसरके समान पीले वस्त्र पहने हैं, चमचमाते महारत्नजटित सुवर्णमय बाजूबन्द, सुन्दर उज्ज्वल बड़े-बड़े रत्नयुक्त किरीट और कुण्डल जिनके अंगोंमें शोभित है, योगाभ्याससे विकसित अपने हृदय-कमलकी कर्णिकारूपी आलयमें योगेश्वर जिनके पादपल्लवको धारण करते हैं, श्रीके सहित भृगुलताके चिह्नवाले, कौस्तुभ रत्नोंकी मालाको गलेमें धारण किये हुए, और कभी भी न कुम्हलानेवाली वनमाला (पञ्चरङ्गी पुष्पोंकी माला) से सुशोभित, मेखला बेशकीमती अङ्गुलीयक, नूपुर, कङ्कणादि भूषणोंसे विभूषित, स्निग्ध, निर्मल तथा

कुञ्चित नीलकेशोंसे अत्यन्त शोभायमान सुन्दर मुखवाले, उदारलीलासहित, मन्द मन्दहासयुक्त-ईक्षणसे सुशोभित भौंहोंकी चेष्टासे सूचित किया है—अत्यन्त अनुग्रह जिन्होंने, जबतक मन धारणामें टिक सके, तबतक ऐसे चिन्तामय (मनोमय) ईश्वरका ध्यान करे। गदाधारी भगवान्‌के चरणोंसे लेकर मुसकानयुक्त मुखपर्यन्त प्रत्येक अङ्गोंका अन्तःकरणसे ध्यान करे, जिस जिस अङ्गमें धारणासे मन टिक जाय, उस उस विजित अंगको छोड़कर अगले अगले अङ्गमें अपने मनको स्थिर करे, साधक जैसे जैसे मनको भगवान्‌के अङ्गमें धारणा द्वारा स्थिर करेगा वैसे वैसे उसकी बुद्धि शुद्ध होगी। ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर है, न्यून जिससे ऐसे निर्गुण ब्रह्मका नाम परावर है, इस निर्गुण परावर विश्वेश्वरमें जब तक भक्तियोग (परम प्रेम) पैदा न हो, तब तक नित्य नैमित्तिक आवश्यक क्रियाओंके अन्तमें इस स्थूल पुरुषके स्वरूपका पवित्र होकर प्रयत्नपूर्वक स्मरण करे। और जब सर्वान्तर्यामी निर्गुण परब्रह्ममें भक्तियोग पैदा हो जाय, याने निर्गुणब्रह्ममें चित्त रमने लग जाय, तब चिन्मात्र निर्गुण ब्रह्मकी धारणा करे। निर्गुण अद्वैत-विषयक धारणाका प्रतिपादन भी भागवतके दूसरे स्कन्धके द्वितीय अध्यायमें किया है।

मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य
क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि।
आत्मानमात्मन्यवरुद्ध्य धीरो
लब्धोपशान्तिर्विरमेत कृत्यात्॥ (२।१६)

न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः
कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे।
न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च
न वै विकारो न महान् प्रधानम्॥ (२।१६)

परं पदं वैष्णवमामनन्ति
तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदाः
हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे॥ (२।१८)

विवेकी धीर पुरुषको चाहिए कि—मल-विक्षेपरहित शुद्ध बुद्धिसे मनको नियमित बनाकर इस अपनी बुद्धिको क्षेत्रज्ञ (अन्तःकरणादिरूप क्षेत्रके द्रष्टा) में लीन करे। उस साक्षी त्वम्पदके लक्ष्य प्रत्यगात्माको तत् पद-लक्ष्य ब्रह्मसे अभिन्न निश्चय करे, इस प्रकार 'अहं ब्रह्मास्मि' अपरोक्ष निश्चयद्वारा शान्तिका लाभ करके कर्त्तव्य-बुद्धिको त्यागकर विरामको प्राप्त हो। जिस अपने स्वरूपको पाकर यह जीव संसारसे विरामको प्राप्त होता है, उस स्वरूपका वर्णन शुकदेवजी करते हैं—जिसको बड़े-बड़े इन्द्रादि देवताओंको भी मारनेवाला काल स्पर्श नहीं कर सकता है। मण्डलाधिपति देवताओंकी तो वहां गति कहांसे हो सकती है, न वहां सत्त्व, रज और तमका सम्पर्क है, न उसमें कोई विकार (ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय सूक्ष्मभूत व मन) हैं, न महत्तत्त्व है, न प्रधान है, और 'नेति नेति' इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे अनात्मवस्तुकी उपेक्षा करनेका स्वभाव है जिन महानुभावोंका, ऐसे महात्मा-लोग उस तत्त्वको सर्वश्रेष्ठपद या वैष्णवपद कहते हैं। दौरात्म्य-भेदबुद्धिका त्याग करके परमपूज्य सर्वान्तर्यामीका स्मरण हृदयसे पदपदमें करते हुए प्रत्यगभिन्न ब्रह्म-भावका अनुभव करते हैं। ये महानुभावही सबके सुहृद हैं।

और योगतत्त्वोपनिषद्‌में धारणाके विषय पृथ्वी आदि पांच तत्त्व कहे गये हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुराकाशश्चेति पञ्चकम्।
येषु पञ्चसु देवानां धारणा पञ्चधोच्यते॥ ८४॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच भूत हैं। इन पांच महाभूतोंमें पांच देवताओंकी धारणा पांच प्रकारसे कही गई है।

पादादिजानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानमुच्यते ।
पृथिवी चतुरश्रं च पीतवर्णं लवर्णकम् ॥ ८५ ॥
पार्थिवे वायुमारोप्य लकारेण समन्वितम् ।
ध्यायंश्चतुर्भुजाकारं चतुर्वक्त्रं हिरण्मयम् ॥ ८६ ॥
धारयेत् पञ्चघटिकाः पृथिवीजयमाप्नुयात् ।
पृथिवीयोगतो मृत्युर्न भवेदस्य योगिनः ॥ ८७ ॥

पैरके अँगूठेसे लेकर घुटने तक पृथिवीका स्थान कहा गया है । पृथिवीका आकार समरस चार कोनेवाला है । पृथिवीका वर्ण पीला है, 'लं' बीज है । पृथिवी तत्त्वमें प्राणवायुको स्थिर करके 'लं' बीजके सहित चार भुजावाले चतुर्मुख ज्योतिर्मय ब्रह्माजीकी मूर्त्तिका ध्यान करता हुआ पांच घड़ी पर्यन्त पृथिवीतत्त्वकी यदि धारणा करे, तो पृथिवीतत्त्वको साधक जीत लेता है । पृथ्वीतत्त्व के वशमें हो जानेसे साधककी पृथिवीके सम्बन्धसे मृत्यु नहीं होती है ।

आजानोः पायुपर्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्तितम् ।
अपोऽर्धचन्द्रं शुक्लं च वं बीजं परिकीर्तितम् ॥ ८८ ॥
वारुणे वायुमारोप्य वकारेण समन्वितम् ।
स्मरन्नारायणं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम् ॥ ८९ ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ।
धारयेत् पञ्च घटिकाः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९० ॥
ततो जलाद्भयं नास्ति जले मृत्युर्न विद्यते ।

घुटनोंसे लेकर गुदापर्यन्त जलतत्त्वका स्थान कहा गया है । जलका आकार अर्धचन्द्रके समान है, वर्ण शुक्ल है और 'वं' बीज कहा गया है । जलतत्त्वमें * प्राणवायुको स्थिर करके 'वं' बीजके सहित चार भुजावाले किरीट और पीतवस्त्र वाले शुद्ध स्फटिकके तुल्य अच्युत नारायण देवकी पांच घड़ी तक धारणा करे, तो साधक सब पापोंसे मुक्त होता है, और जलतत्त्वके वश में हो जानेसे जलसे भय नहीं रहता है, और साधककी जलसे मृत्यु नहीं होती है ।

आपायोर्हृदयान्तं च वह्निस्थानं प्रकीर्तितम् ॥ ९१ ॥
वह्निस्त्रिकोणं रक्तं च रेफाक्षरसमुद्भवम् ।
वह्नौ चानिलमारोप्य रेफाक्षरसमुज्ज्वलम् ॥ ९२ ॥
त्रियक्षं वरदं रुद्रं तरुणादित्यसंनिभम् ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं सुप्रसन्नमनुस्मरन् ॥ ९३ ॥
धारयेत् पञ्च घटिका वह्निनाऽसौ न दह्यते ।
न दह्यते शरीरं च प्रविष्टस्याग्निकुण्डके ॥ ९४ ॥

गुदासे लेकर हृदयपर्यन्त अग्निका स्थान कहा गया है । अग्निका आकार त्रिकोण है, वर्ण रक्त है और 'रं' बीज है । अग्नितत्वमें प्राणवायुको स्थिर करके अर्थात् मनको स्थिर करके 'रं' बीजके सहित त्रिनेत्र, वरदाता मध्याह्न सूर्यके तुल्य सम्पूर्ण अङ्गोंमें भस्म धारण किये हुए अग्नितत्वको पांच घड़ी पर्यन्त यदि धारण करे तो साधक वह्निसे नहीं जलता है, अग्नि उसको नहीं जलाती है । इच्छापूर्वक अग्निमण्डलमें प्रवेश करने पर भी इस साधकके शरीरको अग्नि नहीं जलाती है ।

आहृदयाद्भ्रुवोर्मध्ये वायुस्थानं प्रकीर्तितम् ।
वायुः षट्कोणकं कृष्णं यकाराक्षरभासुरम् ॥ ९५ ॥
मारुतं मरुतां स्थाने यकाराक्षरभासुरम् ।
धारयेत्तत्र सर्वज्ञमीश्वरं विश्वतोमुखम् ॥ ९६ ॥
धारयेत् पञ्च घटिका वायुवद् व्योमगो भवेत् ।
मरणं न तु वायोस्तु भयं भवति योगिनः ॥ ९७ ॥

हृदयसे लेकर भ्रूमध्यपर्यन्त वायुका स्थान कहा गया है । वायुका आकार षट्कोण है, कृष्ण वर्ण है, और 'यं' बीज है । वायुतत्त्वमें प्राणको स्थिर कर, प्रकाशमान 'यं' बीजके सहित सर्वतोमुख सर्वज्ञ ईश्वरकी वायुतत्त्वमें पांच घड़ीपर्यन्त यदि धारणा करे, तो साधक

* 'जिस जिस वस्तुमें मन स्थिर होता है' उस उस वस्तु में प्राण भी स्थिर होता है' यह नियम है, इसलिए पृथिवीतत्त्वमें मनको स्थिर करनेपर पृथिवीतत्त्वमें प्राण भी स्थिर हो जायगा ।

वायुकी तरह आकाशमें अप्रतिहत गतिवाला होता है, इस योगीको वायुसे भय नहीं होता एवं वायुसे नहीं मरता है।

आभ्रूमध्यात्तु मूर्धान्तमाकाशस्थानमुच्यते।
व्योमवृत्तं च धूम्रं च हकाराक्षरभासुरम् ॥९८॥
आकाशे वायुमारोप्य हकारोपरि शङ्करम्।
बिन्दुरूपं महादेवं व्योमाकारं सदाशिवम् ॥९९॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं धृतबालेन्दुमौलिनम्।
पञ्चवक्त्रयुतं सौम्यं दशबाहुं त्रिलोचनम् ॥१००॥
सर्वायुधैर्धृताकारं सर्वभूषणभूषितम्।
उमार्धदेहं वरदं सर्वकारणकारणम् ॥१०१॥
आकाशधारणात्तस्य खेचरत्वं भवेद् ध्रुवम्।
यत्र कुत्र स्थितो वाऽपि सुखमत्यन्तमश्नुते ॥१०२॥

भ्रूमध्यसे लेकर मूर्धापर्यन्त आकाशका स्थान कहा गया है। आकाशका आकार गोल है, रंग धूमके समान है और 'हं' बीज है। आकाशतत्त्वमें प्राणवायुको स्थिर करके 'हं' बीजाक्षरके ऊपर कल्याण करनेवाले अखण्ड मण्डलाकार गगनाकार शुद्ध स्फटिकके तुल्य बालचन्द्रमाको सिरमें धारण किये हुए, पांच मुखवाले सुन्दर दश भुजा तथा तीन नेत्रवाले सम्पूर्ण आयुधोंको धारण किये हुए सर्वभूषणोंसे भूषित उमा भगवती प्रकृति है आधी देह जिनकी, ऐसे वरदाता सब कारणोंके कारण सदाशिव महादेवके सहित आकाश तत्त्वकी धारणा करे। इस आकाश तत्त्वकी धारणासे साधककी आकाशमें अप्रतिहत गति होती है, यह ध्रुव सत्य है। जहां कहीं भी यह रहे वहां ही अत्यन्त सुखका भागी होता है।

एवं च धारणाः पंच कुर्याद् योगी विचक्षणः।
ततो दृढशरीरः स्यात् मृत्युस्तस्य न विद्यते ॥१०३॥
ब्रह्मणः प्रलयेनापि * न सीदति महामतिः ॥१०४॥

इसप्रकार पूर्वोक्तरीतिसे पृथिवी आदि पांच तत्त्वोंमें धारणाको विचक्षण योगी करे। इन धारणाओंके प्रभावसे योगीका शरीर दृढ़ हो जाता है। उस योगीकी मृत्यु नहीं होती। ब्रह्माकी आयु समाप्त हो जानेपर जो यावत् ब्रह्माण्डका प्राकृतिक प्रलय होता है। उसमें भी यह महाविद्वान् योगी दुःखी नहीं होता है।

अमृतनादोपनिषद्में धारणाका स्वरूप इसप्रकार वर्णित है—

मनः सङ्कल्पकं ध्यात्वा संक्षिप्यात्मनि बुद्धिमान्।
धारयित्वा तथात्मानं धारणा परिकीर्तिता ॥१॥

अर्थात् मन आदि प्रपंचको संकल्पमात्र चिन्तन करके संकल्पको आत्माका विवर्त होनेसे आत्मामें विलीन करे तथा शुद्धात्मा ही केवल है और कुछ नहीं है, ऐसा जो आत्मविषयक निश्चय है इसका नाम सिद्धान्तमें धारणा कहा गया है।

और तेजोबिन्दूपनिषत्में भी धारणाके स्वरूपका वर्णन है—

यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात्।
मनसा धारणं चैव धारणा सा परा मता ॥१।३५॥

जहां जहां मन जावे वहां वहां ब्रह्मदृष्टि करे, इस प्रकार जो मनकी स्थिति, इसका नाम परा धारणा है।

और त्रिशिखी ब्राह्मणोपनिषद्में—आन्तरतत्त्वमें चित्तकी निश्चलता धारणा कही गई है—

चित्तस्य निश्चलीभावो धारणा धारणं विदुः ॥ ३१ ॥

योगचूडामणि उपनिषद्में धारणाका इस प्रकार कथन है—

प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः।
प्रत्याहारद्विषट्केन जायते धारणा शुभा ॥१११॥

* प्रलय चार हैं—नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक और महाप्रलय। अस्मदादिसुषुप्ति नित्य प्रलय है। ब्रह्माकी सुषुप्ति नैमित्तिक प्रलय है, और ब्रह्माकी आयु समाप्त होनेपर जो ब्रह्माण्डका प्रलय है वह प्राकृतिक प्रलय है। ब्रह्मसाक्षात्कारसे होनेवाला अज्ञान तत्कार्यका लय महाप्रलय है।

पूरक, कुम्भक और रेचक इन तीनोंका नाम एक प्राणायाम है, ऐसे १२ प्राणायामोंका नाम एक प्रत्याहार कहा गया है, ऐसे बारह प्रत्याहार अर्थात् एक सौ चौआलीस प्राणायामोंसे एक धारणा होती है।

और शाण्डिल्योपनिषत्में धारणाका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है--

अथ धारणा सा त्रिविधा आत्मनि मनोधारणम्, दहराकाशे बाह्याकाशधारणम्, पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशेषु पञ्चमूर्तिधारणं चेति ॥९॥

अब धारणाके स्वरूपको कहते हैं---धारणा तीन प्रकारकी है---१--आत्मामें मनकी धारणा करना २--शरीरके भीतर हृदयकमलगत जो दहराकाश (सूक्ष्म चिदाकाश) है, उस प्रत्यगात्मरूप चिदाकाशमें बाह्य भौतिकाकाशके अध्यस्तरूपसे निश्चयकी धारणा करना ३--पृथिवीतत्त्वमें चतुर्मुख ब्रह्माकी, जलतत्त्वमें चतुर्मुख नारायणकी, अग्नितत्त्वमें त्रिनेत्र रुद्रकी, वायुतत्त्वमें विराट् पुरुषकी और आकाशतत्त्वमें निर्गुण गगनाकार महादेव सदाशिवकी अथवा सगुण ईश्वरकी धारणा करे। यह पाच भूतोंमें पंचमूर्त्तिकी धारणा योगतत्त्वोपनिषत् (८४) के अनुसार लिखी गई है।

और जाबालदर्शनमें (खण्ड ८) धारणाका स्वरूप और विषय इसप्रकार कहा गया है --

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धारणाः पञ्च सुव्रत ! ।
देहमध्यगते व्योम्नि बाह्याकाशन्तु धारयेत् ॥ १ ॥
प्राणे बाह्यानिलं तद्वत् ज्वलने चाग्निमौदरे ।
तोयं तोयांशके भूमिं भूमिभागे महामुने ! ॥ २ ॥
हयवरलकाराख्यं मन्त्रमुच्चारयेत् क्रमात् ।
धारणैषा परा प्रोक्ता सर्वपापविशोधिनी ॥ ३ ॥

(क) अर्थात् महायोगी दत्तात्रेय महाराज साङ्कृति मुनिको उपदेश करते हैं--हे उत्तम व्रतवाले मुनिजी ! अब मैं आपसे पांच प्रकारसे धारणाका स्वरूप कहता हूँ, मुमुक्षु सावधानचित्त होकर अपने देहमें जो आकाश का अंश है, उसमें बाह्याकाशकी धारणा करे, अर्थात् देहगत आकाशके अंश बाह्याकाशमें मिला दे, बाह्याकाश से अभिन्न समझे, और देहमें प्राणरूप जो वायुका अंश है, उसको बाह्यवायुसे अभिन्न समझे, बाह्यवायुमें मिला दें और अग्निके अंशको बाह्य अग्निमें मिला दे--बाह्य अग्नि से अभिन्न निश्चय करें तथा जलके अंशको बाह्य जल में मिला दे अर्थात् बाह्य जलसे अभिन्न चिन्तन करे। और हं यं वं रं लं इन मन्त्रोंका क्रमसे उच्चारण करे। इसीतरह सूक्ष्म देहके आकाशादि भागोंको भी बाह्य आकाशादिमें मिला दे अर्थात् आकाशादिस अभिन्न निश्चय करे। यह सब पापोंसे मुक्त करनेवाली पराधारणा कही गई है।

जान्वन्तं पृथिवी ह्यंशो ह्यपां पाय्वन्तमुच्यते ।
हृदयान्तस्तथाग्न्यंशो भ्रूमध्यान्तोऽनिलांशकः ॥ ४ ॥
आकाशांशस्तथा प्राज्ञ मूर्धांशः परिकीर्तितः ।
ब्रह्माणं पृथिवीभागे विष्णुं तोयांशके तथा ॥ ५ ॥
अग्न्यंशे च तयेशानमीश्वरं चाऽनिलांशके ।
आकाशांशे महाप्राज्ञ धारयेत्तु सदाशिवम् ॥ ६ ॥

अथवा हे महाबुद्धिमान् साङ्कृते ! देहमें घुटने पर्यन्त पृथिवीका अंश है, और घुटनसे लेकर गुदापर्यन्त जलका भाग है। गुदासे लेकर हृदयपर्यन्त अग्निका अंश है, और हृदयसे लेकर भृकुटिके मध्यपर्यन्त वायुका अंश है, और भृकुटिसे ऊपर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त आकाशका भाग है। पृथिवीके भागमें ब्रह्माजीकी धारणा करे, जलके अंशमें विष्णुकी धारणा करे, अग्निके अंशमें महेश्वरकी धारणा कर वायुके भागमें ईश्वरकी धारणा कर और आकशमें शुद्ध चिद्रूप सदाशिव की धारणा करे।

अथवा तव वक्ष्यामि धारणा मुनिपुङ्गव ! ।
पुरुषे सर्वशास्तारं बोधानन्दमयं शिवम् ॥ ७ ॥
धारयेद् बुद्धिमान् नित्यं सर्वपापविशुद्धये ।

अथवा हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं तुम्हारे लिए सर्वोत्तम धारणाको कहता हूँ—श्रवण करो, बुद्धिमान् जिज्ञासुको चाहिए कि -सब पापोंकी विशुद्धिके लिए स्वदेह-साक्षी प्रत्यगात्मामें सर्वान्तर्यामी चिदानन्दस्वरूप शिवकी धारणा करे अर्थात् शिवको साक्षी प्रत्यगात्मासे अभिन्न समझे ।

ब्रह्मादिकार्यरूपाणि, स्वे स्वे संहृत्य कारणे ॥ ८ ॥
सर्वकारणमव्यक्तमनिरूप्यमचेतनम्
साक्षादात्मनि सम्पूर्णे धारयेत् प्रणवेन तु ॥

अथवा ब्रह्म आदि निखिल कार्यप्रपञ्चका अपने-अपने कारणमें लय करके सर्वकारण अनिर्वचनीय अव्यक्त जड़ मायाको साक्षादात्मामें धारण करे, अर्थात् निखिल मायादिप्रपञ्चको साक्षी आत्मामें कल्पित समझे ।

इन्द्रियाणि समाहृत्य मनसात्मनि योजयेत् ॥ ९ ॥

अथवा इन्द्रिय तथा शब्दादि विषयरूप निखिल प्रपञ्चका मनसे आत्मामें लयचिन्तन करे ।

ध्यानकास्वरूप

योगशास्त्रमें पातञ्जलि भगवान्ने ध्यानकास्वरूप इस प्रकार कहा है—

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (३-२)

स्वाभीष्टध्येयदेशमें वृत्तिकी एकतानता, एकाग्रता, अर्थात् विजातीय वृत्तिके स्पर्शसे रहित सदृश प्रवाहका नाम ध्यान है। ध्यानचिन्तन एकाग्रता एकतानता उपासना, भावना, निदिध्यासन ये सब शब्द एकही अर्थके बोधक हैं। और घेरण्डसंहितामें ध्यानकास्वरूप तीन प्रकारका कहा है—

स्थूलं ज्योतिस्तथासूक्ष्मं ध्यानंत्रिविधंविदुः ।
स्थूलंमूर्तिमयंप्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयंतथा ॥
सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डलीपरदेवता । (-१)

अर्थ—ध्यान तीन प्रकारका कहा है—१ स्थूल २ ज्योति ३ तथा सूक्ष्म, ये ध्यानके तीन भेद हैं। चतुर्भुजादि मूर्तिविषयक ध्यान स्थूल ध्यान है। हृदयादि स्थानमें तेजोमयी दीपकलिकाके समान ज्योति विषयक ध्यानका नाम ज्योतिध्यान कहा है; और सर्वधर्मविनिर्मुक्त अखण्ड मण्डलाकार ब्रह्मचिन्तनका नाम सूक्ष्म ध्यान है ।

त्रिशिखी ब्राह्मणोपनिषत्में ध्यानका स्वरूप इसप्रकार कहा है—

सोहं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनं ध्यानमुच्यते (३१)

'वह चिन्मात्र पर ब्रह्मही मैं हूँ' इस चिन्तनका नाम ध्यान है। और योगचूड़ामण्युपनिषत्में ध्यानका स्वरूप इसप्रकार कहा है—

धारणा द्वादशकेनोक्तं ध्यानं योगविशारदैः (१२)

अर्थात् (१२) बारह प्राणायाम करनेसे एक (१) प्रत्याहार कहा है, और बारह (१२) प्रत्याहारोंकी एक धारणा होती है, और बारह (१२) धारणावोंका १) एक ध्यान कहा है। अर्थात् (१७२८) एक हजार सात सौ अट्ठाईस प्राणायाम करनेसे एक (१) ध्यानकी सिद्धि होती है ।

और शाण्डिल्योपनिषत् में भी ध्यानका स्वरूप कहा है—

अथ ध्यानम् । तद्द्विविधम् । सगुणं निर्गुणञ्चेति ।
सगुणं मूर्तिध्यानम् । निर्गुणमात्मयाथात्म्यम् ॥१ ॥

अर्थ—अब ध्यानका स्वरूप कहते हैं—ध्यान दो प्रकारका है। सगुण और निर्गुण। मूर्ति (नामरूप सहित चेतन) का ध्यान सगुण ध्यान कहा जाता है, और सम्पूर्ण नामरूप माया तत्कार्य्यविनिर्मुक्त, शुद्ध चेतन की चिन्ता निर्गुण ध्यान कहा जाता है ।

और योगतत्त्वोपनिषत् में भी ध्यान, सगुण निर्गुण भेदसे दो प्रकारका कहा है—

सगुणं ध्यानमेतत्स्यादणिमादिगुणप्रदम् ।
निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततो भवेत् ॥१०५॥

अर्थात् पूर्वोक्त बीज सहित पृथिवी आदिक पांच

तत्त्वका और चतुर्मुखादिक देवताओंका, जो ध्यान है, सो यह ध्यान सगुण है, सत्त्वादिक अथवा नाम रूपादिक उपाधिविनिर्मुक्त साक्षी चिदात्माका चिन्तन निर्गुण ध्यान कहा है, इसध्यानसे होनेवाला चित्तवृत्तिका निरोध ही वास्तवमें समाधि है। इसी समाधिका नाम चित्समाधि है, जड़को विषय करनेवाली जड़ समाधि वास्तवमें मुक्तिका हेतु न होनेसे समाधि नहीं है।

त्रिशिखी ब्राह्मणोपनिषत् में 'सोऽहम्' वह चिन्मात्र ब्रह्म ही मैं हूं' इसचिन्ताका नाम ध्यान कहा है—

सोहंचिन्मात्रमेवेतिचिन्तनंध्यानमुच्यते :

और तेजोविन्दूपनिषतमें— ब्रह्मैवाहमस्मि' 'निराधारोऽहमस्मि' इस स्थितिका नाम ध्यान कहा है—

अहं ब्रह्मास्मीति सद्वृत्या निरालम्ब तथा स्थितिः,
ध्यानशब्देनविख्याता परमानन्ददायिका। (३६)

ध्यान यद्यपि सगुणनिर्गुणभेदसे दो प्रकार का है, तथापि निर्गुण ध्यान ही मुमुक्षुको मुख्यतया कर्तव्य है, ध्यानका अन्त-पर्यवसान निर्गुणमें ही होता है, निर्गुण विषयक ध्यान फल है, सगुण ध्यान साधन है, सगुण ध्यानमें भी समष्टि ब्रह्म (विराट्) विषयक ध्यान फल है, चतुर्भुजादि मूर्तिका ध्यान साधन है। चतुर्भुजादि मूर्तियोंका ध्यान भी यदि सकामभावसे किया जाय तो वैकुण्ठादि ऐश्वर्यको ही देता है, यदि निष्कामभावसे किया जाय तो अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा सगुण समष्टि ब्रह्मके ध्यानमें कारण होता है। स्थूल विराट् का ध्यान परिपक होने पर सूक्ष्म हिरण्यगर्भके ध्यानमें मन जाता है, एवं सूक्ष्म हिरण्यगर्भका ध्यान परिपक होनेसे जगद्वीज प्रत्यगभिन्न ब्रह्मविषयकअन्धकाररूप माया विशिष्ट कारण ब्रह्ममें मन जाता है, जब इस ध्यान की मात्रा बढ़नेसे शनैः शनैः मायारूप अन्धकार विरलताको प्राप्त होकर क्षीण हो जाता है। तब माया अन्धकार विनिर्मुक्त ज्योतिर्मय निर्गुण ब्रह्मके ध्यान की प्राप्ति होती है।

ध्यानकी विधि

ब्रह्मोपनिषत्में ध्यानकरनेकी विधि इसप्रकार कही है—

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्
ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निगूढवत् ॥
तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतस्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ ध्यानेन ह्येनं तपसा योऽनुपश्यति।

(यह श्रुति श्वेताश्वतरोपनिषत्में भी है)—१४॥

अर्थ—साभास अन्तःकरण रूप जीवात्माको नीचे की लकड़ीके तुल्य करे और ओंकारको ऊपरकी लकड़ी के तुल्य बनावे, अविच्छिन्न प्रणव चिन्तनरूप ध्यानके निर्मथनाभ्याससे निगूढ़की तरह साक्षीदेव अन्तरात्मा को देखे, अब निगूढवत् इस दृष्टान्तवचनको स्पष्ट करते हैं—जैसे तिलोंमें तेल, दधिमें घृत, नदियोंमें जल, लकड़ियोंमें अग्नि, छिपा हुवा रहता है, तैसेही देहादि निखिल ब्रह्माण्डमें आन्तर आत्मतत्व छिपा हुवा है। अर्थात् जैसे नीचे ऊपर दो लकड़ियोंको रखकर मन्थन द्वारा अग्नि प्रगट की जाती है, वैसेही अन्तःकरणमें प्रणव जप तथा शुद्धात्मतत्वचिन्तनरूप मथन द्वारा प्रत्यगभिन्न ब्रह्मज्ञानरूप अग्नि प्रगट की जाती है। जैसे मथनसे प्रकट हुई अग्नि लकड़ियोंको भस्म करके यज्ञकी सिद्धि करती है, ऐसेही प्रणव जपाभ्याससे ज्ञानाग्नि प्रगट होकर अन्तःकरणादिक निखिल अविद्या जालको भस्म करके शुद्ध आत्मावशेषरूप मुक्तिको देती है।

"श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि" (२)

"श्रद्धा, भक्ति, व ध्यानयोगसे आत्माको जानना चाहिये" इस कैवल्योपनिषद्के वचनसे भी आत्म साक्षात्कारके लिये ध्यानकी विधि सिद्ध होती है। और छन्दोग्योपनिषत्में भी कई जगह ध्यानकी विधि कही है 'सर्वमस्मीत्युपासीत' (२-२१-४) 'मैं सर्वरूप हूँ'

इसप्रकार उपासना करे। इस छान्दोग्योपनिषत्से भी उपासनाकी विधि निश्चित होती है।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीताथखलु क्रतुमयः पुरुषोयथाक्रतुरस्मिन् लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति सक्रतुंकुर्वीत (छा० ३-१४-१)

'सम्पूर्ण ब्रह्म ही है यह निश्चय है, क्योंकि सब विश्व ब्रह्मसे ही पैदा होता है, ब्रह्ममें ही स्थित है, ब्रह्म में ही आखिरलीन होता है। इसलिये ब्रह्मस्वरूप ही है, अतः शान्त होकर 'सर्व ब्रह्म ही है' इसप्रकार उपासना व निश्चय करना चाहिये, यह पुरुष, निश्चयका ही पूतला है, जैसा निश्चय व भावनावाला पुरुष इस लोकमें होता है, वैसा ही यहांसे मरकर होता है, अतः जिज्ञासु पुरुष 'सर्व ब्रह्म ही है' इसीप्रकार पक्का निश्चय करे।

ध्यानकरनेके स्थान

भ्रुकुटीके बीचमें अथवा हृदयमें अथवा सात चक्रोंमें ध्यान करना चाहिये।

और योगचूडामण्यादिकोपनिषदोंमें सात चक्रों का वर्णन किया है—

चतुर्दलंस्यादाधारं, स्वाधिष्ठानं चषड्दलम्।
नाभौ दशदलं पद्मं, हृदये द्वादशारकम्॥
षोडशारं विशुद्धाख्यं भ्रूमध्ये द्विदलंतथा।
सहस्रदलसंख्यातं, ब्रह्मरन्ध्रे महापथि॥

अर्थात् (१) मूलाधार (२) स्वाधिष्ठान (३) मणिपूर (४) अनाहत ५) विशुद्ध ६) आज्ञा (७) महापथ ये सात चक्र हैं। गुदामूलमें मूलाधार चक्र है। नाभिके चार अंगुल नीचे स्वाधिष्ठान चक्र है। नाभिमें मणिपूर है। हृदयमें अनाहत चक्र है। कण्ठमें विशुद्ध चक्र है। भ्रूकुटीमें आज्ञाचक्र है। ब्रह्मरन्ध्रमें महापथ चक्र है। इन सातों चक्रोंमें अधोमुख कमल पुष्प हैं। इनको ध्यानसे ऊर्ध्वमुख कर लेना चाहिये। मूलाधारमें स्थित कमलके चार दल हैं। स्वाधिष्ठानमें ६ दलका कमल है, मणिपूरमें १० दलका कमल है, अनाहत चक्रमें १२ दलका कमल है, विशुद्ध चक्रमें १६ दलका कमल है, आज्ञा चक्रमें २ दलका कमल है, ब्रह्मरन्ध्र महापथ में सहस्र दलका कमल है।

आधारे सिन्धुपत्रे वशपसमथ, लिङ्गे बकारादिलान्तान्।
षट्पत्रे डादिकान्तान् दशदलसहिते नाभिदेशेऽनुचित्ते॥
पद्मे मार्तण्डपर्णे कमुखठचरमान् कण्ठदेशेऽधकूर्चे।
पञ्चैकाष्टद्विपत्रे नयनदलयुते, भावयेऽहंक्षमादीन्॥

मूलाधारमें जो चार दलका कमल है; उसके चार दलोंमें 'व श ष स' इन ४ वीज मन्त्रोंका ध्यान करे, और लिङ्गस्थानमें वर्तमान स्वाधिष्ठान चक्रमें ६ दल वाले कमलके ६ पत्रोंमें 'ब भ म य र ल' इन ६ बीज मन्त्रोंका ध्यान करे, और नाभिमें स्थित मणिपूर चक्रगत दश दल कमलके दलोंमें 'ड ढ ण त थ द ध न प फ' इन १० वीज मन्त्रोंकी चिन्ता करे, और हृदय स्थित अनाहत चक्रगत द्वादशदलके कमलके दलोंमें 'क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ' इन १२ अक्षरोंका ध्यान करे, और कण्ठमें स्थित विशुद्धचक्रगत १६ दलवाले कमलके पत्रोंमें 'अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः' इन १६ स्वरोंका चिन्तन करे, और भ्रुकुटीके मध्यमें स्थित आज्ञाचक्रमें विद्यमान दो दलवाले कमलके पत्रोंमें 'हं क्षं' इन दो मन्त्रोंका ध्यानकरे, और ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित महापथ चक्रगत सहस्रदलवाले कमलके प्रत्येक पत्रोंमें ॐ इसमन्त्रका ध्यानकरे। अथवा मूलाधारादिक सब चक्रोंमें स्थित सम्पूर्ण कमलों के पत्रोंमें प्रणवका ही ध्यान करे, अतएव ध्यानबिन्दूपनिषद्में भी कहा है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ध्येयं सर्वमुमुक्षुभिः।

अथवा मूलाधारगत चतुर्दल कमलमें गणेशजीका ध्यान करे, षट्दल कमलमें ब्रह्माजीका, और दश दल कमलमें विष्णुका, अनाहत-चक्रमें स्थित कमलमें शंकरका, तथा षोडशदल कमलमें साधक अपने जीवके

स्वरूपका और आज्ञाचक्रगत द्विदलकमलमें अपने गुरुका और सहस्रदल कमलमें ज्योतिस्वरूप निर्गुण सदाशिवका ध्यान करे। अथवा अभ्यास अधिक हो-जाने पर मुमुक्षुका चाहिये कि मूलाधारादिक सब चक्रोंमें सर्वान्तरात्मा चैतन्य ज्योतिस्वरूप शिवका ही ध्यान करे, देहादि निखिल अनात्म प्रपंचको ब्रह्मस्वरूप अपने आत्मामें ही कल्पित देखे, अन्य चिन्ता न करे। अतएव अन्नपूर्णोपनिषत्‌में भी कहा है—

> नित्योदितं विमलमाद्यमनन्तरूपं
> ब्रह्मास्मिने तरकलाकलनं हि किञ्चित्।
> इत्येवभावय निरञ्जनतामुपेतो
> निर्वाणमेहि सकलामलशान्तवृत्तिः॥ (१९)

ऋभु ऋषि अपने शिष्य निदाघको कहते हैं—हे निदाघ! नित्य उदित, स्वयंप्रकाश, अविद्यादिमल-रहित, सब कल्पनाका मूल, अविनाशी, परिच्छेद शून्य 'ब्रह्माहमस्मि' मुझसे इतर कुछ भी नहीं है इसी भावनाको करो। इस भावना (ध्यान) के प्रतापसे तू सब मलोंसे रहित निर्मल शान्तचित्त हो जायगा निरंजनताको प्राप्त होकर कैवल्यमोक्षको प्राप्त होगा। और "विविक्तदेशे च सुखासनस्थः शुचि समग्रीव-शिरः शरीरः" इत्यादि कैवल्योपनिषत्‌में भी ध्यानकी विधि कही है—अर्थात् नदीतीरादि एकान्त पवित्र देशमें साधक पवित्र होकर आसन लगाकर बैठे, ग्रीवा शिर व शरीर सीधा होना चाहिये। सर्वइन्द्रियोंके व्यापारोंको रोक कर भक्तिपूर्वक अपने गुरुको प्रणाम करके अपने हृदयकमलमें ब्रह्मादि सम्पूर्ण जगत्‌के कारण, विभु, चिदानन्द, नामरूपरहित, शुद्ध, ब्रह्म स्वरूप, निर्गुण शिवका ध्यान करे; अथवा सर्वान्त-र्यामी उमा (प्रकृति) है जगत् रचनामें सहायक जिन-की, ऐसे सर्वात्मक सगुण परमेश्वरका चिन्तन करे, अथवा त्रिलोचन नीलकण्ठ शिवमूर्तिका ध्यान करे। इसप्रकार ध्यान करता हुआ जो मुनि है, सो भावना के अनुसार निर्गुण या सगुण शिवस्वरूपको प्राप्त होता है। इसीप्रकार श्रीजाबालदर्शनादिक उपनिषदोंमें और गीतादिक शास्त्रोंमें भी ध्यानकी विधिविस्तारसे कही है।

निर्गुणध्यानही कर्तव्य है

जिज्ञासुको निर्गुण ब्रह्मका ही ध्यान करना चाहिये। जहां तक बने सगुण ध्यान न करे, क्योंकि सगुण ध्यानमें ध्येयकोटिमें मायामय नामरूपादिक मिथ्या अंश अवश्य रहता है।

मिथ्या विषयक ध्यान के फलांशमें भी मिथ्यापना अवश्य रहता है। अतएव योगवासिष्ठमें कहा है—

> शृणु ब्रह्मविदांश्रेष्ठ ! देवार्चनमनुत्तमम्।
> न देवः पुण्डरीकाक्षो न देवस्त्रिलोचनः॥
> न देवो देवरूपो हि न देवश्चित्तरूपकः।
> अकृत्रिममनाद्यन्तं देवनं देव उच्यते॥
> आकारादिपरिछिन्ने मिते वस्तुनि तत्कृतः।
> अकृत्रिममनाद्यन्तं देवनं चिच्छिवं विदुः॥
> अज्ञातशिवतत्त्वानामाकाराद्यर्चनं कृतम्।
> योजनाऽध्वन्यशक्तस्य क्रोशाध्वा परिकल्प्यते॥
> बोधसाम्यं शम इति पुष्पाण्यग्र्याणि तत्र च।
> शिवं चिन्मात्रममलं पूज्यं पूजाविदो विदुः॥

योगवासिष्ठमें वसिष्ठजी! रामचन्द्र महाराजसे कहते हैं।

हे ब्रह्मवेत्तावोंमें श्रेष्ठ रामजी देवताओंका पूजन व ध्यान अनेक प्रकार का है, मैं सर्वोत्तम देवपूजन व ध्यानको कहता हूं।

पुण्डरीकाक्ष चतुर्भुज विष्णुदेव पूज्य व ध्येय नहीं है। और त्रिनेत्र डमरू त्रिशूलधारी शिव भी देव नहीं है, और अन्य चतुर्मुखादिक देव भी वस्तुतः देव नहीं है, क्योंकि—ये सब देवता संकल्पमात्र हैं, मनो-मात्र हैं, संकल्परूप व चित्तरूप देव नहीं हो सकता है। अकृत्रिम आदि अन्त शून्य, प्रकाशरूप, चैतन्य-ज्योतिको वेदोंमें देव कहा है, आकृति वाला, परिच्छिन्न,

मर्यादित, वस्तुमें देवपना कैसे हो सकता है ? जो किसी से पैदा न हुवा हो, ऐसा आदि अन्त शून्य, चेतन शिवको देवरूपसे विद्वान् लोग जानते हैं। शिवतत्वको न जानने वाले अज्ञानियोंके लिये शास्त्रोंमें आकार मूर्ति व लिङ्गादिका अर्चन वतलाया है, जैसे किसीका घर-योजन (चार कोश) दूर है, घर जाना उसको जरूरी है, एक साथ चार कोश चलनेकी सामर्थ्य उसको है नहीं, उस असमर्थ पुरुषको कोश भर चलनेको कहा जाता है, तैसेही निर्गुण उपासना-ध्यानमें असमर्थ पुरुषको शास्त्रमें आकारादि परिच्छिन्न सगुण उपासना की विधि कही है। वस्तुतः अद्वितीय आत्मतत्त्वबोध, समभाव, चित्तनिरोध रूपी उत्तम पुष्पोंसे शिवका पूजन करना चाहिये 'शुद्ध चिन्मात्र ही पूज्य व ध्येय है' इस प्रकार पूजा तत्त्वको जाननेवाले विद्वान् जानते हैं। अतएव कहा है—

सोऽहं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनं ध्यानमुच्यते।
(त्रिशि० ब्राह्मणोपनिषत्) ३१ श्लोक।

अतएव मैत्रेय्युनिषद्में भी कहा है—

पाषाणलोहमणिमृण्मयविग्रहेषु।
पूजा पुनर्जननभोगकरी मुमुक्षोः॥
तस्माद्यतिः स्वहृदयार्चनमेव कुर्यात्।
बाह्यार्चनं परिहरेदपुनर्भवाय॥ (२-२६)

अर्थ—पाषाण, लोह, रजत, सुवर्ण, मृत्तिकादि रचित मूर्ति आदिक विग्रहकी पूजा व धारणा ध्यानादिक मुमुक्षुको पुनर्जन्म व भोगको देनेवाली होती है। इसलिये मुक्तिके लिये प्रयत्नशील पुरुष को चाहिये कि-वह लक्ष्य गत सर्व अन्तरात्माकाही अर्चन ध्यानादि करे, बाह्यार्चन ध्यानादिकका सर्वथा परित्याग कर देवे। इस श्रुतिमें पूजा व बाह्यार्चन पदध्यानादिका भी उपलक्षण है।

इसीप्रकार निर्गुण ध्याननिष्ठ उपासकको बाह्य वर्णाश्रमादिक कर्मोंका भी परित्याग, मैत्रेय्युपनिषद्में कहा है—

वर्णाश्रमाचाररता विमूढाः।
कर्मानुसारेण फलं लभन्ते॥
वर्णाश्रमं हि परित्यजन्तः।
स्वानन्दतृप्ताः पुरुषा भवन्ति॥ (१-१३)

अर्थ—वर्ण व आश्रमके धर्मोंमें रत, यानी तत्पर और आत्मतत्वको न जाननेवाले मर्काधिकारी पुरुष अपने अपने कर्मोंके अनुसार स्वर्गादि फलोंको प्राप्त होते हैं; वर्णाश्रमके धर्मोंका परित्याग करते हुये अर्थात् सर्वधर्म विनिर्मुक्त निर्गुण आत्मतत्वमें जो पुरुष निमग्न होते हैं, वे महानुभाव पुरुष निरतिशय स्वरूप आन्दको पाकर तृप्त होते हैं; अर्थात् स्वर्गादिकी कामना वाले सकाम वर्णाश्रमाभिमानी पुरुषोंके लिये ही वर्णाश्रमके धर्मानुष्ठानकी विधि शास्त्रमें कही है। मुमुक्षूको तो आत्मदर्शनके अन्तरंग साधन श्रवणादिकोंमें ही जुट जाना चाहिये।

निर्गुण चिन्ता

ब्रह्मादिकीटपर्यन्ताः प्राणिनो मयि कल्पिताः।
बुद्बुदादिविकारान्तस्तरङ्गः सागरे यथा॥१४॥
न मे बन्धो न मे मुक्तिर्न मे शास्त्रं न मे गुरुः।
मायामात्रविकाशत्वान्मायातीतोऽहमद्वयः॥१९॥
कालत्रये यथा सर्पो रज्जौ नास्ति तथा मयि।
अहंकारादिदेहान्तं जगन्नास्त्यहमद्वयः॥२९॥
'आत्मैवेदमग्रआसीत्' 'सर्वं खल्विदंब्रह्म'
'सदेवसौम्येदमग्रआसीत' 'साक्षीचेता केवलोनिर्गुणश्च' 'वासुदेवः सर्वमिति'।

जैसे बुद्बुदादि, फेन, विकार पर्यन्त तरङ्ग, सागर में कल्पित हैं, तैसेही ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणी मेरे आत्मस्वरूपमें कल्पित हैं, न मुझमें बन्ध है। न मुक्ति है, न शास्त्र है, न गुरू है, यह सब देहादिक बन्ध केवल मायाका विकाश मात्र है, वस्तुतः मैं माया से रहित हूं, अद्वय हूँ। जैसे रज्जु में सर्प तीनों काल में नहीं है, तैसेही अहंकारादि देहपर्यन्त जगत् मेरेमें

नहीं है, मेरा आत्मा द्वैतरहित है। यह सर्व जगत् उत्पत्ति से पहिले केवल आत्मा ही था। 'निश्चयसे सब ब्रह्मही है'।

हे सौम्य, यह जगत सृष्टिसे प्रथम सत्-भेद शून्य ब्रह्मही था। 'साची चेतन केवल निर्गुण है" 'सब वासुदेवही है" इस प्रकार मुमुक्षुको केवल निर्गुण चिन्ताही करनी चाहिये।

निर्गुण चिन्ताकी महिमा

भागवतमें निर्गुणध्यानकी महिमा कही है—

सकृद्यदङ्गप्रतिमान्तराहिता, मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम्।
स एव नित्यात्मसुखानुभूतिभिर्व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः॥

हे प्यारे! जिस परमात्माकी मनोमयी चतुर्भुजादि प्रतिमा एक बार भी जब हृदयमें आ जाती है तो वह प्रतिमा उस भक्तको वैकुण्ठादिक लोकमें पहुँचा देती है, यदि नित्यानन्दस्वरूप, ब्रह्माकारवृतियोंके द्वारा भंग हो गया है—माया मय आवरण जिसका—ऐसा साचात् निर्गुण निराधार ब्रह्मही जिस भक्तके हृदयमें स्फुरण हो जाय तो फिर उसके कल्याणमें सन्देह ही क्या है?

ध्यानका फल और महिमा

ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं,
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्॥
स ब्रह्मा सः शिवः सोऽक्षरः परमः स्वराट्,
स एव विष्णुः सः प्राणः सः कालोऽग्निः स चन्द्रमा॥

भूतोंकी योनि, तमसे परे, सर्वका साची शिवका ध्यान करके मुनि, सर्वकारण सर्वसाचीको प्राप्त होता है। वही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही अचर है, वही परब्रह्म सम्राट् है, वही विष्णु है, वही प्राण है, वही काल है, वही अग्नि है, सो ही चन्द्रमादिक है। इत्यादि ध्यानकी महिमा व फल तथा विधि कैवल्योपनिषद्में कही है। श्वेताश्वतरोपनिषद्में भी ध्यानकी महिमा कही है—

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा निरुध्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि॥

अर्थ—कमरग्रीवा तथा शिरको सीधा करके अर्थात् आसनमें बैठकर शरीरको सीधा करके इन्द्रियोंको मन से रोककर ब्रह्मोडुप-प्रणवका जप अद्वितीय ब्रह्मरूप अर्थका चिन्तनरूप ध्यान करता हुआ विद्वान् सम्पूर्ण भयकारक अविद्याके स्रोतों (प्रवाह) को अच्छी तरह तरे, यानि तर जाता है।

और माण्डूक्योपनिषत्में भी ध्यानकी महिमा कही है—

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध सत्वस्ततः
तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः। (३।१।८)

अर्थात् ब्रह्मस्वरूप आत्मा, रूपादिक गुणोंसे रहित होनेके कारण, न नेत्रोंसे जाना जाता है, न वाणीसे, न अन्य इन्द्रियोंसे, न सूर्यादिक देवताओंसे, प्रकाशित होता है, न किसी तपसे व कर्मसे गृहीत होता है किन्तु ज्ञानके प्रसाद* से अत्यन्त शुद्धान्तःकरण जब पुरुष होता है, तब आत्मतत्वका ध्यान करता हुआ साधक प्राणादि सम्पूर्ण कला (उपाधि) रहित आत्माको प्रत्यक्ष करता है।

और नारदजीने भी भागवतमें ध्यानकी महिमा कही है—

*इष्ट-अनिष्ट शब्दादि विषयज्ञानमें रागद्वेषादि राहित्यपना जो है वही ज्ञानका प्रसाद है, रागद्वेषादि साहित्यही अन्तःकरणकी शुद्धि है, इस शुद्धिसे ही अन्तःकरणमें ध्यान करनेकी शक्ति पैदा होती है। अथवा अद्वैत विषयक श्रवण, मनन जन्य ज्ञान यहां ज्ञान शब्दसे विवक्षित है, और अद्वैत विषयक संशय राहित्य, प्रसाद शब्दसे विवक्षित है, अर्थात् शास्त्रके द्वारा अद्वैत विषयक श्रवण मनन पूर्ण हो जाने पर जब संशयरहित साधकका अन्तःकरण होता है, तब निदिध्यासन रूप ध्यान परिपक्व हो सकता है, ध्यानके परिपाकसे ही प्रत्यगभिन्न ब्रह्म तत्त्वका साक्षात्कार होता है।

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्वृत्तचेतसा ।

औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीतमेशनैः हरिः । (६-१७)

नारदजी वेदव्यासजीसे कहते हैं—भक्तिभावसे निवृत्त चित्त होकर जब मैं भगवान्‌के चरणकमलका ध्यान करता था, तब मेरी उत्कण्ठाके कारण आंखोंमें आंसू बहने लगे, और हृदयमें शनैः शनैः हरिका अवतार होगया ।

और छान्दोग्योपनिषत्‌में भी ध्यानकी महिमा कही है, छान्दोग्यके सातवें अध्यायमें नारदजी सनत्कुमारजी से प्रश्न करते हैं—हे भगवन् नामादिककी अपेक्षासे आपने चित्तको बड़ा बतलाया सो मुझे मालूम हुवा, अब कृपा करके यह बतलाइये कि—चित्तकी अपेक्षा से बड़ी वस्तु क्या है ? सनत्कुमार बोले—

'ध्यानं वाव चित्ताद्भूयः' (७-६) हे नारद चित्त की अपेक्षा से ध्यान बड़ी वस्तु है इसी कारणसे हे नारद ! देखो यह पृथ्वी निश्चल होकर ध्यान जैसा कररही है, और अन्तरिक्ष व बड़ी बड़ी नदी व तड़ागादिक भी ध्यान जैसा कर रहे हैं, और हिमालयादिक पर्वत भी ध्यान जैसा ही कर रहे हैं, और देव* मनुष्य भी ध्यान जैसा ही करते हैं ध्यान ही महत्तामें कारण है । इसलिये इस संसारमें जो-जो मनुष्योंके बीचमें महत्ताको प्राप्त होते हैं, वे सब ध्यानके अशांशवाले अवश्य होते हैं । और जो-जो प्राणी छोटे होते हैं, वे सब कलह प्रिय, चुगुलखोर, निन्दक होते हैं । ध्यानका लेश भी उनमें नहीं दीखता है । और जो-जो प्रभु होते हैं यानि बड़े-बड़े ऐश्वर्यवान् ज्ञानादि शक्तिसम्पन्न होते हैं सो सब कुछ न कुछ ध्यानकी मात्रावाले अवश्य होते हैं । अतः ध्यानकी उपासना करो ।

ध्यानकी महिमा ध्यानबिन्दूपनिषतमें विस्तारसे लिखी है—

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम् ।

भिद्यते ध्यानयोगेन नान्योभेदःकथंचन ॥ १ ॥

अर्थ—यदि अनेक योजन विस्तीर्ण महान् पहाड़के समान भी पापका ढेर क्यों न हो तो भी ध्यानयोगके प्रतापसे विदीर्ण हो जाता है, ध्यानयोगके सिवाय पापोंके नाशका अन्य उपाय कोई नहीं है ।

अतः जैसे पनिहारी अपनी सखि सहेलियोंके साथ चलती जाती है, गप्पसप्प करती जाती है, परन्तु ध्यान रहता है शिरमें स्थित पानीके घड़ेमें और जैसे शिरमें अनेक घड़े रखकर नाचनेवाली नटनी, कान बाजेवालों की तरफ रखती है शरीरसे नाच करती है परन्तु ध्यान रहता है उसका शिरके घड़ोंमें और जैसे नव प्रसूता गाय जंगलमें चरती है, परन्तु ध्यान उसका रहता है बछड़ेके खूटेमें, और जैसे वेठिया बेगारी बोझा ढोनादिक बेगारके कार्योंको करता है, परन्तु ध्यान रहता है उसका घरके कामोंमें, और व्यभिचारी स्त्री काम धन्धा घरका करती है, परन्तु ध्यान रहता है उसका यारमें, अतएव यह कहावत प्रसिद्ध है—'हाथ कारमें मन यारमें' इसी प्रकार अपने कल्याणकी चाह करनेवालेको चाहिये कि—प्रकृति प्रवाह प्राप्त पुंखानुपुंख संसारी कर्मोंको देह इन्द्रियादिकोंसे करता हुवा भी ध्यान आन्तर आत्मतत्त्वमें रखे । इति शिवम् ।

*—मनुष्य दो प्रकार के होते हैं असुर मनुष्य और देव मनुष्य, दम्भ दर्पादि आसुरी सम्पत् वाले मनुष्य असुर मनुष्य हैं; अभय, सत्त्व (अन्तःकरण) संशुद्धि आदिक दैवी सम्पत्ति वाले मनुष्य देवमनुष्य कहे जाते हैं ।

सौन्दर्य-समीक्षा

आज हम दूषित-शिक्षाके प्रभावसे सौन्दर्यकी-उन्नतिके लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, उनसे जो पतन हो रहा है, और उससे भी अधिक जो पतन होनेवाला है, उसको तो कोई सहृदयहृदय ही अनुभव कर सकता है। आबाल वृद्ध सब ही इस झूठे—सौन्दर्यके पुजारी हो रहे हैं, इसी कारण आज देश धर्म-मन्दिर न बनकर सौन्दर्य भवन बन रहा है।

आप किसी भी प्रसिद्ध नगरसे लेकर छोटेसे छोटे कस्बेमें भ्रमण कीजिये, आप देखेंगे कि—दूषित शिक्षाका आतङ्क किस प्रकार व्याप्त है, सौन्दर्य देवकी उपासना किस ढंगसे हो रही है। इसकी प्रारम्भिक उपासनामें ही शिखा एवं यज्ञोपवीतका परित्याग किया जाता है। ऐसा कौन दुर्भागी-नगर होगा कि—जहां 'नाट्यमन्दिर' "ड्रामाघर" "फिल्म कम्पनी" न होगी। भगवान्‌के मन्दिरमें भले ही आप जनताकी कमी देखते हों, परन्तु इन सौन्दर्य-मन्दिरोंमें टिकट होने पर भी आपको अपार भीड़ ही मिलेगी, और बाहर भटकते हुए जैण्टलमैन नवयुवकोंके निराशा भरे उदास मुख आपको देखने मिलेंगे—जिसको स्थानाभावसे अभीष्ट-दृश्यसे दूर होना पड़ा है।

विजातियोंमें जो सद्‌गुण हैं उनके अनुकरण करनेमें तो वे भले ही पृष्ठगामी हों, परन्तु उनके दुर्गुणोंका जो प्रभाव आज पड़ रहा है, यह प्रत्यक्ष है। जिन युवतियोंको देखने तकके लिए दूषित-लोग विवश थे, आज सौन्दर्य-शिक्षाने उनके चटक-मटकदार अर्ध-नग्न—वस्त्र धारणके द्वारा दूषित—वृत्तियोंका साम्राज्य स्थापन कर दिया। इसप्रकार पुरुषोंकी भी दशा निराली हो रही है। शरीरकी सजावटके लिए गन्दे-फैशनका किस-ढंगसे आश्रय लिया जा रहा है, केशों और मूछोंने सौन्दर्य-उन्नतिमें जो सहायता दी है, वह तो अनिर्वचनीय ही है। किसीने 'कर्जन'-फैशनके लिये मूछोंको बीचमें मक्खियों की भांति रखा था, तो दूसरोंने अन्य फैशनके लिये सफाचट ही कराया, और किसीने बालोंको अन्य ढंगसे कटाया, फैशनकी लीला कहां तक बतलायें, एक मज-दूर है, घरबारका भी जिसे ठिकाना नहीं है, मुश्किलसे जो अपना पेट पाल रहा है, वह भी इस फैशनके पीछे पागल बन रहा है। कहनेका तात्पर्य यह है कि—प्रथम वीर भारतके बालक ब्रह्मचर्यकी शुद्ध शिक्षा पाकर 'सिंहो माणवक सिंह कहलाते थे। आज शृङ्गारी भारतके बालक व्यभिचारमयी दूषित कुशिक्षा पाकर गीदड़से भी गये बीते हो रहे हैं। यह दुर्दशा स्कूल कालेज एवं विद्या-लयोंके विद्यार्थियोंके देखनेसे स्पष्ट प्रतीत हो सकती है।

वास्तवमें सौन्दर्य क्या है? यह विषय गम्भीर एवं विचारणीय है। संक्षेपसे कहा जा सकता है कि-हृदयके पवित्र भावोंका नामही असली सौन्दर्य है। इसी सौन्दर्यसे ही जीवन रमणीय एवं सुन्दर बनता है। पवित्र-भावोंका सौन्दर्यही समाज तथा देशकी उन्नति का मूल-कारण है। प्रतापी-प्रताप, तथा भारतीय-समाज के हृदय सम्राट् शिवाजी भी इन शुद्ध भावोंके ही पौदे थे। मधुर सत्य तथा हितकर वचनरूपी सौन्दर्यही समाज-शक्तिको सुसंगठित तथा एकताके सूत्रमें बांध सकता है। सदाचाररूपी-सौन्दर्यही स्वास्थ्य, बल, तेज, प्रताप आदिसे सम्पन्न कर मनुष्यको सुशोभित बनाता है। इस प्रकारके सौन्दर्यसेही रोग, दुःख, दारिद्र आदि दुर्गुणोंका शमन हो जाता है। विवेक विचारशील-सदाचारी पुरुषही देश तथा जातिकी उन्नति करने वाले होते हैं।

सौन्दर्य प्राकृतिक-वस्तु है। प्रकृतिकी मर्यादा समझकर उसकी उपासनासेही हम वह प्राप्त कर सकते हैं। केवल चर्मके सौन्दर्यसे मनुष्य चर्मकार बन जाता है, देव एवं मनुष्य नहीं बन सकता। शरीरका भी सौन्दर्य पवित्र भावोंसे तथा सदाचारमय सादा

जीवनसे ही प्राप्त होता है। दूषित-भावोंवाला ऊपर की टाप-टीप मात्रसे अपने सौन्दर्यकी रक्षा नहीं कर सकता। यह स्मरण रखना चाहिये कि–शरीरकी नकली सजावट असली सौन्दर्यमें सम्मिलित नहीं है।

जैसे गुलाबके फूलमें बेल-बूटा नहीं निकाला जा सकता तद्वत् प्राकृतिक-सौन्दर्यमें सजावटकी आवश्यकता नहीं रहती—

श्रीपरिचयाज्जडा अपि भवन्त्यभिज्ञाविदग्धचरितानाम्।

श्री यानी सौन्दर्यके यथार्थ परिचयसे जड़-प्रकृति के उपासक लोगभी विद्वानोंके सुन्दर चरित्रोंको जानने-वाले अभिज्ञ हो जाते हैं।

इसी सौन्दर्यके प्रतापसे वृद्ध भी युवा एवं सबल प्रतीत होता है। इससे हीन युवाभी वृद्ध-सा निःसार एवं निर्बल प्रतीत होता है।

सुवर्णकी जञ्जीर बांधे श्वान भी फिर श्वान हैं।
धूलि-धूसर भी करी पाता सदा सम्मान है॥

सौन्दर्यका मूल स्वास्थ्य है, कान्ति है। उनकी प्राप्ति सदाचारसे है धर्माचरणसे सदाचार पृथक् नहीं हो सकता।

यदि हम सौन्दर्यकी वाञ्छा हृदयमें रखते हैं तो हमारा कर्तव्य सबसे बड़ा यह है कि—आजसे ही जिन भावोंको एवं आचरणोंको हम दूषित समझ चुके हैं, उनका एक दम परित्याग करदें। मनकी शुद्धिके लिए महान् प्रयत्न करें। जिसके विचार शुद्ध हैं, वही अपने जीवनके लक्ष्यको प्राप्त कर सकता है।

अनन्यता

(लेखक—श्री 'सुदर्शन')

"धनुर्बाण या वेणु लो, श्यामरूपके संग।
मुझपर चढ़नेसे रहा, राम! दूसरा रंग॥"

प्रेममें दोका स्थान नहीं। हृदयमें दोके रहने की जगह नहीं। वहां तो एक ही रह सकता है, सच्चा प्रेम एकसे ही होता है। पर लोग प्रेम की अनन्यताका अर्थ करनेमें भूल करते हैं। वे समझ लेते हैं कि–जो एक का प्रेमी होगया, वह स्वतः ही शेष सबका द्वेषी होगया। उसके सम्मुख दूसरेका नाम तो क्या चर्चा भी नहीं होनी चाहिये। पर इस अर्थके मूलमें ही भ्रान्ति है। जो दूसरों की निन्दा करते हैं, वास्तवमें वे एकके भी सच्चे प्रेमी नहीं।

सच्चे प्रेमीके लिये विश्वमें दूसरा तो रह ही नहीं जाता। उसे तो सारे रूपोंमें अपने प्रियका रूप, समस्त नामोंमें हृदयेशका नाम और सम्पूर्ण कार्योंमें उसी चित-चोर की लीला दृष्टि पड़ती है। फिर वह भला अपने ही प्रेमास्पदसे कैसे द्वेष करेगा, उसी की कैसे निन्दा करेगा!

भक्त यदि प्रभुके एक रूपकी उपासना करता है तो करे, पर उसे समझना चाहिये कि–शेष भी सभी मेरे प्रभुके ही नाम और रूप हैं। यदि वह उन नाम रूपोंको अपने आराध्यका न समझ कर उनकी निन्दा करता है, या उनमें छोटे बड़ेकी कल्पना करता है, तो इसका अर्थ होगा कि–वह अपने आराध्य की व्यापकता अस्वीकार करता है, उन्हें सीमित बनाता है। प्रभु किसी के बनानेसे तो सीमित होते नहीं, पर अपने अज्ञान वश दूसरे रूपोंमें वह अपने आराध्य की ही निन्दा करता है। उनका ही अपमान करता है। एक पुरुष पुत्रका पिता, स्त्रीका पति, कोर्टका जज और नौकरका स्वामी सभी कुछ है। यह ठीक है कि–स्त्रीको वह पति रूपमें ही प्रिय है, पर क्या वह अन्य जज आदि रूपोंमें उसी

पतिमें छोटे बड़े की कल्पना कर सकती हैं ? उन रूपोंसे द्वेष या उनका अपमान कर सकती हैं ?

प्रभुके अनन्तरूप हैं, अनन्त नाम हैं। वे सभी हमारे लिये पूज्य हैं, आदरणीय हैं, समान ही प्रभाव एवं शक्तिसम्पन्न हैं। पर हमारे पास तो एक ही मन, एक ही हृदय है। अतः हम किसी एक की आराधना कर सकते हैं। जो हम सबसे अधिक प्रिय लगे उसी की आराधना करे। उसीकी उपासनामें लगजावें। उस पर अटल श्रद्धा और विश्वास होना ही अनन्यता है। पर दूसरे नाम और रूपों की उपेक्षा नहीं, उनसे द्वेष नहीं, उनमें छोटे बड़े की कल्पना भी नहीं करनी चाहिये। वे सब बराबर हैं। इसका यह अर्थ कभी न होगा कि— फिर सबकी उपासना करनी चाहिये। उपासना तो एक की ही होगी। एक की उपासनासे ही सबकी उपासना होगई। क्योंकि वे अलग-अलग तो हैं ही नहीं। एक प्रभुके ही तो वे सब रूप और नाम हैं।

यदि कोई दूसरा, प्रभु की उपासना किसी दूसरे नाम और रूपसे करता है, तो हम तो उससे प्रेम और प्रसन्नता होनी चाहिये। हमारे आराध्यकी आराधना वह इस रूप और नामसे करता है। रूप और नाम चाहे जो भी क्यों न हो आराधना तो वह भी हमारे आराध्य की करता है। प्रभु कहीं दो थोड़े ही होते हैं, वे तो सदा एक ही हैं। नाम और रूप तो उनके अनन्त हैं, असंख्य हैं, उनका कोई पार ही नहीं।

दूसरोंके उपास्य रूपका और नामका यदि अवसर पड़े तो हमें आदर करना चाहिये। अपने उपास्य रूप की भावना करते हुये उसकी पूजा करनी चाहिये। समझना चाहिये कि—मेरे ही हृदयेश आज यहां इस रूपमें बैठे हैं। हां, एक बात है। वे पूज्य हैं, आराध्य हैं, जिस किसी भी रूपमें हमारे सम्मुख आवेंगे हम उनकी पूजा करेंगे, उनका आदर करेंगे। लेकिन हृदय—वह तो एकका ही है। उसमें तो एक ही रूपको स्थान है। हृदय सिंहासन तो उन्हें तभी मिलगा जब वे हमारे हृदयेश के रूपमें आवेंगे। वहां किसी भी दूसरे रूप या नामके लिये स्थान नहीं। इसीका नाम है अनन्यता।

महावीरजी रघुनाथजीके अनन्य सेवक ठहरे। द्वापर आचुका था। कृष्णवतार हो चुका था। नन्द-नन्दन अब द्वारिकाधीश और रुक्मिणीरमण हो चुके थे। यादवोंकी सुधर्मा सभा अब उनके श्रीचरणोंसे शोभित होती थी। चाहे जो भी हो, प्रभु भला कभी अपने अनन्य सेवकको भूल सकते हैं। हनुमानजीकी स्मृति सदा बनी रहती। प्रभुके दर्शनार्थ देवर्षि नारद प्रायः द्वारिकामें ही वीणा लिये इस गलीसे उस गलीमें प्रेमोन्मत्त हुये आजकल "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव" की मधुर मंजुलध्वनि लगाया करते थे। उनकी विश्वकी सदाकी यात्रा इधर रुकी हुई-सी थी। एक दिन प्रभुने उन्हें हनुमानजीको ले आनेका आदेश दिया।

देवर्षि तो सदाके रमते राम ठहरे। उन्हें यात्राके लिये तत्पर थोड़े ही होना पड़ता है, वे तो सदा यात्रा में ही रहते हैं। वे हैं ही "पथिक"। अस्तु वीणा हाथमें पैरोंमें खड़ाऊँ, वस्त्रके नामपर कौपीन। एक हाथसे वीणाके तारोंको झंकृत करते, उच्चस्वरसे वही "कृष्ण गोविन्द" का आलाप लेते चल पड़े, और जा धमके गन्धमादन पर आञ्जनेयके सम्मुख। आंजनेयने उठकर देवर्षिके चरणोंमें प्रणाम किया। इन्हे तो प्रभुसे अलग होना ही अच्छा न लगता था, जल्दी से जल्दी लौटना चाहते थे, प्रथम ही कहने लगे "आप तो यहां न जाने बैठे बैठे क्या पेड़ गिन रहे हैं, आपको प्रभु स्मरण कर रहे हैं। इतने दिन प्रभुको धराधाम पर पधारे हुये और एक बार भी दर्शन न कर आये। भाई! यह तो हम जैसोंके लिये है, भला

जिसे प्रभु स्वयं ही स्मरण करें, वह क्यों दौड़ा दौड़ा फिरे !" हंसकर पवनकुमारने पूछा "देवर्षि ! आप कह क्या रहे हैं ! प्रभुधराधाम पर पधारे हैं और मुझे पता नहीं ! आपका प्रभु कहनेसे किससे तात्पर्य है ? वे इस समय हैं कहां ?" देवर्षि समझ गये कि-यदि कहूं कि—मेरा प्रभुसे अभिप्राय गोविन्दसे है, तो ये सम्भव है न चलें, अतः बोले "मेरा प्रभुसे और किससे अभिप्राय होगा ! अरे आपके क्या रघुनाथजीको छोड़कर और भी दोचार प्रभु हैं ? शीघ्र चलिये द्वारिका, मुझे विलम्ब होरहा है।" प्रभु बुला रहे हैं, यह सुनते ही गद्‌गद् होकर महावीर जी ने देवर्षि की चरणरज मस्तक पर लगाया। वे बड़ेवेगसे द्वारिका को चल पड़े।

केशव अन्तःपुरमें रुक्मिणीजीके भवनमें थे। पर देवर्षितो अबाधगति हैं, उन्हें कहीं रोक टोंक थोड़े ही हैं। वे हनुमानजीको साथ लिये सीधे अन्तःपुरमें पहुँचे। हनुमानजीने देखा "है तो प्रभु ही, पर अपने आराध्य रूपमें नहीं। वे यहां चतुर्भुज होकर माता लक्ष्मीके साथ विराजमान हैं। पर देवर्षिने तो अपने प्रभुका नाम लिया था !" प्रथम सा उत्साह न रह गया, एकबार देवर्षिके मुखकी ओर देख कर उन्होंने आदर पूर्वक पृथ्वीमें लेट कर प्रभुको प्रणाम किया। केशव मुस्करा रहे थे। थोड़ी देर करबद्ध सम्मुख खड़े रहनेके पश्चात् आंजनेयने जाने की आज्ञा चाही। नारद जी प्रभु की ओर देखकर सोच रहे थे कि—देखें प्रभु मेरी बात रखते हैं या नहीं ?

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्"

प्रभु तो भक्तोंके वश ठहरे। भक्त जिन रूपमें चाहेगा वे उसे उसी रूपमें दर्शन देंगे। प्रभुने कहा "हनुमान्‌जी ! इधर देखिये।" हनुमानजीने अबतक मस्तक झुका रक्खा था, दृष्टि उठाते ही केशव उन्हें धनुषधर कौशल कुमारके रूपमें और रुक्मिणीजी माता सीता के रूपमें दृष्टि पड़ी। ये प्रेम विभोर होकर चरणोंमें लोटने लगे।

भक्तों की रक्षा और कथामें उपस्थिति की आज्ञा अयोध्यामें ही प्रभुने श्री महावीरजीको दे रखी थी। अतः द्वारिकासे महावीर जी बहुधा इन कार्योंके लिये बाहर जाते। प्रभुने उन्हें गन्धमादन पर ही रहने की आज्ञा दे दी थी, अतः वे रहते तो गन्धमादन पर ही थे, फिर भी द्वारिकामें अब उनका अधिकांश समय बीतता था। केशवका वह स्वरूप अब सदा उन्हें अपने आराध्य कौशल किशोरका ही दृष्टिगोचर होता था। उनके लिये द्वारिका अब अयोध्या हो चुकी थी। भक्तवत्सल प्रभु अपने प्रियजनोंके लिये क्या नहीं कर सकते। यदि हनुमान्‌जीके लिये वे कृष्णसे राम होगये तो कौन सी बड़ी बात होगई। ('आंजनेय' से)

अब लगन श्रीहरिसे लगा ली जायगी

(प्रेमीका निर्भय-उद्‌गार)

[किसी पुण्यविशेषके प्रभावसे भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य-विग्रहका दर्शन हो जाने पर एक मुस्लिम महिला, अपने पूर्व-सम्बन्धियोंको तलाक़ देती हुई तथा श्रीकृष्ण-प्रेम प्रकट करती हुई निर्भयतासे कहती है—]

ख़ाक इस दुनियांमें डाली जायगी,
अब लगन श्रीहरिसे लगा ली जायगी।
अब नहीं जाना मुझे कहती हूं साफ़,
हो गई दुनियां अगर मुझसे खिलाफ़।
होने दो ? सब देखी-भाली जायगी—
अब लगन श्रीहरिसे लगा ली जायगी॥ १॥

कहदो मुल्ला मौलवी या पीर को,
पूजूंगी मैं श्रीकृष्णकी तस्वीर को।
क्यों सताते हो मुझे पछताओगे ?,
दिल-जलोंकी आहसे जल जावोगे।
झोंपड़ी ब्रजमें बनाली जायगी,
अब लगन श्रीहरिसे लगाली जायगी॥ २॥

ये वस्तुएँ नांहा मेरे कुछ काम की,
है श्याम मेरा और मैं हूं श्याम की।
अब नहीं जाना मुझे यहांसे कहीं,
कस्म खाली है मरूंगी मैं यहीं।
ब्रज-धाममें धूनी रमा ली जायगी—
अब लगन श्रीहरिसे लगाली जायगी॥ ३॥

प्रणाम

(हरिगीत छन्द)

(लेखक—ब्रह्मनिष्ठ परमहंस स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी महाराज)

(१)

निष्काम भी जो देव सबके पूर्ण करता काम है।
सर्वात्म आत्माराम भी सबमें रमे जो राम है॥
सब नामसे जो बोलता, कोई न जिसका नाम है।
माथा झुका उस देवको, मम कोटि-कोटि प्रणाम है॥

(२)

निःसंग भी जो सर्वदा रहता सभीके संग है।
मन्दिर उठाता पीठपर शिर धार लेता गंग है॥
जो सब उजालोंका उजाला बन गया घनश्याम है।
कर जोड़कर उस देवको, मम कोटि-कोटि प्रणाम है॥

(३)

अद्वय अनामय एक जो, अवतार लाखों धारता।
जो दुर्जनोंको मारता है, सज्जनोंको तारता॥
मारे जिसे निज हाथसे, देता उसे निज धाम है।
घुटने नवा उस देवको, मम कोटि-कोटि प्रणाम है॥

(४)

परिपूर्ण भी अणु होय जो पितुके हृदयमें आय है।
फिर आयमाता कुक्षि शिशु हो खेल बहु दिखलाय है॥
रहता तदपि है पूर्ण ही, पाता नहीं परिणाम है।
मनसे मना उस देवको, मम कोटि-कोटि प्रणाम है॥

(५)

अव्यय अरूपी देव जो, सबसे प्रथम है भासता।
है मृत्यु जिसकी भूख अरु ब्रह्मांड जिसका नासता॥
है दंड जिसका दुःख हा, सुखदेव जिसका नाम है।
अभिमानतज उसदेवको, मम कोटि कोटि प्रणाम है॥

(६)

कोई जिसे ना जानता, जो सर्व ही है जानता।
कुछ भी नहीं जो जानता, फिर भी सभी है जानता॥
नरधीर जिसको जानकर हो जाय पूरण काम है।
तज छलकपट उसदेवको, ममकोटि-कोटिप्रणाम है॥

(७)

जो धर्म है धर्मज्ञ है, जो सर्व है सर्वज्ञ है।
जो क्षेत्र है, क्षेत्रज्ञ है, जो मर्म है मर्मज्ञ है॥
जिस देवके जाने बिना, पाता न नर आराम है।
निर्गुण सगुण उस देवको, मम कोटि-कोटि प्रणाम है॥

(८)

जो ध्यान ध्याता ध्येय है, जो ज्ञान-ज्ञाता ज्ञेय है।
अज्ञान जिसका प्रेय है, अरु ज्ञान जिसको श्रेय है॥
जिसकी कृपा बिनु जीव यह पाता नहीं विश्राम है।
उस देव मायातीतको, मम कोटि-कोटि प्रणाम है॥

(९)

जिसके बिना जल पर अचल अचला नहीं है रह सके।
ना वायु ऊंचा जा सके, नीचे नहीं जल बह सके॥
होवे न जिस बिनु चांदनी, होवे न जिस बिनु घाम है।
उस ज्योतियोंके ज्योतिको, मम कोटि-कोटिप्रणाम है॥

(१०)

जिसके बिना भोला! न कोई खा सके ना पी सके।
खाया हुआ पाचे नहीं, प्राणी न क्षणभर जी सके॥
जिस देवकी छाया करे, इस विश्वका सब काम है।
उस एक शिव कूटस्थको मम कोटि-कोटि प्रणाम है॥

कृपया यहाँ अपना ग्राहक नम्बर लिखलें, और पत्र व्यवहारमें तथा मनीआर्डरमें अवश्य लिखें।

ग्रा० नं०............

विषय सूची

अनेक धन्यवाद

श्रीमान् ब्र० चैतन्यानन्दजी भूतपूर्व पं० धर्मदत्तजी, श्रीमान् ब्र० भगवान् चैतन्यजी, श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी महाराज, श्रीमान् ब्र० शिवचैतन्य जी भिक्षुक, श्रीमान् ब्र० नारायणजी श्रीमान् ब्र० लक्ष्मणानन्दजी, तथा श्रीमान् ब्र० रामानन्दजी प्रभृति महानुभावोंको विश्वनाथके सभी सञ्चालक एवं संरक्षकोंकी तरफसे हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है, आप महानुभाव निष्कामभावसे विश्वनाथका जनता में प्रचार कर रहे हैं, और अच्छी तादादमें विश्वनाथ के ग्राहक बनाये हैं, और भविष्यमें भी बनाते रहेंगे, ऐसा पूर्ण विश्वास है। भगवान् विश्वनाथ आप लोगोंकी ऐहिक, पारलौकिक, एवं पारमार्थिक समुन्नति करे, यही भगवान्से विनम्र प्रार्थना है।

हरिद्वारके कुम्भमें महारुद्र यज्ञ

जगत् कल्याणार्थ ॐ नमः शिवाय बैंककी तरफसे अनेक धार्मिक महोत्सव मनाये गये थे, सबसे प्रधान 'महारुद्र यज्ञ' धर्मप्रेमी-साधुहितैषी-कर्मवीर श्रीमान् वीरुभाई डायाभाई महेताजीकी तरफसे हुआ था-जिसमें काशीजीके प्रसिद्ध याज्ञिक आचार्य श्री पं० रामनाथ जी वेद शास्त्री तथा ऋषिकुलके प्रधान वेदाचार्य ब्रह्मा पद पर नियुक्त किये गये थे। यज्ञकी पूर्णाहुतीके समय बड़े-बड़े विद्वान् महात्मा मण्डलेश्वर तथा प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ भी उपस्थित थे। ॐ नमः शिवाय लिखित मन्त्रोंका विराट पूजन तथा बादमें समष्टि भण्डारेमें साधु, सन्त, महात्मा, विद्वान, पण्डित तथा अभ्यागतोंका यथोचित सत्कार किया गया।

विश्वनाथके संपादकजी मण्डलेश्वर बनाये गये

हरिद्वारके कुम्भमें चैत्र शुक्ल द्वितीया समष्टि भण्डाराके दिन सर्व मण्डलेश्वर तथा सर्व महन्त-व-पंचायती श्रीमहानिर्वाणी अखाड़ा आदि समस्त दशनामी महात्माओं की तरफसे बड़े समारोहके साथ श्री विश्वनाथ पत्रके सम्पादक पूज्य श्री १०८ स्वामी महेश्वरानन्दजी महाराजको कनखल गिरीशानन्दाश्रम स्वामी सूरतगिरीजी महाराजका बंगलाके अधिष्ठाता बनाकर मण्डलेश्वर पद पर नियुक्त किये। सबसे प्रथम मण्डलेश्वर स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराजने आपकी योग्यता, विद्वत्ता विराट्धर्मप्रचार आदि गुणोंका वर्णन कर आपको मण्डलेश्वर बनानेका प्रस्ताव किया-जो सभी महात्माओंने करतलध्वनिसे बड़े हर्षके साथ स्वीकृत किया, तत्पश्चात् महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज प्रभृति मंडलेश्वरोंने आपको गद्दी पर बैठाया, तत्पश्चात् सभी मण्डलेश्वरोंने तथा महन्तोंने अपनी अपनी तरफसे चद्दरें-साल-दुशाले तथा भेंटे अर्पण की दर्शकों की अपार भीड़ थी, काशीकी प्रतिष्ठित वेद मण्डलीने वेदध्वनी द्वारा राज्याभिषेकके मन्त्रोच्चारणकर अच्छी शोभा बढाई थी। समष्टि की पंक्तिमें माननीय श्रीसम्पादक महोदयजीकी तरफसे अहमदाबादके श्रीमान् वीरुभाई डाह्याभाई महेताजी द्वारा तथा खरांगणाके सेठ कन्हैयालालजीके द्वारा सर्व महात्मा तथा ब्राह्मण आदिको भोजन वस्त्रसे सत्कार कराया गया। विश्वनाथ पत्र तथा अनेक धार्मिक पुस्तकें भी वितीर्ण की गईं।

हरिद्वारमें विराट आरती

ब्रह्मकुण्ड हरकी पैड़ी पर शिवरात्रीसे चैत्रकी पूर्णिमासी तक काशीस्थ ॐ नमः शिवाय बैंक (मन्त्र कोष) की तरफसे जगत् कल्याणार्थ श्रीगंगाजीकी सायकालको प्रतिदिन तीन-चार लाख फूलबत्ती तथा लम्बी बत्ती मिलाकर आरति की जाती थी। इस अपूर्व आरतिको देखनेके लिये ब्रह्मकुंड पर एक घंटा पहिले ही जनताकी अपार भीड़ लग जाती थी-आरतिके लिये बड़े बड़े दो दीपस्तम्भ तथा १०८बत्तीकी एक विशाल जर्मन सिलवरकी आरति तथा जलमें छुटनेवाली छोटी छोटी पांच नौकायें जिसमें बत्तियां रख जलाकर रस्सा बांधकर जलमें छोडी जाती थी, हजारों पडिया (दोने) में भी बत्तियां रखकर जलमें प्रवाह की जाती थी—वेदपाठ जप, पूजन, घंटानादध्वनि तथा बत्ती लगाने वाले प्रबन्धक २३ आदमी रखे गये थे। गंगासभाके स्वयं सेवक तथा महानन्द मिशनके स्वयंसेवकोंने भी प्रतिदिन आरतीके समय उपस्थित होकर भीड़ हटाकर सेवाका अच्छा लाभ उठाया था। ऐसी अद्वितीय विराट आरति हरिद्वारमें कभी नहीं हुई थी। प्रथम ॐ नमः शिवाय बैंकके कार्यकर्ताओंका एक करोड़ बत्तियां एकत्रित करनेका विचार हुआ था। लेकिन श्रीगंगाजीकी प्रेरणा व महात्माओंके आशीर्वादसे करीब दो करोड़ से भी अधिक संख्यामें अर्थात् करीब ४०० डब्बाकी भीगी हुई बतियां एकत्रित हुई थी। चैत्रकी पूर्णमासीके बाद कुछ बची हुई बतियां हरकी पैड़ी, दक्षेश्वर, श्रवणनाथकी हवेली, पतित पावनेश्वर आदि मन्दिरोमें बांट दी गई थीं।

बंगलेमें सत्संग

श्रीस्वामी सूरतगिरीजीमहाराजके बंगलेमें लोकहितार्थ अनेक लघुरुद्र प्रतिदिन वेदपाठ हवन, सहस्रघटाभिषेक, बसन्त पूजन, भागवत सप्ताह आदि धार्मिककार्य होते रहे, साथ साथ सायंकालको ब्रह्मनिष्ठ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री१०८ स्वामी महेश्वरानन्दजी महाराज मण्डलेश्वरजी वेदान्तकी कथामृतका पान कराते थे। और सवेरेके समयमें कतिपय विद्वान महात्माओंको भी आप ही अध्ययन कराते थे। महात्माओंको शास्त्र पढ़ानेमें तथा शास्त्रीय प्रवचनमें आपका बहुत अनुराग रहता है।

विश्वनाथ पत्र कार्यालय

हरिद्वार कुम्भ मेले पर स्वामी सूरत गिरिजीके बंगलेमें विश्वनाथ पत्र कार्यालय भी खोला गया था, जिसमें ब्र० रामानन्द जी तथा ब्र० शिवचैतन्य जी व० नारायण ब्रह्मचारी जी बड़े उत्साहसे कार्य करते थे।

विश्वनाथ औषधालय

बाबू रामनाथजी ढाका शक्ति औषधालयके कार्यकर्ताजीने अपने धर्मार्थ भावसे सैकड़ों पीड़ित रोगियोंको अपनी अमूल्य औषधियां देकर सेवाका लाभ उठाया था। इसी प्रकार पं० छज्जूरामजीने भी अपनी धर्मार्थ औषधियां वितीर्ण की थीं जिससे जनताको बहुत लाभ पहुंचा था।

संन्यासी संस्कृत पाठशाला

ब्रह्मनिष्ठ श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्री १०८ स्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज मण्डलेश्वरजीके सभापतित्वमें बड़े समारोहके साथ काशीस्थ संन्यासी संस्कृत पाठशालाका वार्षिक महोत्सव मनाया गया था। भजन मण्डलीके भजन तथा काशीके धुरन्धर विद्वानोंके बड़े ही ओजस्वी भाषण हुए थे।

महामण्डलेश्वर महाराज तथा सम्पादकजी महाराज

महामण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज हरिद्वारसे काशीमें आ गये हैं। और बाहर एकान्तमें शिवपुरके बगीचेमें—जो ॐ नमः शिवाय बैंकका मन्दिर बननेके लिए लिया गया है—उसीमें निवास कर रहे हैं।

श्री १०८ मण्डलेश्वर श्री महेश्वरानन्दजी महाराज विश्वनाथ सम्पादक हरिद्वार श्री १०८ स्वामी सूरतगिरिजी महाराजके बंगलेमें गर्मियोंमें निवास कर रहे हैं, बाद धर्म प्रचारार्थ चातुर्मासमें अन्यत्र प्रयाण करेंगे।

नये वर्षके उपलक्षमें

सस्ती भेंट।

विश्वनाथके प्रिय ग्राहकों तथा विश्वनाथ ग्रंथमालाके स्थाई ग्राहकोंको चतुर्थ वर्षके उपलक्षमें विशेष सुविधा। भक्ति सम्बन्धि निम्न पुस्तकें पौने मूल्यमें मिलेंगीं। प्रत्येक का डाक खर्च अलग।

शिव भक्तमाल सचित्र

इसमें शिवभक्तोंकी बहुत अच्छी-अच्छी कथायें शिवपुराण तथा शिव सम्बन्धी अन्यान्य बड़े-बड़े ग्रंथोंसे खोज खोज कर एकत्रित कीगई हैं। मय श्लोक और प्रमाणके कितने ही तिरंगे चित्र पक्की जिल्द। मूल्य लागत मात्र २) इसी का बिना चित्र, अजिल्द–१)

काशी मोक्ष निर्णय

नामसे ही विषय स्पष्ट है। यानी "काश्यां मरणान्मुक्ति" यह ठीक है। इसका स्पष्ट विचार है। मूल्य ।-)

शैवप्रमोद

इसमें शिवभक्तोंके गाने योग्य अच्छे-अच्छे गाने और कविता हैं। मूल्य ।-) यही छोटा -)॥

शिवमहिम्न स्तोत्र

मय शिवकवच, शिवसहस्रनाम, भाषा टीका सहित। इससे कम पढ़ा लिखा भी अक्षरार्थ आदि समझ कर अपना मनसन्तोष कर सकता है। सरल हिन्दी मूल्य लागतमात्र ॥)

महिम्नगान

इसमें श्लोकोंका यथावत छन्दोंमें अनुवाद है। अन्वय पदच्छेद–शब्दार्थ सब साथमें, सचित्र कीमत ।)

शिवपंञ्चामृत

इसे पढ़नेसे आप महिमामृत, कीर्तनामृत, ध्यानामृत, अभयामृत और नामामृतमें क्या रहस्य है वह अच्छी तरह ग्रहण कर सकते हैं। प्रत्येक पुस्तकमें तत्तस्थल पर प्रमाणोंकी तो भरमार है यदि आप पुराणोंके बिना पुराणोंका और वेदों का आनन्द लेना चाहें तो अवश्य पढ़ें। दाम ।)

शिवपूजा विधान

नामसे ही विषय स्फुट है इसमें पूजन सामग्री पूजन विधि जप विधि, यानी पूजाका यथावत् आरती पर्यंत सब उल्लेख है। दाम ।)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग महात्म्य

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गके प्रगट होनेकी कथा और उन अस्थानोंका पूर्ण विवरण विस्तार सहित है। दाम -)॥

अन्नपूर्णा सहस्रनाम

यह मय अन्नपूर्णा कवचके अन्नपूर्णा सहस्रनाम, स्तोत्र और प्रार्थना है,। दाम =)

शिवसहस्रनाम

इसमें शिवसहस्रनाम है जो कि महर्षिमार्कण्डेय और श्रीकृष्णमें सम्वाद हुआ था। यह कथा पद्मपुराणके उत्तर खण्डमें देखिये। दाम -)॥

जीवन निर्माण कला—दाम -)॥

शिवकवच

कवचके माने वख्तर जिस तरह वख्तर योद्धाकी रक्षा करता है उसी तरह यह भी भावुक भक्तोंकी पाठ मात्रसे रक्षा करता है। दाम -)॥

ॐ नमो विश्वस्वरूपाय, विश्वस्थित्यन्तहेतवे । विष्णवे विश्वनाथाय, विश्वेश्वराय ते नमः ॥

पुस्तक ४ } काशी, वैशाख १९९५ अप्रैल १९३८ { अंक ३

सन्तों की दिव्य-वाणी

खबर नहीं घड़ी एक की, नहीं पलक की आस ।
ना जानूं इस जीवका, सुवे कहाँ हो वास ॥

आज कहे मैं कल भजूँ, काल कहे पुनि काल ।
आज-कालके करत ही, अवसर जासी चाल ॥

क्या करिये क्या जोड़िये, थोड़े जीवन काज ।
छाँड़ि-छाँड़ि सब जात हैं, देह गेह धन-राज ॥

रात गमायी सोय कर, अरु दिवस गमाया खाय ।
हीरा जन्म अमोल-था, सो कौड़ी बदले जाय ॥

पानी जैसा बुदबुदा, यह मानुषकी देह ।
ओस पड़े गल जायगी, फिर किसका है नेह ॥

तू 'रहिमन' मन आपनो, करले चारु चकोर ।
निशिवासर निरखत रहे, कृष्णचन्द्र की ओर ॥

'रहिमन' कोऊ क्या करे, ज्वारी चोर लबार ।
जो पत-राखन हार है माखन चाखन हार ॥

तुलसी जगमें यों रहो, ज्यों जीह्वा मुख माँहि ।
घीव घना भक्षण करे, तो भी चिकनी नाँहि ॥

कोटि जन्मके पुण्य जब, उदय होत एक-संग ।
छूटत मनकी मलीनता, भावत तब सत्संग ॥

श्वास श्वासमें राम भज, वृथा श्वास मत खोय ।
क्या जानूँ या श्वास की, आवन फिर नहीं होय ॥

गीताकी शिक्षा

(लेखक- ब्रह्मनिष्ठ परमहंस स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजीमहाराज)

(१)

गीता यही सिखलाय है, सब धर्म लौकिक त्याग रे।
केवल अलौकिक देवमें, कर नित्य ही अनुराग रे॥
ना देह तू ना देह तेरा, देहसे छूट भाग रे।
संसारसे सो जा सदा ही, ब्रह्म माँही जाग रे॥

(२)

जो शस्त्रसे ना छिद सके, ना आगसे जो जल सके।
जलसे नहीं जो गल सके, ना वायुसे टल जो सके॥
तिहुँ देहसे जो है परे, आत्मा उसे ही जान रे।
सब धर्म तज कर तू उसीका, नित्य अनुसंधान रे।

(३)

कर ब्रह्म अर्पण कर्म सब, मत कर्मसे कर संग रे।
करने न करने के लिये, मत आपको कर तंग रे॥
करना न करना क्या करे, जो आप है निस्संग रे।
निस्संगता भज तू सदा, रंग जा उसीके रंग रे॥

(४)

निष्कर्म जो है आप, उसको कर्मसे क्या वासता।
सर्वत्र हो जो पूर्ण, उसको कौन सी फिर दासता॥
मेरे सिवा कुछ है नहीं,–रण माँहि जो चिल्ला रहा।
उस कृष्णकी लेली शरण, तो और करना क्या रहा?॥

(५)

तज भोग दे, तज योग दे, योगेश की ले रे शरण।
ब्रह्मा झुकाता शिर जिसे, ले पकड़ उसके ही चरण॥
उसका श्रवण, उसका मनन, धर नित्य उसका ध्यान रे।
खा पी उसीके वासते, कर यज्ञ रे दे दान रे॥

(६)

करती प्रकृति है कर्म सब आत्मा सदा निर्लेप है।
जो जानता उसको न होता, कर्मसे कुछ लेप है॥
जिस कर्ममें अधिकार है, कर कर्म सो जी खोल रे।
जिसमें नहीं अधिकार हो, मत मन-तलकसे बोल रे॥

(७)

तू है नहीं यह देह तेरा भी नहीं यह देह है।
फिर देहके सम्बन्धियोंमें क्यों करे तू स्नेह है॥
ना देह ना सम्बन्धियोंमें, हो कभी आसक्त रे।
देही सनातन-आत्ममें हो नित्य हो अनुरक्त रे॥

(८)

जबतक रहेगी वासना, ना जन्मसे छुट पायगा।
जबतक न छूटे जन्मसे, ना धर्मसे छुट पायगा॥
जब वासना छूट जायगी, तब जन्म भी छुट जायगा।
छुट जायगा जब जन्म, तब सब धर्म भी छुट जायगा॥

(९)

छुट जायगा जब धर्म, तब निष्पाप तू होजायगा।
ना जन्म फिर होगा कभी स्वाराज्य अविचल पायगा॥
मत भोगमें आसक्त हो, मत कर किसीकी आश रे।
हैं मार्ग दोनों श्रेयके, कर योग या संन्यास रे॥

(१०)

उपदेश मत दे अन्यको, कर आप पर उपकार रे।
हरि-गानसे शिव-ध्यानसे, कर आपना उद्धार रे॥
भोला! मती हो चुप्प, यद्यपि चुप्प रहना सार रे।
मन शुद्ध करनेके लिये, लिख और गीता-सार रे॥

(हरिगीत छन्द)

पूज्यपाद स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराजके

सदुपदेश

'वैराग्य विना संतोषकी वृद्धि नहीं होती, और संतोष विना शान्ति कहां ? एवं शान्ति विना सुख कहां ! 'अशान्तस्य कुतस्सुखम्' ।

'आसक्तिसे ही दु ख एवं भय उत्पन्न होता है, उसके त्यागसे ही मनुष्य निर्भय एवं दुःख रहित होजाता है।'

'धनीको वैराग्य होना कठिन है, धनादिके सम्बन्धसे अभिमानरूपी भयंकर रोग सदाके लिये उसके शिर-पर सवार रहता है।'

'जगत्के पदार्थोंमें जबतक रमणीयता भासती है, तबतक वह जगत्के कष्टोंका शिकार बना रहता है।'

'जो स्त्री की चाह करता है, वह गर्भवासरूपी कारागारसे विमुक्त नहीं हो सकता, स्त्री की योनि से उसे निकलनाही पड़ता है।'

× × ×

'सारा संसार धन-दौलत, जमीन-जायदादके पीछे मर मिट रहा है, यदि तुम साधु-वेष धारी होकर भी उसके पीछे मर मिटे तो तुमने किया क्या ? मोक्ष-मार्गमें चलनेका दावा रखनेवाले तुम्हारी तारीफ़ हुई क्या खाक ? यह पेंठ, यह टेढी चाल, यह पोल, फूँकसे पहाड़ उड़ानेका यह मनसूबा, कब तक निभेगा ! अफसोस !'

'जो अपने धनको सत्कार्यमें नहीं लगायेगा, वह कंजूस अन्तमें हाथ मल-मलकर पछतायेगा, उसके धनसे दूसरे मौज उड़ायेंगे और मूछों पर ताव देंगे।'

कहा है—दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।'

× × ×

'मानव-जीवन, प्रकृतिका गुलाम नहीं, परन्तु स्वामी बननेके लिये उद्भुत हुआ है।'

'मनुष्य रागद्वेषमयी-प्रकृतिका तभीही नियन्त्रण कर सकेगा, जब कि—उसकी बुद्धि विवेक विचार युक्त होगी।'

'निस्पृहके लिये सब जगह-शान्ति एवं आनन्द का साम्राज्य स्थापित हो जाता है।'

'भव-वासनाही अनर्थका मूल-कारण है, उसके त्याग द्वाराही परमार्थ-तत्त्वके चिन्तनमें साधक अग्रसर हो सकता है।'

'जगत्के पदार्थोंसे निष्काम एवं अनासक्त हो जानेसे ही वासनाका त्याग हो जाता है।'

× × ×

'पूर्ण शान्ति, पूर्ण-आनन्द, पूर्ण-स्वतन्त्रता, एवं पूर्ण-निर्भयता, प्राप्त करनाही हमारा स्वतः सिद्ध अधिकार है।'

'यद्यपि वह आनन्द-निधि परमात्मा सवत्र परिपूर्ण है, सबका आत्मा है, तथापि विषयासक्त बुद्धिवाले उसे नहीं देख सकते।'

'संसार निःसार है, भगवद्भजनही एक मात्र सार है, यह ध्रुव तथ्य है।

'जो भगवच्छरण होकर भगवद्भजन करते हैं, वे सदाके लिये सुखी निर्भय एवं स्वतन्त्र होजाते हैं।'

× × ×

शास्त्रोंका यथार्थ रहस्य, निर्मल बुद्धिवाले सद्गुरुकृपापात्र मनुष्यही जान सकते हैं। 'भगवान्‌ही सब कुछ है, वह एक एव अद्वितीय है, भगवान्के सिवा अन्य जो कुछ भी है—सब शश-शृङ्गके समान मिथ्या है, यह सभी शास्त्रोंका यथार्थ-रहस्य एवं मुमुक्षु-प्राप्तव्य चरम लक्ष्य है। उस लक्ष्य-प्राप्तिके लिये अनेक साधनोंका निर्देश कर हमारे शास्त्रकारों ने अज्ञ जीवोंके प्रति बड़ी भारी कृपा की है। जिस प्रकार निशाना सिखानेवाला प्रथम अत्यन्त-समीप एवं स्थूल वस्तुमें निशाना-मारना सिखाता है, पश्चात् सूक्ष्म एवं दूर वस्तुमें। इसी प्रकार हमारे शास्त्रकार प्रथम मिट्टी और पाषाणकी मूर्तिमें भगवद्भावना कराते हैं, कहते हैं—यही भगवान् हैं।

पश्चात् धीरे धीरे भगवान्का विराट् स्वरूप बतलाकर विश्वके सभी प्रधान-प्रधान पदार्थोंमें भगवद्भावना कराते हैं। अन्तमें वेदान्त-शास्त्र कहता है कि—सब कुछ भगवान् ही है, भगवान्के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है, 'पूर्णमेवावशिष्यते'।

× × ×

'यदि तुम्हें विमलानन्द प्राप्त करना है एवं भव-रोग-बाधासे मुक्त होना अभीष्ट है। तो 'देहोऽहं' का भजन छोड़कर 'सोऽहं सर्वं वासुदेव' के भजनमें तत्पर होजाओ।'

'मैं देह हूँ' ऐसा संकल्पही संसार है, बन्धन है, पाप है, दुःखोंका मूल है, महानरक है, एवं शोक-सागरमें गड़प्प होनेका साधन है।'

'मैं और यह सब कुछ वासुदेवही है, यह निश्चयही अखण्ड स्वाराज्य है, मुक्ति है, अक्षय-पुण्य है, सुख शान्तिका द्वार है, स्वर्गका सोपान है एवं आनन्द-महासागरमें गड़प्प होनेका साधन है।'

× × ×

अन्तसमयमें भगवान्का स्मरण तभी सम्भव है, जब कि—जीवन भर इसका प्रचुर अभ्यास किया जाय। मृत्युकालकी मर्मान्तिक-अवाच्य वेदनामयी अवस्थामें मनुष्यका चित्त उन्हीं वस्तुओं पर जायगा, कि—जिनमें वह आजन्म आसक्त रहा है। जो मनुष्य धन-धान्य-स्त्री-पुत्र आदि सांसारिक वस्तुओंमें जन्मभर आसक्त रहा हो, वह अन्तकालमें उनको सहसा कैसे भूल सकता है?

'प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः,
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते।

अन्तकालमें जीव जैसा जैसा चिन्तन करता है, वह चिन्तनके अनुसार उस उस वस्तुको प्राप्त होता है। श्रीभगवान् कहते हैं—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय! सदा तद्भावभावितः॥
(गीता० ८।६)

जीव, अन्तकालमें जिस-जिस भाव (पदार्थ) का स्मरणकरता हुआ शरीर त्यागता है, वह उसको ही प्राप्त होता है, परन्तु वह जिस भावमें जन्मभर आसक्त बना रहा है, जिसका प्रचुर चिन्तन किया है, अन्तकालमें भी प्रायः उसीका ही स्मरण होगा, यह ध्रुव तथ्य है।

× × × ×

'एषणात्रयत्यागी-वीतराग-तत्त्वदर्शी परिव्राजक संन्यासी ही 'अहं ब्रह्मास्मि' के विकट मार्गमें निर्विघ्न रूपसे चलकर स्वस्वरूपावस्थितिरूप सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं।'

'ज्ञान-योगकी वेदी पर विषय-वासनाओंकी बलि दिये बिना स्वस्वरूपावस्थितिरूप सिद्धि किसी भी प्रकारसे प्राप्त नहीं हो सकती।'

'बहिर्मुख-उच्छृङ्खल मनुष्यको सिद्धि किसप्रकार प्राप्त हो सकती है-कहा है—

जिह्वा दग्धा परान्नेन हस्तौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।
परस्त्रीभिर्मनो दग्धं कथं सिद्धिर्वरानने!॥

श्रीशङ्कर भगवान् पार्वतीजीसे कहते हैं—हे सुमुखि! जिसकी पराये राजस तामस अन्नसे जिह्वा दग्ध हो रही है, अमर्याद-प्रतिग्रहसे हाथ अपवित्र हो रहे हैं, और पर स्त्री चिन्तनसे मन कलुषित हो रहा है, ऐसी अवस्थामें जीव स्वस्वरूपावस्थिति-रूप सिद्धि कैसे प्राप्त कर सकता है?।

× × × ×

'आज कलके मनुष्योंकी प्रायः दृष्टि अर्थ-काम परायण होगयी है। समय बदल गया। स्वार्थ-सिद्धि ही जीवनका लक्ष्य होगया। चारो तरफ अमर्याद-पापप्रधाना लड़ाई शुरू होगयी। स्वयं मौतके मुँहमें बैठा हुआ मनुष्य दूसरोंको लूट कर दुःख देकर, मार कर सुख एवं आरामसे जीना चाहता है।'

'भगवान् के लिये व्याकुल होकर रोनेवाले रैदास चमार एवं सजना कसाई शायद कोई नहीं होगा, परन्तु मंदिर प्रवेशके लिये सभी डटे हुए हैं. भगवान् की मूर्तिमें जिन्हें तनिक भी श्रद्धा भक्ति नहीं है, वे ही लोग सबको मंदिरोमें ले जानेके लिये कमर कसकर खड़े हुए हैं. यही कलि-देव की प्रचण्ड माया है।'

इह सन्तो विषीदन्ति, प्रहृष्यन्ति ह्यसाधवः।
अयं तु युगधर्मो हि, वर्तते कस्य दूषणम्॥

(क्रमशः)

योगतत्त्व-मीमांसा

(लेखक—श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज मण्डलेश्वर)

(प्रथमखण्ड पूर्वप्रकाशितसे आगे)

द्वैतप्रपञ्च, भ्रान्तिमात्र एवं मनःकल्पित है। जगत् वस्तुतः है ही नहीं, ब्रह्म ही है, परन्तु उसमें 'जगत् है' 'दीखता है' ऐसी प्रतीति अघटघटना मायाके संबंध से हो जाती है, अतएव मायाको विद्वान् लोग 'अघटघटनापटीयसी' कहते हैं।

वेदान्त–सिद्धान्तमें मुक्ति साध्य नहीं है, किन्तु स्वतःसिद्ध है, अतः जीवात्मा स्वतः मुक्त है, अर्थात् अविद्यादशामें प्रतीयमान-बन्धन जीवमें वास्तविक नहीं है, जीव स्वयं ब्रह्मरूप होने पर भी अविद्यासे अपनेको बद्ध मानता है। अतएव श्रुतिभगवतीने परमार्थस्वरूपका वर्णन किया है कि—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

वस्तुतः आत्मचैतन्यमें विनाश नहीं, उत्पत्ति नहीं, साधकत्व नहीं, मुक्ति नहीं एवं मुक्तिकी इच्छा भी नहीं है।

भ्रम-निवृत्तिका नाम मुक्ति है। वस्तुतः सच्चिदानन्द ब्रह्म, जीवका स्वरूप होनेके कारण सदाही उसे प्राप्त है, परन्तु अविद्यासे अप्राप्तकी तरह प्रतीत होता है। विद्यासे अविद्या-निवृत्ति द्वारा उस प्राप्त ब्रह्मकी प्राप्ति मानी जाती है 'कण्ठचामीकरवत्'। कण्ठचामीकर न्याय यह है—

किसी बालकके कण्ठमें सुवर्णका हार था, किसी समय उसे भ्रम हुआ कि—कण्ठमें हार नहीं है, पश्चात् वह व्याकुल होकर उसे इधर उधर ढूँढने लगा, परन्तु अन्यत्र उसे हारका पता नहीं लगा। अन्तमें किसी यथार्थदर्शीने कहा कि—अरे! भोला बालक! जिसे तू ढूँढ रहा है, वह हार तो तेरे गलेमें ही मौजूद है, व्यर्थ ही तू क्यों ढूँढता है? तब उसका भ्रम दूर हुआ, और प्राप्त हारकी प्राप्ति हुई। इसप्रकार जीव सदा ही शुद्ध बुद्ध, मुक्त, असंग, सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप है, परन्तु अविद्यासे उस स्वरूपको भूला हुआ है। भूल भी अनादि है, जब सद्गुरुकी कृपासे तत्त्वज्ञान द्वारा अनादिभूलरूप अविद्यानष्ट होती है, तब उसे प्राप्तकी ही प्राप्ति होती है, अपने शुद्धस्वरूपको जान जाता है, यही मुक्तिका स्वरूप है।

जब तत्त्वज्ञानके प्रभावसे योगी वासना रहित होकर जीवन्मुक्त हो जाता है, तब उसे कर्म बन्धन नहीं रहता। अतएव कहा है—

'तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्।'
(ब्र॰सू॰ ४।१।१३)

श्रुतियोंमें कहा है कि—ब्रह्मका साक्षात्कार होने पर तत्त्वज्ञानी जीवन्मुक्त-पुरुषके समस्त सञ्चित कर्मका विनाश हो जाता है और क्रियमाण कर्मका असंस्पर्श हो जाता है।

'अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः।'
(ब्र॰ सू॰ ४।१।१५)

जीवन्मुक्तमें प्रारब्ध कर्मही परिशिष्ट रहता है, तदन्य कर्मका उसमें सम्बन्ध नहीं रहता। भोगके द्वारा ही प्रारब्ध कर्मका क्षय करना पड़ता है। जबतक प्रारब्धका पूर्ण क्षय नहीं होता, तबतक जीवन्मुक्तका शरीर रहता है।

'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति, अत्रैव समवलीयन्ते।"

जीवन्मुक्त महात्माके प्राण शरीरसे बाहर उत्क्रान्त नहीं होते, यहां ही विलीन हो जाते हैं।

स्मृति-शास्त्र

स्मृति-शास्त्रके प्रणेता हैं—अनेक महर्षि। जिनमें वैदिक-विज्ञानके अनुरूप ही वर्णधर्म, राजधर्म, आश्रमधर्म प्रजाधर्म, लोकहितकारी साधारण एवं असाधारण धर्मोंका विशद-निरूपण है, उन्हें स्मृति-शास्त्र कहते हैं। त्रिगुणात्मक-संसारमें सात्विक, राजस, एवं तामस, तीन प्रकारके मनुष्य होते हैं। इन तीनोंके लिए क्रमशः योगानुशासन, शब्दानुशासन, एवं राजानुशासन, इन तीन शासनों की आवश्यकता है। सात्विक मनुष्योंके लिए योगानुशासनका प्रधानवर्णन, उपनिषत् एवं योग-शास्त्रमें है। राजस एवं तामस मनुष्योंके लिए, शब्दानुशासन एवं राजानुशासनका मुख्य-वर्णन स्मृति-शास्त्रमें है।

'स्मर्यंते वेदार्थो विशदरूपेण यत्र सा स्मृतिः।'

अर्थात् स्मृति-शास्त्रमें वैदिक-विज्ञानका ही विशदरूपसे वर्णन होनेके कारण, स्मृतियोंका अनुशासन, वेद-विरुद्ध नहीं हो सकता। सनातनधर्मकी मर्यादा है कि—वेद विरुद्ध कोई भी ग्रन्थ प्रमाण नहीं माना जाता। अतएव कहा है—

श्रुति-स्मृति-पुराणानां, विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात्, तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥

वेदवाक्य, स्मृतिवाक्य, एवं पुराणवाक्योंमें यदि विरोध प्रतीत हो तो वेदवाक्यको ही प्रमाण मानना चाहिये, वेद-वाक्य विरुद्ध, स्मृतिवाक्य, एवं पुराण-वाक्योंको प्रमाण नहीं मानना चाहिये। स्मृतिविरुद्ध पुराण-वाक्यमें यदि विरोध प्रतीत हो तो स्मृतिवाक्य ही प्रमाण मानना चाहिये, स्मृतिविरुद्ध पुराण-वाक्य प्रमाण नहीं मानना चाहिये।

यद्यपि वर्तमान-समयमें स्मृतियोंकी संख्याका नि[illegible] नहीं रहा है, तथापि अष्टादश (१८) स्मृतियाँ [illegible] अष्टादश उपस्मृतियाँकी संख्या श्रुति-गोचर होती आई है। इन सभी स्मृतियोंमें मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, एवं परा[illegible]शर-स्मृति मुख्य मानी जाती है। स्मृतियोंके विषय[illegible] कहा है—

मन्वत्रिविष्णुहारीत-याज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः।
यमापस्तम्बसंवर्त्ताः कात्यायनबृहस्पतिः॥
पराशरव्यासशङ्ख-लिखिता दक्षगौतमौ।
शातातपो वसिष्ठश्च, धर्मशास्त्रप्रयोजकाः॥

मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब संवर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, गौतम, शाततप और वसिष्ठ धर्मशास्त्र यानी स्मृति-शास्त्रके प्रयोजक हैं।

इनसे अतिरिक्त, गोभिल, जमदग्नि, विश्वामित्र, प्रजापति, वृद्धशातातप, पैठीनसि, आश्वलायन, पितामह, बौद्धायन, भरद्वाज, छागलेय, जाबालि, च्यवन, मरीचि, कश्यप आदि महर्षि प्रणीत उपस्मृतियां हैं।

यद्यपि सृष्टिकी विचित्रताके कारण, सभी स्मृतियोंका अनुशासन—प्रकार एक—रूपसे न होने पर भी सभीका धर्म-रूपीलक्ष्य एक ही है। वैदिक-सिद्धान्तोंके अनुसार, उस-उस देश एवं कालके अनुरूप जिस-जिस महर्षिके शुद्ध हृदयमें जिस-जिस भावसे जो जो अनुशासन—प्रकार ईश्वरकी प्रेरणासे प्रकाश होता गया, उस उस प्रकारसे स्मृति शास्त्रोंका भी निर्माण होता गया। प्रातःकालसे संध्या-पर्यन्त, एवं संध्यासे प्रातःकाल पर्यन्त किस—किस प्रकारके मनुष्योंका क्या—क्या कर्तव्य है! आहार, विहार, व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, एवं सामाजिक रीतियां कैसी होनी चाहिये, इत्यादि सभी विषयोंका पूर्णरूपसे विचार, तथा किस-किस निषिद्ध

कर्मोंके त्यागसे मनुष्य, लौकिक एवं पारलौकिक-पतन से बच सकता हैं, एवं किस-किस सदाचारमय शुभ कर्मोंके ग्रहणसे मनुष्य, उन्नतिके शिखर पर पहुँच कर आत्म कल्याण कर सकता है, उन सभीका वर्णन इन स्मृति—शास्त्रोंमें ही मिलता है। अतः स्मृति—शास्त्रके विशेष-प्रचारसे ही वैदिक सनातन धर्मकी व्यवस्था सुदृढ़ हो सकती हैं।

स्वयं इतिहासरूपसे प्रसिद्ध—व्यासदेव विरचित महाभारत तथा महर्षि वाल्मोकि प्रणीत रामायण भी इन धर्मशास्त्ररूप स्मृतियोंके अन्तर्भूत माना जाता है। अत-एव महाभारतके भीष्मपर्वान्तर्गत प्रसिद्ध यशस्विनी भग-वद्गीताका आचार्योंने स्मृति-शब्दसे व्यवहार किया है।

पुराण-शास्त्र

पुरातनी गाथाओंके द्वारा धर्म, ज्ञान, भक्ति, आदि का वर्णन करनेके कारण भागवत आदिका नाम पुराण पड़ा है। पुराण भी वेदोंके अनुकूल है। वेदोंमें जिन-जिन समाधिगम्य, कठिन-विषयोंका संक्षेपसे वर्णन किया है, उन्हीं विषयोंका अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंके लिये पुराणों में भिन्न-भिन्न भावसे भिन्न-भिन्न भाषासे भिन्न-भिन्न रूपसे से एवं भिन्न-भिन्न गाथाओंके द्वारा विस्तारसे वर्णन किया है।

पुराणका साधारण लक्षण यह है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च, वंशो मन्वन्तराणि च।
वंश्यानां वंशचरितं, पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

महाभूतोंकी सृष्टि, समस्त चराचरकी सृष्टि, तथा प्रलय, ब्रह्मर्षि एवं राजर्षियोंकी वंशावली, मन्वन्तरोंका वर्णन और वंशों की प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंका दिव्य-चरित्र, ये पांच लक्षण जिनमें विद्यमान हों, उनको पुराण कहते हैं।

महापुराणोंका लक्षण इस प्रकार है—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च, स्थितिस्तेषाञ्च पालनम्।
कर्म्मणां वासना वार्ता, मनूनां तु क्रमेण च॥
वर्णनं प्रलयानाञ्च, मोक्षस्य च निरूपणम्।
उत्कीर्त्तनं हरेरेव, देवनाञ्च पृथक् पृथक्॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

मूलसृष्टि, विस्तृत सृष्टि, जगत्की स्थिति, जगत का पालन, कर्मवासना, क्रमशः मनुओंका चरित्र, प्रलय, मोक्ष, हरि-भक्ति, एवं देवताओंका चरित्र, इन दश-विषयोंका जिनमें प्रधानरूपसे वर्णन है, उनका नाम महापुराण है।

महापुराण अष्टादश (१८) हैं, और उनके ये नाम हैं—

अष्टादश पुराणानि, पुराणज्ञाः प्रचक्षते।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवंच, शैवं भागवतं तथा॥
तथाऽन्यं नारदीयञ्च, मार्कण्डेयञ्च सप्तमम्।
आग्नेयमष्टमञ्चैव, भविष्यं नवमं स्मृतम्॥
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं, लैङ्गमेकादशं स्मृतम्।
वाराहं द्वादशञ्चैव, स्कान्दं चैव त्रयोदशम्॥
चतुर्दशं वामनञ्च, कौर्म्मं पञ्चदश स्मृतम्।
मात्स्यं च गारुडञ्चैव, ब्रह्माण्डञ्च ततः परम्॥

ब्रह्मपुराण. पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिव पुराण, भागवत, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्नि-पुराण, भविष्य-पुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, लिङ्गपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुड़ पुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण, ये अष्टादश महापुराण हैं।

अष्टादश (१८) उपपुराण हैं, इनके नाम ये हैं—

आद्यं सनत्कुमारोक्तं, नारसिंहमथापरम्।
तृतीयं वायवीयं च, कुमारेणानुभाषितम्॥

चतुर्थं शिवधर्माख्यं, साक्षान्नन्दीशभाषितम् ।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं, नारदीयमतः परम् ॥
नन्दिकेश्वरयुग्मञ्च, तथैवोशनसेरितम् ।
कापिलं वारुणं साम्बं, कालिकाऽऽह्वयमेव च ॥
माहेश्वरं तथा देवि, दैवं सर्वार्थसाधकम् ।
पाराशरोक्तमपरं, मारीचं भास्कराह्वयम् ॥

सनत्कुमारपुराण, नृसिंहपुराण, वायुपुराण, शिवधर्मपुराण, दुर्वासापुराण, नारदपुराण, नन्दिकेश्वर प्रणीत दो पुराण, उशनापुराण, कपिलपुराण, वरुणपुराण, साम्बपुराण, कालिकापुराण, महेश्वरपुराण, देवपुराण, पराशरपुराण, मारीचपुराण, तथा सूर्यपुराण, ये अष्टादश उपपुराण हैं ।

इन पूर्वोक्त छत्तीस पुराणोंके अतिरिक्त भी कल्कि पुराण आदि अनेक पुराण उपलब्ध हैं ।

पुराण-पुरातन हैं

वेदोंमें भी पुराणोंका नामोल्लेख मिलता है, अतः पुराण पुरातन हैं । जैसे—

अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम् ।

(शतपथ ब्राह्मण—बृहदारण्यक)

मन्त्र-ब्राह्मणात्मक, ऋक्, यजु, साम और अथर्व ये चार वेद, तथा इतिहास और पुराण, महापुरुष परमेश्वरसे निश्वासके समान अनायासही प्रकट हुए हैं ।

'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं ।
चतुर्थमितिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम् ।'

(छान्दोग्य—सामवेदीय)

नारदजी भगवान् सनत्कुमारके प्रति कहते हैं—मैं ऋग्यजुः साम और अथर्ववेदको जानता हूँ, और पांचवा वेद *महाभारतादि इतिहास तथा पुराण भी जानता हूँ ।

'एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वयाख्याताः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्यास्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानां भिद्यते नामधेयं यज्ञमित्येवाचक्षते ।'

[गोपथब्राह्मण]

इस मन्त्रमें ब्राह्मण, उपनिषद्, निरुक्त, कल्प, इतिहास, पुराण, आदिके पृथक् पृथक् नामोंका उल्लेख किया गया है । जिससे 'वेदके ब्राह्मणभागका नाम ही पुराण है' ऐसी आर्य समाजकी मिथ्या कल्पना, खण्डित हो जाती है, और यह प्रमाणित होता है कि—ब्राह्मण भागसे भी अतिरिक्त पुराण ग्रन्थ हैं ।

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत् तमितिहासश्च पुराणञ्च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् इतिहासस्य च वै सपुराणस्य च गाथानाञ्च नाराशंसीनाञ्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।

[अथर्ववेद संहिता]

इससे यह सिद्ध होता है कि- वेदके संहिता भाग में भी पुराणका नामोल्लेख है ।

वैदिक भावोंका ही विशद वर्णन पुराणोंमें पाये जाते हैं। अतः पुराण-वर्णित चरित्र, वेद सम्मत है।

वेदोंके कुछ मन्त्र, तथा पुराणोंके कुछ श्लोक उद्धृत कर अपने प्रेमी पाठकोंको यह बतलाया जाता है कि—पुराणोंके अवतार चरित्र आदि, वैदिक-मन्त्रोंके अनुसार ही हैं ।

वामनावतार

प्राचीन कालमें दानव बड़े बलवान् एवं उद्धत थे, इसलिये दानवपति-बलिराज, देवराज इन्द्रका ऐश्वर्य पानेके लिए यत्नकर रहा था, अतः तामसी दानव लोग सात्त्विक देवोंको बड़ा कष्ट पहुँचाते थे। तब देवप्रार्थित भगवान् विष्णुने वामनरूप धारणकर अपने दिव्य-चमत्कारसे राजा बलिको अभिभूत किया, तथा देवोंको

* वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ।'

निर्णय किया। भगवान्के इस वामनावतारका वर्णन, ऋग्वेद संहिता, तथा शतपथ ब्राह्मणमें संक्षेपसे इसप्रकार मिलता है—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥
[ऋग्वेदसंहिता १।१५४।१]

जिस भगवान्‌ने अपने तीन पैरसे सत्यलोक पर्यन्त सभी लोकोंको नाप डाला था, उस भगवान् विष्णुके दिव्य-पराक्रमोंको पूर्णरूपसे कौन कह सकता है? चाहे वह तमाम पृथिवीके रजः कणोंकी गणना करनेमें समर्थ भी क्यों न हो * अतएव भगवान उरुगाय हैं, अर्थात् उनकी विपुलकीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त है।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्,
सम्मूढमस्य पांसुले।
त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः,
अतो धर्म्माणि धारयन्॥
(सामवेद संहिता ३।१।३।९)

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण, मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥
(शुक्लयजुर्वेदसंहिता०)
[कृष्णयजुर्वेदतृतीयब्राह्मण० २।४।३]

देवाश्च वा असुराश्च। उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे ततो देवा अनुव्यमिवासुरथ हासुरा मेनिरेऽस्माकमेवेदं खलु भुवनमिति। ....ते (देवा) यज्ञमेव विष्णुं पुरस्कृत्येयु। ते होचुः। अनुनोऽस्यां पृथिव्यामाभजतास्त्वेव नोऽप्यस्यां भाग इति। ते हासुरा असूयन्त इवोचुर्याव-देवैष विष्णुरभिशेते तावद्वो दद्मः। वामनो ह विष्णुरास।'
(शतपथ ब्राह्मण)

इसप्रकार पूर्वोक्त वेदमन्त्रोंमें संक्षिप्तरूपसे वर्णित इस वामनावतारके दिव्य चरित्रको पुराणोंमें किस प्रकार विशदरूपसे विस्तारके साथ प्रकट किया है। वह श्री-मद्भागवतके कुछ श्लोक उद्धृतकर यहां बतलाया जाता है। यद्यपि संहितामें तथा शतपथब्राह्मणमें जो चरित्र कुछ पंक्तियोंमें ही वर्णित है, वही चरित्र श्रीमद्भागवतमें ३०० से भी अधिक श्लोकोंमें विशदरूपसे वर्णित है। वर्णनशैलीके भेदसे कथाका प्रकार भेद अवश्य प्रतीत हो सकता है, परन्तु अवतार विषयक दिव्य-चमत्कारका वर्णन एक-सा ही है।

मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम्।
जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम्॥
प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः।
प्रत्यगृह्णन्समुत्थाय, संक्षिप्तास्तस्य तेजसा॥
[भा ८।१८।२४-२५]

मौञ्जी मेखला तथा, उपवीत और मृगचर्मरूप उत्तरीय वस्त्र धारण किये, जटायुक्त, मायासे वामन (छोटा) ब्राह्मण-बालक रूपधारी विष्णुभगवान्‌को यज्ञ-

[* उरुगायः = विपुलकीर्तिः, त्रेधा विचक्रमाणः = त्रेधा पादविन्यासं कुर्वाणः सधस्थं उत्तरं = सह स्थ सधादेशः तिष्ठन्तीति स्थाः देवादयः तत्रत्यै देवादिभिः सह वर्तमानमुत्तरं सत्यलोकं, अस्कभायत् = अवष्टब्धवान्]।

[विष्णुः = त्रिविक्रमावतारधारी, इदं = चतुर्दशभुवनात्मकं जगत्, विचक्रमे = विशेषण क्रमेण कृतवान्, निदधे = स्वीयं पादं स्थापयामास, अस्य = विष्णोः, पांसुले = धूलियुक्तपादे, संमूढं = सम्यक् अन्तर्भूतम्, अदाभ्यः = केनापि हिंसितुम-शक्यः, गोपाः रक्षकः, धर्म्माणि = अग्निहोत्रादीनि, धारयन् = प्रतिपादयन्]।

[तत् = तस्मिन्यज्ञादौ शुभकर्माणि, वीर्येण = दिव्यपराक्रमशालिचरित्रहेतुना, विष्णुः प्रस्तवते = प्रकर्षेण स्तूयते स्तावकैः। कुचरो = भूमौ वर्तमानः, भीमो = भयंकरः मृगः = सिंहः, न = इव, यथासिंहः उर्द्धमुन्नतप्लुत्य गिरिष्ठः = पर्वतस्थो भाति, तथा यस्य विष्णोः पूर्वं वामनस्य पश्चात्त्रिविक्रमत्वं गच्छत, ऊरुषु = विस्तीर्णेषु त्रिषु विक्रमणेषु विश्वा = सर्वे भुवनानि = लोकाः, अधिक्षियन्ति = आधिक्येन निवसन्ति, स विष्णुः स्तूयत इति पूर्वेणान्वयः]।

मण्डपमें प्रविष्ट देखकर उनके दिव्य-तेजसे अभिभूत हुए शिष्य सहित सभी भृगुगोत्री ऋषि और सभी अग्नि-देवता खड़े हुए और उनके सत्कारके लिये सन्मुख गये।

त्रिविक्रमैरिमाँल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति।
सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ! वर्तिष्यसे कथम्॥
क्रमतो गां पदैकेन, द्वितीयेन दिवं विभोः।
खं च कायेन महता, तार्तीयस्य कुतो गतिः॥

[भा ८।१९।३३।३४]

जिससमय ब्राह्मण वेषधारी वामन भगवान्‌को तीन पाद पृथिवी देनेकी प्रतिज्ञा राजा बलिने की, उस समय उसका गुरु शुक्राचार्य बलिको सावधान करता हुआ कहता है कि—रे बलि! यह साधारण ब्राह्मण बटु नहीं है, यह तो साक्षात् विष्णु ही मायासे बटुरूप धारण कर तेरे समीप तीन पैर पृथिवी लेनेके लिए आया है। यह विश्वरूप विष्णुभगवान् अपने तीनों पैरोंसे इन सभी लोकोंको नाप लेंगे, रे मूढ! जब तू अपना सर्वस्व विष्णु को दे देगा, तब तेरा निर्वाह कसे होगा? और जब यह विष्णु एक पैरसे समग्र पृथिवीको दूसरे पैरसे समग्र स्वर्गको तथा अपने विशाल शरीरसे समग्र आकाशको नाप लेंगे, तब तीसरे पैरकी क्या गति होगी? अर्थात् तीसरे पैरके लिए—जब तेरे पास कुछ रहेगा ही नहीं—तब क्या देगा? नहीं देनेसे तेरी दान-प्रतिज्ञा व्यर्थ होगी।

तद्वामनं रूपमवर्धताद्भुतं,
हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम्।
भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधयः,
तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत॥२१॥
काये बलिस्तस्य महाविभूतेः,
सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत्।
ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके,
भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम्॥२२॥

रसामचष्टाङ्घ्रितलेऽथ पादयो—
र्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जङ्घयोः।
पतत्त्रिणो जानुनि विश्वमूर्ते—
रूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः॥२३॥
संध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्,
प्रजापतीञ्जघने आत्ममुख्यान्।
नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धू—
नुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम्॥२४॥
हृद्यङ्ग धर्मं स्तनयोर्मुरारे—
र्ऋतं च सत्यं च मनस्यथेन्दुम्।
श्रियं च वक्षस्यरविन्दहस्तां,
कण्ठे च सामानि समस्तरेफान्॥२५॥
इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु,
तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि।
केशेषु मेघान् श्वसनं नासिकाया—
मक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम्॥२६॥
वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं,
भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु।
अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो,
मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम्॥२७॥
स्पर्शे च कामं नृप! रेतसोऽम्भः,
पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम्।
छायासु मृत्युं हसिते च मायां,
तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च॥२८॥
नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु,
बुद्धावजं देवगणानृषींश्च।
प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि,
सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः॥२९॥
सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य,
सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरङ्ग।
सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो,
धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम्॥३०॥

पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः,
कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ।
विद्याधरोऽसि शतचक्रयुक्त-
स्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥३१॥
सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशं,
पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः ।
स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डल-
श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥३२॥
मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो,
रराज राजन्भगवानुरुक्रमः ।
क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे,
नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥३३॥
पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं,
न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ।
उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो,
महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥३४॥
[भा० स्कं० ८। अ० २०]

राजा बलिको तीनपाद भूमिके लिये संकल्प करकेने साथ ही, अनन्त हरिभगवानका वह गुणत्रयात्मक वामनस्वरूप अद्भुत रीतिसे बढ़ने लगा, बढ़कर वह इतना अपरिमित विशाल हुआ कि-जिसमें पृथिवी,आकाश दिशाएँ, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि ये सब अच्छी तरह समागये थे।' उस महा-विभूतिवाले भगवान्के गुणमय शरीरमें ऋत्विज, आचार्य एवं सभासदसे युक्त, तथा पञ्चमहाभूत, इन्द्रियां, विषय, अन्तःकरण और जीवोंसे युक्त, इस त्रिगुणात्मक जगत्को राजाबलिने देखा।' राजाबलि, उस विराट् पुरुष भगवान्के चरणतलमें पाताल, चरणोंमें पृथिवी, जंघाओंमें पर्वत, घुटनोंमें पक्षीगण, और उरुओंमें पवनगणको देखा विशालपाद—विन्याससे समस्त विश्वको आक्रमण करने वाले उस विभु—भगवान्के वस्त्रमें संध्या, गुह्यस्थलमें प्रजापति, जघनमें आत्ममुख्य यानी बलि आदि दैत्य, नाभिमें आकाश, कुक्षिमें सात समुद्र, और वक्षः स्थलमें नक्षत्र-माला देखा। उस मुरारि भगवान्के हृदयमें धर्म, स्तनोंमें ऋत एवं सत्य, मनमें चन्द्रमा, वक्षःस्थलमें कमलहस्ता लक्ष्मी और कण्ठमें सामवेद एवं उसके शब्दोंको देखा। परमपुरुष भगवान्की भुजाओंमें इन्द्र आदि देवगण, कान में दिशाएँ, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघगण, नासिकामें श्वास, नेत्र में सूर्य, मुखमें अग्नि, वाणीमें गायत्री आदि छन्द, रसना (जिह्वा) में वरुण देवता, भृकुटिमें विधि और निषेध, पलकोंमें रात्रि एवं दिन, ललाटमें क्रोध, अधरमें (ओठ) में लोभ, त्वक् इन्द्रियमें काम, शुक्र (वीर्य) में जल, पीठमें अधर्म, पाद-विन्यासमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हास्यमें माया और रोमावलिमें सकल औषधियाँ देखा।' वह वीर राजा बलि भगवान्की नाडियोंमें गंगा आदि नदियाँ, नखोंमें शिलाएँ, बुद्धिमें ब्रह्मा, प्राणोंमें देवगण एवं ऋषिगण, तथा सकल अङ्गोंमें चराचर सकल भूत प्राणियोंको देखा। सर्वात्मा सर्वमय भगवान्के स्वरूपमें इस सकल विश्वको देखकर सभी दैत्य अचेत हो गये, और असह्यतेजवाला सुदर्शन चक्र, विद्युत्के समान तीव्र शब्दवाला शार्ङ्गधनुष, मेघ के समान गम्भीर घोष करनेवाला, समुद्रसे उत्पन्न, पाञ्चजन्य नामका शंख, बड़ी तेजीसे चलने फिरनेवाली कौमोदकी नामकी गदा, सौ चन्द्रकी शोभावाला विद्याधरनामका खड्ग, अक्षय बाण वाले उत्तम दो तरकस, और इन्द्रवरुणादि लोकपालोंके सहित, सुनन्द, नन्द आदि मुख्य पार्षद, बृहत्रूपधारी भगवान् विष्णुके समीप आकर उपस्थित हुए। उस समय भगवान् त्रिविक्रम किरीट, बाजूबंद एवं मकराकृत कुण्डलोंसे जगमगा रहे थे, और श्रीवत्सका चिह्न, कौस्तुभमणि, कटिमेखला, सुन्दर पीत वस्त्र, तथा भ्रमर जिनमें लोलुप रहते

हैं—ऐसे पुष्पोंसे युक्त वनमालासे, वामन भगवान् अतीव सुशोभित हो रहे थे। वामन भगवान्ने राजा बलिकी समग्र पृथ्वी एक पैरसे नापली, विशाल शरीरसे समस्त आकाश और हाथोंसे समस्त दिशाएँ नाप लीं, तथा द्वितीय पैरसे समस्त स्वर्ग नाप लिया, अब तृतीय पैर के लिए राजा बलिके पास कुछ भी न बचा, और उरुक्रम भगवानका द्वितीय पैर ऊपरकी तरफ इतना फैलकर बढा कि—वह महर्लोक, जनलोक, एवं तपलोकसेभी परे चला गया।

वराहावतार

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहितामें वराहावतारका वर्णन संक्षेपसे इस प्रकार है—

आपो वै इदमग्रे सलिलमासीत्। तस्मिन्प्रजापति-र्वायुर्भूत्वाऽचरत्। स इमामपश्यत्। तां वराहो भूत्वा आहरत्।

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें यही चरित्र इस प्रकार है—

'आपो वै इदमग्रे सलिलमासीत्। तेन प्रजापतिर-श्राम्यत् कथमिदं स्यादिति। सोऽपश्यत्पुष्करपर्णं तिष्ठत्। सोऽमन्यत अस्ति वै तद् यस्मिन्निदमधितिष्ठ तीति। स वराहो रूपं कृत्वा उपन्यमज्जत्। स पृथिवीमध आर्च्छत्। तस्या उपहत्य उदमज्जत्।'

यही भाव शतपथ ब्राह्मणमें इसप्रकार कहा है—

'इयती ह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री ता मे मूष इति वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिःप्रजापतिः।'

यही वैदिक-वराहावतारका वर्णन, श्रीमद्भागवत पुराणमें विशदरूपसे विस्तारके साथ किया है, अतः जो अर्वाचीन, शास्त्रविचार शून्य, कतिपय अविवेकी लोग पुराण प्रतिपादित—चरित्रोंमें अवैदिकत्वका एव कवि-कपोलकल्पनाका आरोप करते हैं, उनकी भ्रमात्मक अनभिज्ञता स्पष्ट हो जाय तथा अपने प्रेमी पाठकोंको वेद और पुराणोंके चरित्रोंका सामञ्जस्य विदित होजाय इसलिये भागवत पुराणके कुछ पद्योंको उद्धृतकर यहाँ वह विशद चरित्र बतलाया जाता है—

इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसानघ।
वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥१८॥
तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत।
गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥१९॥

(भा० ३। अ० १३)

जलनिमग्ना पृथिवीका उद्धार कैसे हो? इसप्रकार विचार करनेवाले ब्रह्माजीकी नासिकाके छिद्रसे सहसा अंगूष्ठ—परिमित एक वराह-शिशु निकल पड़ा। वह ब्रह्माजीके देखत-देखते एक ही क्षणमें विशाल हस्तीके समान बड़ा हो गया, यह एक महान् आश्चर्यकी घटना हुई।

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः।
तत्रापि दैत्यं गदया पतन्तं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्यु ॥३१॥
जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं स लीलयेभं मृगराडिवाम्भसि।
तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो, यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन् ॥३२॥

(भा० ३। अ० १३)

उस जलनिमग्ना पृथ्वीको अपने दांतसे उठाकर बाहर निकालते हुए वराह-रूपधारी भगवान् हरि अतीव शोभा देते थे। उस समय वहां हाथमें गदा लेकर आते हुए और रोकते हुए, असह्य पराक्रमवाले हिरण्याक्ष नामक दैत्यका—जैसे मृगराज (सिंह) गजराज (हाथी) का संहार करे—तैसे सुदर्शनचक्रके साथ अतीव देदीप्यमान, तीव्र क्रोधयुक्त, हरिभगवान्ने अनायाससे जलके भीतर वध किया, उससमय वराह-भगवान्के गण्डस्थल और तुण्ड उस दैत्यके रक्तरूपी कीचड़से लथ पथ हो रहे थे। जैसे गजराज पृथ्वीका भेदनकर शोभित होता है, वैसे ही उससे भगवान् शोभित हो रहे थे।

उस समय भगवान्‌के दर्शनार्थी ऋषिगण वहां आकर वराहरूपधारी भगवान्‌के दिव्य महामहिम चरित्र को निम्नलिखित श्लोकोंसे स्तुतिके मिषसे वर्णन करने लगे—

नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवता—
द्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावित—
ज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥ ३९ ॥
दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता,
विराजते भूधर भूः सभूधरा।
यथा वनान्निःसरतो दता धृता,
मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥ ४० ॥
त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं,
भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा,
कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥ ४१ ॥
संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां,
लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता।
विधेम चास्यै नमसा सह त्वया,
यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥४२॥
कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो,
रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ॥
न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये,
यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥ ४३ ॥
[भा० स्क० ३। अ० १३]

सकल मन्त्र, देवता एवं द्रव्यरूप, सकल यज्ञरूप, तथा सकल क्रियारूप आपको हम बार बार प्रणाम करते हैं। वैराग्य एवं भक्तिके द्वारा होनेवाले अन्तःकरणके विजयसे जिस भगवान्‌का यथार्थ ज्ञान होता है, उस विद्यागुरु आप (भगवान्) को हमारा बार बार प्रणाम है। हे! भूधर! भगवन्! डाढ़की अग्रकोटीमें आपसे धारणकी हुई यह पर्वतों सहित पृथिवी, जैसे जलसे बाहर निकलते हुए गजराजके दांत पर धरी हुई पत्र सहित कमलिनी सुशोभित हो—वैसे—शोभा देती है। वेदत्रयीमय यह आपका वराहरूप दांतमें भूमण्डलके धारण करनेसे वैसा शोभित होता है कि—जैसे कुलाचल पर्वतके शिखर पर बैठा हुआ सघन बादल शोभित हो। हे भगवन्! आप स्थावर जङ्गमात्मक सकल विश्वके पिता हैं, अतः यह पृथिवी देवी आपकी पत्नी है, और सकल विश्वकी माता है, इसलिए इस पृथ्वीको सभी लोकोंके निवासार्थ जलके ऊपर स्थापन करो, जैसे अरणिमें अग्नि वर्तमान है, तद्वत् इस पृथिवीमें आपका ही दिव्य तेज वर्तमान है, अतः हम सब, आप पिताको तथा पृथिवीमाताको नमस्कार करते हैं। हे प्रभो! आपके सिवाय ऐसा और कौन समर्थ है? कि—जो पातालमें गयी हुई पृथ्वीको वापिस बाहर लानेकी सामर्थ्य रखता हो। और आपमें इस बातका कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि—जिस आपने अपनी माया शक्तिसे अतिआश्चर्य रूप समस्त जगत्‌को उत्पन्न किया है, उस आपमें सभी आश्चर्य रह सकते हैं।

सत्संग-महत्व

बड़े भाग पाइय सत्संगा, बिनहिं प्रयास होय भव भंगा।
बिनु सत्संग विवेक न होई, राम-कृपा बिनु सुलभ न सोई।
पुण्य पुञ्ज बिनु मिलें न सन्ता, सत्संगति-संसृतिन कर अन्ता। (गो० तु०)

जन्मसिद्ध मानवधर्म

(लेखक—स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज वैद्यराज-योगीराज)

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततोरात्रिरजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥
[ऋग्वेद १०-१९०-१]

ऋत (मानसिक यथार्थ संकल्परूप धर्म) सत्य (वाणीका यथार्थ भाषणरूप धर्म) और अन्य शास्त्रीय धर्म, ये सब तपके यानी स्रष्टव्य संसारके पर्यालोचन के पश्चात् प्रकाशमान परमेश्वरसे उत्पन्न हुए हैं। उस परमेश्वरसे ही रात्रि और दिनकी उत्पत्ति हुई हैं। तथा क्षारयुक्त जलवाला समुद्र भी उससे ही हुआ है। समुद्र के पश्चात् संवत्सर उपलक्षित कालकी उत्पत्ति हुई। जगत्स्रष्टा परमेश्वरने ही अहोरात्र और कालके अन्य सब अवयवोंकी रचनाकी है। जिससे निमेषोन्मेषादि-युक्त सब प्राणियोंकी सृष्टिका स्वामी, बनकर वह रहता है। और उसी धाताने पूर्व कल्पके पदार्थोंके अनुरूप सूर्य, चन्द्र, स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष इत्यादि लोक और स्वर्गके भोग विशेषादिको अपने संकल्पसे निर्माण किया है।

इस मन्त्रसे जाना जाता है, कि—पूर्व कल्पके समान इस सृष्टिको धाताने बनाई है। साथ साथ ऋत सत्यादि मानव धर्म भी उत्पन्न किये हैं। उसे इस संसारचक्रको नियमित चलानेमें भी सर्वदा श्रम नहीं लेना पड़ता, न वार-वार लक्ष्य देनेकी आवश्यकता रहती है। युगारंभमें किये हुए दृढ़ संकल्पके अनुसार प्रलय पर्यन्त संसारचक्र स्वयमेव चलता रहे, इसलिये साथ-साथ धर्मके नियमोंका भी निर्माण किया है।

इतर सब जातिके प्राणियोंकी उत्पत्ति या चराचर सृष्टिकी उत्पत्तिके समान मनुष्य सृष्टिको भी प्रकाशमान परमेश्वरने उत्पन्नकी है। इतर सब सृष्टि पहले हुई, और मानव सृष्टि पश्चात् हुई है, ऐसा ऐतरेयोपनिषद्के द्वितीयखण्डमें कहा है। तथा श्रीमद्भागवतमें भी कहा है—

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या।
वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान्॥
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्माव-।
बोधधिषणं मुदमाप देवः॥

श्री नारायणभगवान्‌ने अपनी अनादि अनिर्वचनीय माया द्वारा वृक्ष, पेटसे चलनेवाले सर्पादि, पशु, पक्षी, मच्छर, मत्स्यादि नानाप्रकारके पुरों (शरीरों) को निर्माण करने पर भी उन सब जीवोंसे उन्हें तृप्ति नहीं हुई, अतः उन्होंने ब्रह्मका बोध हो सके ऐसी बुद्धिवाले मनुष्य सृष्टिकी रचना की। इस सृष्टिके निर्माणसे परमेश्वर प्रसन्न हुआ।

एवं आधुनिक विज्ञानशास्त्र भी ;मनुष्य सृष्टिकी उत्पत्ति इतर समस्त सृष्टिके पश्चात् हुई है, ऐसा कहता है।

जैसे इतर प्राणियोंकी सृष्टिके साथ जन्मसिद्ध प्राणीधर्म रहा है, वैसे ही मनुष्यके साथ मानव धर्म रहा है। मानव धर्म मनुष्य जीवनके महत्वका अंग है. या मनुष्योंका प्राण ही है। मनुष्य स्वभावका निरीक्षण करने पर विदित होता है कि—मनुष्य स्वभाव केवल स्वार्थ परायण नहीं है। मनुष्यके अन्तःकरणमें स्वार्थके संस्कारोंके साथ भूतदया, प्रीति, कृतज्ञतादि सद्‌गुणोंके संस्कार भी न्युनाधिक अंशमें जन्मतः ही रहे हैं। इसी हेतुसे विचारवान् मनुष्य किसी भी व्यव-

हारिक कर्तव्यका नैतिक दृष्टिसे विचार करने पर केवल क्षुद्रस्वार्थी या दूरदर्शी स्वार्थकी ओर नहीं देखते हैं, किन्तु मानव स्वभावकी दो नैसर्गिक प्रवृत्ति स्वार्थ-मयी और परार्थमयी, इन दोनोंकी ओर सर्वदा लक्ष्य देते हैं। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी विद्वान् एडमन्डबर्कने भी कहा है, कि मनुष्य धार्मिक प्राणी है (Man is a Religion animal)। अतएव मनुष्यके मनमें शारीरिक सुखकी अपेक्षा बुद्धिग्राह्य आत्मसुखकी जिज्ञासा अधिकतर रहती है। इसी हेतुसे नितान्त-स्वार्थी बनना, यह मनुष्य स्वभावमें कदापि नहीं आ सकेगा।

परन्तु अनेक मतिमन्द नास्तिकोंको पशुजीवनके प्रबल संस्कारोंके कारण आत्माकी नित्यता और पार-लौकिक कल्याणकी सत्यतामें विश्वास नहीं होता। जिससे क्षुद्र या स्वार्थ बुद्धिके वशीभूत होकर अपने सब कर्तव्यको करते हैं। यह रीति उनके लिये हानिकर है। किं बहुना समस्त संसारके लिये भी दुःख दायी है। इन नास्तिकोंकी स्वार्थ वृत्तिका इतना अयोग्य परिमाणमें विकास होता है, कि जन्मसिद्ध दया, प्रीति, कृतज्ञतादि परार्थ वृत्ति बहुधा नष्ट हो जाती है; या स्वार्थमिश्रित होकर मलिन हो जाती है।

इनकी शुभवृति कदापि विकसित नहीं होती।

ये लोग केवल वर्तमान संसारको ही मानकर, धर्म का त्याग करके अपने स्वार्थप्रचुर व्यवहारको पकड़ रक्खते हैं, जिससे उनके हृदयका शोधन कदापि नहीं होता। ऐसे मलीन मतिवाले परहितके निमित्त कर्म करते हैं; यदि अपना भावी स्वार्थ रहा हो तो इन लोगोंसे जन्मसिद्ध निःस्वार्थ भावनाका उच्छेद हो जाता है, या आवृत हो जाती है। इसलिये इनको जन्मसिद्ध मानव धर्मका दर्शन नहीं होता। जैसे कामला रोगी सब श्वेत वस्तुओंको भी पीत रंग युक्त देखता है; वैसे इन नास्तिकोंको संसार स्वार्थमय ही दिखता है। और दृष्टि दोषके कारण जैसे काच विन्दु का रोगी सूर्य के प्रखर तापमें भी जगत् के बाह्य पदार्थों-को नहीं देख सकता; वैसे इन नास्तिकों की सद्भावना पर नास्तिक ताका आवरण आजानेसे इन लोगोंको जन्मसिद्ध धर्म का दर्शन नहीं होता।

उद्भिज अंडज, और स्वदेज योनि के क्षुद्र जीवोंको ज्ञानेन्द्रिय भी बहुत कम मिली है या अविकसित स्थितिमें रहगई हैं। परंतु अन्य योनिके पशुशरीरोंके अवयव और मनुष्य शरीरांतर्गत अवयवोंकी रचनामें आकार भेदके अतिरिक्त अन्य अंतर नहीं है। दोनोंके अवयव प्रायः समान हैं। तदपि सूक्ष्म अवलो-कन करने पर एक महान् अंतर प्रतीत होता है। मनुष्यबुद्धिमें तर्कशक्ति और विवेकशक्ति और विवेक का विकास, सृष्टि स्थितिनिमित्त स्वार्थ-त्याग का ज्ञान और निःस्वार्थ भावना पूर्वक परोपकार इतर जीवोंसे अधिकतर है सुतरां मनुष्य की श्रेष्ठता विषयक मनु महाराज और नीतीका भर्तृहरिने भी लिखा है, कि:—

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराःश्रेष्ठाः, नरेषु ब्राह्मणःस्मृताः॥

(म. स्मृ० १-९६)

आहार निद्रा भयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहि तेपामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

(नीतिशतक)

जड़वर्गकी अपेक्षा चेतन जीव श्रेष्ठ हैं। इन चेतनों में बुद्धिवाले प्राणी श्रेष्ठ हैं। तथा बुद्धियुक्त प्राणियोंकी अपेक्षा भी मनुष्य श्रेष्ठ हैं।

आहार, निद्रा, भय और मैथुन, इन विषयोंकी प्राप्ति अथवा इन विषय जनित सुख, पशु और मनुष्य दोनोंको समान है। परन्तु मनुष्योंमें धर्म एवं कर्तव्याकर्तव्य ज्ञान, पशुओंकी अपेक्षा अधिक है। यह दोनोंमें अन्तर है। यदि मनुष्य भी मनुष्य जन्मको पाकर सदाचार

समाज—सेवा और विश्वकल्याणके लिये स्वार्थ त्याग रूप धर्माचरण न करे तो ऐसे स्वार्थी मनुष्य पशु तुल्यही कहे जा सकते हैं।

इन वचनोंसे जाना जाता है कि—मनुष्यकी महत्ता ज्ञानकी विलक्षणताके कारण मानी है। इतर प्राणी-सृष्टिमें भी ज्ञानेन्द्रिय, स्मरण शक्ति, तर्कशक्ति, विचार-शक्ति, एवं विवेक शक्ति अवश्य है, फिर भी मनुष्यकी ज्ञानशक्तिमें विलक्षणता है। मानव बुद्धि, दैवी संपत्ति-रूप मनोवृत्तियोंका यथोचित विकास, मानसिक प्रगति, सत्यासत्यका निर्णय, नीति-अनीतिका विचार, सदाचार पालन, और कर्तव्योंके भावी शुभाशुभ फलोंका निर्णय, इत्यादि यथावत् कर सकती है। पशुबुद्धि नहीं कर सकती।

'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मंदोऽपि प्रवर्तते।' इस वचनके अनुसार सदाचार फलके विचार किये बिना मन्दमति मनुष्य भी कार्यमें प्रवृत्त नहीं होता, प्रत्येक कार्यके लिये विवेक कर सकते हैं, परन्तु पशुओंमें यह विवेक बुद्धि विकासको प्राप्त नहीं हुई है। निःस्वार्थ भावसे सेवा करनेकी बुद्धि पशुओंमें विकसित नहीं है। इस ज्ञानकी श्रेष्ठताके कारणसेही पशुधर्मकी अपेक्षा मनुष्यके जन्मसिद्ध धर्म उच्च कोटिका माना गया है।

जैसे तिर्यक् योनिके जीवमें स्वाभाविक संतति प्रेम रहता है, वैसे मनुष्योंमें भी अपत्य-प्रेम, शान्ति और पूज्य सेवा जन्मसिद्ध है। माता पिता अपने सन्तानों पर स्नेह रखते हैं, और संतति रक्षणके लिये विविध प्रकारके कष्ट भी उठाते हैं। बालक भी अपने पूज्योंके प्रति प्रीति और श्रद्धा रखते हैं। युवापुत्र अपने वयोवृद्ध माता-पिताकी सेवा सप्रेम करता है। इस परस्पर प्रेमका कारण ईश्वरप्रदत्त धर्म है। इस जन्म सिद्ध सेवा-धर्ममें दूसरोंकी शिक्षाकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। किसी नालायक पशुप्रवृत्ति वाले नरपशुके लिए शिक्षाकी जरूरत है। यदि हम संसारसे संतति स्नेह नष्ट हो जाय, तो जीव सृष्टिका ही समूल उच्छेद हो जा सकता है। पूज्योंकी सेवा करना, रूप धर्मको संसारमें नष्ट कर दिया जाय, तो संतति स्नेहभी अदृश्य हो जायगा। अतः निश्चय होता है कि-मनुष्योंमें जो सेवा और भक्तिरूप धर्म प्रतीत है, वह जन्मसिद्ध है।

मनुष्य अपने सम्बन्धी और परिचित वर्गमें प्रेम निभानेके लिये कोशिश करता है। मरणके मुखमें प्रवेश करनेकी तैयारी हो रही है, ऐसे अन्तकालमें भी बगीचेका मालिक बगीचा, और फलवाले वृक्ष, भावी प्रजाके हितके लिये लगाता है। किसी ग्राममें डाकू अथवा सिंह व्याघ्रादि हिंसक पशुके आक्रमण होने पर मनुष्य अपने जीवन की परवाह न करके भी ग्राम रक्षाके लिये दौड़ जाते हैं। देश पर आपत्ति आने पर क्षात्रवृत्तिवाले वीर अपने प्राणोंकी आहुति दे देते हैं। दुष्काल, भूकम्प या अग्नि प्रकाण्डादि उपद्रवके समय निःस्वार्थ भावसे बिना प्रेरणा जनताकी रक्षाके लिये धनिक लोग अपने धनका उदारपूर्वक त्याग करते हैं। अनेक ब्राह्मण सांसारिक विषयोंके भोगकी लालसाको छोड़कर निष्काम भावसे विश्वके ज्ञानकी वृद्धिके लिये उग्र तपश्चर्या करते हैं। ये सब कर्तव्य ईश्वरदत्त धर्मके कारणसे ही होते हैं।

यदि युगारम्भमें जन्मसिद्ध मानव धर्म न रहता, तो मानव समाज कदापि उन्नतिको प्राप्त नहीं होता। और मनुष्य भावी प्रजाके कल्याण, परोपकार या विश्व व्यवस्थाके निमित्त कदापि कर्तव्य नहीं कर सकते। यदि धर्मका अभाव हो, तो मनुष्य वनचर पशुओंके समान क्रूर, स्वार्थी, और उदरंभरी ही रह जाते। वर्तमान समयमें अनेक देशोंमें असभ्य जंगली लोग रहते हैं, उनमें और प्राचीन से प्राचीन भूतकालके असभ्य मनुष्योंमें भी किसी न किसी स्वरूपमें मानवधर्म दृष्टिगोचर होता है।

इस संसारमें प्राचीन ग्रन्थोंमें वेद प्राचीनतम है।

वेदोंके आश्विनादि सूक्तोंकी भाषा भी अतिप्राचीन है। वेदोंमें युगारम्भ से पहले प्रलय होनेका वर्णन तथा पूर्व कल्पका इतिहास भी है। धर्मकी रचना अमुक हेतुसे अमुक कालमें अमुक ऋषिने की, इससे पहले संसारमें धर्म नहीं था, मनुष्य हिंसक पशुके समान क्षुद्र वृत्तिवाले थे, ऐसा विवेचन वेदोंमें कहीं भी नहीं मिलता। इससे विरुद्ध सत्ययुगमें जनता पूर्ण दैवीसम्पत्तियुक्त गुणवाली थी। मनसा, वाचा, कर्मणा अधर्माचरण प्रायः नहीं करते थे। सांप्रत की शठता का विचार, सत्युगके शठ से शठ कहलाने वाले मनुष्य में भी नहीं था। सत्य, सदाचार, दान, उपासनादिके अनेक आदर्श उदाहरण वेदोंके ब्राह्मणभागमें मिलते हैं। ब्राह्मण-भागमें वंशवर्णन लिखा है। उससे धर्म, युगारम्भसे ही प्रवर्तित हुआ है। और ऋषियोंकी परम्परासे सृष्टि में अधिकारी वर्ग द्वारा चारों ओर फैल गया है, ऐसा निश्चय होता है।

छान्दोग्यश्रुतिके चतुर्थ अध्यायके चतुर्थ खण्डमें सत्यकाम जाबाल नामक एक सप्तवर्षीय आयुवाले बालक की कथा है। वह विद्याध्ययनके लिये गुरुकुलमें जानेके समय अपनी माताको पूंछता है कि—माता! गुरुजी को अपने गोत्रका नाम क्या कहूं? माताने प्रत्युत्तर दिया, प्रिय पुत्र! तू कौन से गोत्र का है? यह तो मैं भी नहीं जानती। मैं युवावस्थामें तेरे पिता की अतिप्रेमसे हरसमय परिचर्या करती थी, उस कालमें तेरा जन्म, और तेरे पिताका निधन हुआ। इसलिये तेरे गोत्रका मुझे पता नहीं है। मेरा नाम जाबाला है, और तेरा नाम सत्यकाम है। अतः गुरुके समक्ष मैं सत्यकाम जाबाल हूं, ऐसा कहना, इस सत्यकामने हारिद्रुमत गौतम ऋषिके चरणोंमें उपस्थित होकर—प्रणाम करके ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर शिष्य होनेके लिये प्रार्थना की। तब महर्षिने कहा—हे सौम्य! तेरा गोत्र क्या है? सत्यकामने नम्रता पूर्वक माताके कहे अनुसार सत्य प्रत्युत्तर दिया। इस सत्य एवं निर्भय प्रत्युत्तरके कारण महर्षिने अति प्रसन्न होकर कहा कि—

'नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति।
समिधंसोम्याऽऽहर उप त्वा नेष्ये न सत्यादगा'॥
(छां० उ० ४—४—५)

यह सरलता किसी अब्राह्मणमें विशेषतः नहीं होती है, सरल भाषण करना, और सत्यसे पतित न होना, इस कठिन व्रतमें तेरी दृढ़ता रहनेसे तू ब्राह्मण का ही बालक है; इसलिये समिध (काष्ठ) ले आ, मैं तेरा उपनयन संस्कार करता हूँ (प्राचीन कालमें दुराचारियोंके सन्तानोंको वेदाध्ययन नहीं कराते थे, इस हेतुसे प्रथम कुल विषयक प्रश्न करते थे। सत्यकाम के लिये भी सन्देह था कि—कुल-गोत्र-प्रवर-शाखादिके निर्णय किये विना विद्यादान मिलेगा या नहीं? ऐसी परीक्षाके समय पर भी सत्यकामने झूठा गोत्र दिखाकर सद्गुरुको छलनेका प्रयत्न नहीं किया था)।

इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मणमें हरिश्चन्द्र राजा की कथा है, उसमें हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितके स्थानमें शुनःशेप नामक ब्राह्मण बालक का बलिदान देनेका वर्णन लिखा है, विश्वामित्रने उस दरिद्र ब्राह्मण बालककी रक्षा करके उसे दत्तक लिया। दत्तक लेनेके समय विश्वामित्रके पुत्रोंके विरोध करने पर भी अपने सत्य धर्मका पालन करनेमें शिथिलता नहीं की।

छांदोग्य श्रुतिके पञ्चम अध्यायके तृतीय खण्डमें पञ्चालाधिपति प्रवाहण जैवलि और उद्दालक पुत्र श्वेतकेतुकी कथा है। राजा जैवलिने श्वेतकेतुको पारलौकिक विद्याके सम्बन्धमें पांच प्रश्न पूछे। उस समय में लोकदृष्टिसे श्वेतकेतु समर्थ विद्वान् माना जाता था, अतः इन प्रश्नोंका प्रत्युत्तर न देनेसे अपमान एवं अकीर्ति होगी, यह निर्विवाद था। फिर भी सरलता

पूर्वक सत्यधर्मकी रक्षा करते हुए स्वीकार कर लिया कि—इन प्रश्नोंमेंसे एक का भी मैं प्रत्युत्तर नहीं जानता हूँ।

प्रश्नोपनिषत्के षष्ट प्रश्नमें सुकेशा भारद्वाज नामक ब्रह्मचारीने अपने आचार्य पिप्पलादमहर्षिके समक्ष एक राजपुत्रसे अपमानित होनेका और अपने सत्यको दृढता पूर्वक पालन करनेका वृत्तान्त कहा है।

वृहदारण्योपनिषद्के द्वितीय अध्यायमें, काशी नरेश अजातशत्रु, और गार्ग्य बालाकिके सम्वादमें सत्यपालन का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। तृतीय अध्याय में महर्षि याज्ञवल्क्यके साथ अनेक महर्षि विद्वानोंका शास्त्रार्थ हुआ है, उसमें भी सत्य धर्मकी परीक्षाका वर्णन है, ऐसे-ऐसे अनेक आदर्श दृष्टान्त वेदोंमें मिलते हैं। यदि प्रथम सत्यधर्मका दृढता पूर्वक पालन न होता, तो समाज की कदापि वृद्धि या उन्नति नहीं होती। यदि धर्म ईश्वरदत्त न हो, मूर्खतावश प्रवर्तित हुआ हो, तो प्राचीन-कालमें मनुष्यको अपनी अपूर्णताको दूर करनेका, सामाजिक व्यवस्था और उन्नतिको प्राप्त करनेका, तथा पारमार्थिक कल्याण करनेका विचार कदापि नहीं आ सकता था। और विचारमें आये बिना आचरणमें भी नहीं आ सकता है। कवि कालिदासने शाकुन्तल नाटकमें कहा है—कि 'विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वा अनारम्भः प्रतिकारस्य' जब तक अपनी न्यूनता अथवा दोष यथार्थ रूपसे समझनेमें नहीं आते तब तक उनको दूर करनेके उपायोंका आरम्भ नहीं होता। अतः मानना पड़ेगा कि—ईश्वरदत्तज्ञान, और धर्मके कारणसे ही मानव समाज को उन्नति हुई है।

मनुष्य धर्मकी उत्पत्ति मनुष्य सृष्टिके आरम्भ होनेके साथ हुई है। ऐसा श्रुति और स्मृतिके बचनों से भी निश्चित होता है—

'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।'

(ऋ० १०।९०।१) (वाजनेयी संहिता ३१।१६)

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै

(श्वेता० उ० ६—१८)

'सहयज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः'।

(भ० गी० अ० ३।१०)

'अनुयज्ञं जगत्सर्वं यज्ञश्चानुजगत्सदा।'

(शान्ति पर्व २६७—४३)

प्राचीनयुगमें यज्ञकर्मकी प्रधानता थी। अतः मानवधर्मके स्थानमें यज्ञ शब्दका प्रयोग वेदोंमें हुआ है।

मिसर देश की प्राचीनकालकी समाजमर्यादाको समझाने वाला सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'पिरामीड टेक्स' (Phrad Texis) इसमें राजाओंकी मृत्युके पश्चात् क्या गति होती है ? यह लिखा है, जो धर्मकी प्राचीनतामें प्रमाण है, इसके अतिरिक्त मिसरके राजाओंकी प्राचीन वंशावली जो प्रचलित है, उससे निश्चित होता है कि—दश हजारसे अधिक वर्षोंसे मिसरमें राज-अमल चालू है। प्रसिद्ध काव्यकार होमरने इससे करीब ९०० वर्ष प्रथम दो काव्य लिखे हैं। उनमें मिसरकी थिबा नामकी राजधानीकी शोभाकी महिमा लिखी है। इस नगरीमें १०० द्वार थे, राजा और प्रजाके धर्मपालन का प्रेम कितना था, इस विषयकी भी खूब स्तुतिकी है। परन्तु धर्मकी मर्यादा अमुक कालमें अमुक राजा या धर्माध्यक्षने निर्माण की है, पहले संसारमें धर्म नहीं था, ऐसा वर्णन किसीभी ग्रन्थमें नहीं मिलता न और किसीने अभी तक युक्तिसे प्रतिपादन किया है।

अनेक जगली देशोंके साथ युरोपवासियोंका परिचय हुआ, तब उन्होंने उन देशोंके असभ्य समाज में भी धर्म और ईश्वरमें विश्वास प्रत्यक्ष देखा। धर्म की भावना किसी प्राचीनकालमें अकस्मात् नहीं हुई है। श्रद्धा स्वभावसिद्ध है। नास्तिक शिरोमणि भी श्रद्धाशून्य नहीं है। वे लोग ईश्वरके स्थानमें प्रकृति-कार्यमें श्रद्धान्वित है। परस्पर अनेक मनुष्योंमें श्रद्धा रखनी पड़ती है। बातोंमें तो श्रद्धाशून्यता चल सकती

है, परन्तु कार्यमें सर्वथा अश्रद्धालु रहना, ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

किसी अज्ञात भूतकालमें पेसिफिक महासागर महान् देश था। वर्तमान कालमें वह सबसे बड़ा महासागर है। इस महासागरके दक्षिण भागमे 'इस्टर आयर्लंड' नामक छोटा सा टापू है। वहां पर फ्रान्स और वेल्जियमके सन्शोधक ई० सन् १९३४ में गये थे। उन्होंने उस टापूमे एक विज्ञानमूर्ति देखी थी, जो ६० फीट ऊंची थी। ऐसे और स्थानोंमें भी भूकम्पादिके कारणोंसे अज्ञात भूतकालमे दबी हुई मूर्तियां निकली हैं। इससे प्राचीनसे प्राचीन भूतकालमें भी धर्मका अस्तित्व था, ऐसा सिद्ध होता है। ॐ शान्तिः॥

श्री श्री रामकृष्ण परमहंस देव

(श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ श्रीस्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज मण्डलेश्वरजीका भाषण)

सज्जनो! आज परम पवित्र दिवस है, जिसमें एक महापुरुषका जन्मोत्सव मनाया जा रहा है, आजहीके दिन श्रीमान् स्वामी रामकृष्ण परमहंसजीका जन्म हुआ था। ऐसे महापुरुषकी महिमाका गान कौन कर सकता है? वे साक्षात् भगवद्रूपही होते हैं। यदि विचार करके देखा जाय तो संसारिक तापत्रयसे तप्त जीवोंके लिये तो भगवान्से भी अधिक महापुरुषोंको जानना चाहिये। सांसारिक जीव भगवान्को नहीं देख पाते, भगवद् चरणोंमें उपस्थित होकर भगवान्की सेवा नहीं कर सकते, भगवान्के साक्षात् उपदेश नहीं ग्रहण कर सकते, भगवान्के प्रत्यक्ष आचरणों और व्यवहारोंको अपनी आखोंसे देखकर उनका अनुसरण नहीं कर सकते, परन्तु भगवान् जैसे अवतारी महापुरुष तो संसारी जीवों के सामने प्रत्यक्ष रहते हैं, और संसारीजीव अपने कल्याण के लिये महापुरुषकी सेवा भी कर सकते हैं। सभी लोग चाहें तो उनसे पूरा लाभ उठा सकते हैं। भगवान् हमारे नेत्रोंसे छिपे रहते हैं परन्तु महापुरुष प्रत्यक्ष मूर्तिमान् भगवान् हैं, यह बात गीतामें स्वयं भगवानने कही है—'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' मेरेमें और ज्ञानी महापुरुषों में कोई भेद नहीं है, इसी बातको नारदजीने भी कहा है—"तस्मिन्स्तज्जने भेदाभावात्"-भगवान्में और उनके भक्तोंमें कोई भेद नहीं है।

ऐसे महापुरुषोंके प्रकट होनेसे ही भगवान्की लीलाका जगत्में विस्तार होता है, जिस भूमि पर ऐसे महापुरुष प्रकट होते हैं, वह भूमि पवित्र हो जाती है, शास्त्रमें लिखा है—

'कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः"

जिस महापुरुषका चित्त पूर्णज्ञानरूप आनन्दमय परब्रह्ममें लीन हो गया है, उसका कुल पवित्र हो जाता है, माता कृतार्थ होती है, और उसी महापुरुषसे भूमि पवित्र होती है, जहाँ वे विचरते हैं, वह स्थल शुद्ध हो जाता है, जहां वे निवास करते हैं वहांका वायुमण्डल पवित्र हो जाता है, जिन स्थानोंमें वे भगवद् आराधना करते हैं, वे स्थान पापियोंको पावन करनेवाले तीर्थ बन जाते हैं, जिस ग्रन्थको वे पढ़ते हैं, वह जगत्का आदर्श धर्म ग्रन्थ बन जाता है, वे जो कुछ उपदेश करते हैं वही शास्त्र बन जाता है, वे जैसा आचरण करते हैं, वैसाही वहांके लोगोंका आचार बन जाता है, वे महापुरुष स्वयं तरने वाले और जगत्को तारनेवाले होते है, यह श्रीमद्भागवतमें भगवान्ने कहा है—

'यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम्।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा॥

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ।
सन्तो ब्रह्मविदःशान्ताःनौर्दृढेवाप्सुमज्जताम् ॥

जैसे अग्निका आश्रय लेने पर शीत भय और अन्धकार तीनोंका नाश हो जाता है, उसीप्रकार साधु महापुरुषोंके सेवनसे पाप, सांसारिक जन्मादि भय, और अज्ञान आदि नष्ट हो जाते हैं। जलमें डूबते हुए मनुष्यों को जैसे नौका पार उतार देती है, वैसे ही इस भयानक संसार समुद्रमें गोते खाते हुए मनुष्योंके लिये ब्रह्मज्ञानी और शान्तचित्त महापुरुष परम अवलम्बन होते हैं। ऐसे महापुरुषोंके संगसे जीवकी उन्नति होती है, शास्त्रमें लिखा है–

महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः ।
पद्मपत्रेस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ॥

जैसे कमल पत्रके सम्बन्धसे जल मोतीकी शोभा को प्राप्त होता है, इसीप्रकार महापुरुषके सम्बन्धसे जीव उन्नतिको प्राप्त होता है; महापुरुषके सम्बन्धसे जीवकी चार प्रकारसे उन्नति होती है–शारीरिक उन्नति, मानस उन्नति, बुद्धिकी उन्नति और आत्म उन्नति। सत्पुरुषके संगसे ब्रह्म चर्यादि पालन द्वारा सदाचारी बनकर जीव शारीरिक उन्नतिको प्राप्त हो जाता है। महापुरुषके सत्संगमे आसुरी सम्पत्तिके त्याग द्वारा शमादि दैवी संपत्तिके ग्रहणसे मानस उन्नतिको प्राप्त होता है। महापुरुषके उपदशसे विवेकोत्पत्ति द्वारा बुद्धि की उन्नति होती है, जिस विवेककी बुद्धिसे जगत्, जीव और ईश्वरके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान हो जाता है। संपूर्ण नामरूपात्मक जगत् मायिक होनेसे कल्पित मिथ्या है, स्वप्न प्रपंचकी तरह जाग्रत् प्रपंच भी प्रतीतिमात्र है, कहा है–

'यथा स्वप्नप्रपञ्चोऽयं मयि मायाविजृम्भितः ।
तथा जाग्रत् प्रपंचोऽपि मयि माया विजृम्भितः ॥

जैसे स्वप्नका जगत् परब्रह्ममें मायासे भान होता है, वैसे जाग्रत् जगत् भी ब्रह्ममें माया करके भान होता है, वास्तवमें जगत् कोई वस्तु नहीं है, मायाके संबंधसे परब्रह्म ही जगत् रूपसे दीखता है, विवेकबुद्धिसे तो जगत् ब्रह्मरूप ही है। शास्त्रमें लिखा है–

हरिरेव जगत् जगदेवः हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः स नरो भवसागरमुद्धरति॥
स्वसाक्षात्कारेण अविद्यातत्कार्यं हरतीति हरिः परं ब्रह्म।

परब्रह्म ही अज्ञान कालमें जगद् रूपसे दीखता है। ज्ञानकालमें जगद् ही ब्रह्मरूपसे भान होता है। ब्रह्मका और जगत्का भिन्न स्वरूप नहीं है। जैसे जल ही शीतकालमें हिम (बर्फ) रूपसे दीखता है, धूप कालमें वह बर्फ ही जलरूपसे भान होता है–जलका और बर्फका भिन्न स्वरूप नहीं है, वस्तुतः जल ही जल है, हिम कोई चीज नहीं, इसीप्रकार अज्ञानके सम्बन्धसे ब्रह्म ही जगदाकार दीखता है, ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति द्वारा जगत् ब्रह्मरूप ही नजर आता है, जैसे धूपके सामने हिम नहीं रहता, इसीप्रकार ज्ञानदृष्टिसे जगत् नहीं रहता, जगत्का अत्यन्ताभाव हो जाता है। 'सर्वमिदं जगत् ब्रह्मैव' ऐसी विवेक बुद्धि जिसकी है, वह पुरुष संसार समुद्रसे पार होता है, दूसरोंको भी पार कर देता है।

अविद्यारूपउपाधिके सम्बन्धसे चेतन जीव कहा जाता है, और माया उपाधिके सम्बन्धसे वही चेतन ईश्वर कहलाता है, उपाधिद्वयके त्यागसे जीव ईश्वर वास्तवमें ब्रह्मस्वरूप ही हैं, ऐसे दृढ़ अपरोक्ष निश्चयसे स्वरूपावस्थिति होना ही आत्म-उन्नति है। आत्म-उन्नतिसे जन्म मरणके दुःखसे छूटकर नित्यानन्द स्वरूपको प्राप्त होता है, यह महापुरुषके सत्संगका फल है।

श्रीरामकृष्ण परमहंसजी, वास्तवमें महापुरुष ही थे इसमें कोई सन्देह नहीं। कान्ता और कनकका परमहंसजीने सर्वथा परित्याग किया था, स्त्री मात्रको माताकी दृष्टिसे देखते थे–स्त्रीको ही नहीं बल्कि भगवती काली

माताके परमोपासक होनेसे सम्पूर्ण जगत्को मातारूप ही देखते थे।

परमहंसजीके उपदेश, स्वनिष्ठ महापुरुषत्वके सूचक ये—संसारमें ईश्वर ही केवल सत्य है, और सभी असत्य है, पहिले ईश्वर प्राप्तिका यत्न करो, पीछे जो इच्छा हो वह कर सकते हो, केवल ईश्वरका ज्ञान ही ज्ञान है, और सब अज्ञान है।

देखिये! सज्जनो! परमहंस महापुरुषजीका क्या ही सुन्दर और गम्भीर उपदेश है, जिस उपदेशसे संपूर्ण वेद और शास्त्रोंका परब्रह्ममें समन्वय कर दिया गया है। किसी मनुष्यने प्रश्न किया——यदि एक सच्चिदानन्द परमेश्वर ही सत्य है तो शास्त्रादि बाह्य आचार व्यवहार की क्या आवश्यकता है?

उत्तर——आवश्यकता चावलकी होती है, परन्तु चावल पानेके लिये धान ही बोना पड़ता है, धानमें भी छिलका यद्यपि अनावश्यक है पर छिलके बिना धान नहीं उगता, इसीप्रकार वेद शास्त्र विहित आचारोंके पालन किये विना परमेश्वरकी प्राप्ति नहीं होती।

प्रश्न——आपके पास बहुत जनसमुदाय एकत्रित होता है तो आपको संग दोष जरूर होता होगा?

उत्तर—लोहा एकवार पारसको छूकर सोना हो जाता है, तब उसे चाहे मिट्टीके भीतर रक्खो, या कूड़ेमें फेंक दो, वह जहां रहेगा सोना ही रहेगा, वह लोहा न होगा। इसीप्रकार जो ईश्वरको पाचुका है, उसकी भी यही दशा है, वह बस्तीमें रहे, या जंगलमें। उसको फिर दाग नहीं लग सकता। जैसे लोहेकी तलवार पारसके स्पर्शसे सोनेकी बन जाती है, किन्तु आकार वही रहता है, पर उससे फिर हिंसाका काम नहीं होता, इसीप्रकार ईश्वरको छूने पर (प्राप्त करलेने पर) मनुष्यका आकार वही रहता है, पर उससे अशुभ कार्य नहीं होते।

जैसे दूध और पानी एक साथ रहनेसे मिल जाते हैं, पर दूधसे मक्खन निकालने पर वह मक्खन पानी में नहीं मिलता, इसीप्रकार ईश्वरको प्राप्त कर लेने पर मनुष्य हजारों सांसारिक बद्ध जीवोंके साथ रहने पर भी बद्ध नहीं होता।

परमहंस महापुरुषजीकी ब्रह्मनिष्ठा भी पूर्ण थी आपकी निर्मल विवेक दृष्टिसे सर्वत्र ब्रह्मही नजर आता था, नाम धाम और श्याम ये तीनों चैतन्य ब्रह्म स्वरूप हैं। इस स्वकीय वाक्यसे अपनी ब्रह्मनिष्ठाका सूचन होता है, उसी ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषकी शक्तिका संचार स्वामी विवेकानन्दजीकी बुद्धिमें हुआ था, जिस शक्तिके बलसे देश देशान्तरोंमें स्वामी विवेकानन्दजीने सनातनधर्मका प्रचार किया और वर्तमानमें भी उसी महापुरुषकी शक्ति से मिशन द्वारा दीन दुःखी जीवोंका बड़ा उपकार हो रहा है।

ऐसे महापुरुष परमहंसजीका जितना उत्सव और स्मरण किया जाय उतना ही थोड़ा है।

ऐसे महापुरुषजीका स्मरण पुण्योत्पादक है, मेरी परमेश्वरसे प्रार्थना है कि—ऐसे मांगलिक उत्सव हमेशा होते ही रहें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

सब जग ईश्वर रूप है, भलो बुरो नहि कोय, जैसी जाकी भावना तैसो ही फल होय॥
तुलसी कौशल-राज भज, मत चितवे चहुँ ओर, सीताराम मयंक मुख तू कर नयन चकोर॥
चटक मटक नित छैल बन, तकत चलत चहुँ ओर, नारायण यह सुध नहीं आज मरें की भोर॥
हाथ उठाके कहत हूँ, कहूँ बजाई ढोल, स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल॥

श्री श्रीरामकृष्णजीके वचन-पीयूष

[सङ्कलनकर्त्ता तथा अनुवादक—श्रीस्वामी चिन्मयानन्दजी, अद्वैत-आश्रम, काशी]

(गताङ्कसे आगे)

(१२)—जो हीन बुद्धि हैं, वे ही सिद्धाई चाहते हैं। बीमारीको अच्छी करना, मुकद्दमा जिता देना, जलके ऊपरसे चलना—ये सब (सिद्धाई हैं)। जो भगवान्के भक्त हैं, वे ईश्वरके पादपद्मोंको छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहते हैं। जिनकी थोड़ी बहुत सिद्धाई हों, उनकी प्रतिष्ठा—लोकमान्य होती है।

(१३)—व्याकुल होकर भगवान्की प्रार्थना करो। विवेकके लिए प्रार्थना करो। ईश्वर ही सत्य हैं, और सब अनित्य है, इसीका नाम विवेक है। जल-छादन (जल छाननेके महीन कपड़े) से जल छन लेना होता है। मैला—कूड़ा थरकर-एक तरफ रहता है, और अच्छा जल दूसरे तरफ पड़ता है। तुम उनको (ईश्वरको) जानकर संसारको छोड़ो इसीका नाम विद्याका संसार है।

(१४)—नाना मत हैं। 'मतका पंथ' अर्थात् जितने मत हैं उतने ही पन्थ हैं। किन्तु सभी मानते हैं कि—'मेरा मत ही ठीक है—मेरी ही घड़ी ठीक चल रही है।

(१५)—सत्य कथा—सच बोलना—कलिकी तपस्या है। कलियुगमें अन्य तपस्या कठिन है। सत्य मार्गपर रहनेसे भगवान् पाया जाता है।

(१६)—अवतार या अवतारके अंशको ईश्वर कोटि कहते हैं; और साधारण लोगोंको जीव या जीवकोटि। जो जीव कोटीके हैं, वे साधनाँएँ कर ईश्वरका लाभ कर सकते हैं। वे (निर्विकल्प) समाधिसे फिर लौटते नहीं हैं।

जो ईश्वर कोटी हैं, वे मानो राजाके बेटे हैं, और मानों सात मञ्जिलवाले मकान की चाभी उनके हाथमें हैं। वे सातो मञ्जिलों तक चढ जाते हैं, फिर इच्छानुसा[र] उतर भी आ सकते हैं। जीव कोटी मानों छोटे कर्मचारी नौकर हैं; वे सात मञ्जिलके कुछ दूर तक पहुँच सकते हैं।

(१७)—जनक ज्ञानी थे। साधनाएँ कर उन्होंने ज्ञान लाभ किया था। शुकदेव थे ज्ञानकी मूर्ति। शुकदेवको साधनाएँ कर ज्ञान लाभ करना नहीं हुआ था। नारदमें भी शुकदेवके जैसा ब्रह्मज्ञान था। किन्तु वह भक्ति लेकर था। लोकशिक्षाके लिये प्रह्लाद कभी 'सोऽहं' भावमें रहते, फिर कभी दास भावमें और कभी सन्तान भावमें रहते थे। हनूमान्की भी वैसी अवस्था थी।

(१८)—भगवान्को लाभ करना हो तो संसारसे तीव्र-वैराग्य चाहिये। जो कुछ ईश्वरके मार्गके विरोधी मालूम हो, उसे तत्क्षण त्यागना चाहिये। पीछे होगा, यह सोचकर छोड़ रखना ठीक नहीं है। काम-काञ्चन ईश्वर-मार्गके विरोधी हैं। उनसे मन हटा लेना चाहिये।

(१९)—दीर्घसूत्री होनेसे परमार्थका लाभ नहीं होगा। कोई एक अँगोछा लेकर स्नान करनेको जा रहा था। उसकी औरतने उससे कहा कि—तुम किसीभी कामके नहीं हो, उम्र बढ़ रही है, अब भी यह सब (व्यवहार) छोड़ नहीं सके। मुझको छोड़कर तुम एक दिन भी नहीं रह सकते। किन्तु देखो, वह रामदेव कैसा त्यागी है। पतिने कहा—क्यों उसने क्या किया? औरतने कहा—उसकी सोलह औरते हैं। वह एक एक करके उनको त्याग रहा है। तुम कभी त्याग कर नहीं सकोगे। पतिने कहा—'क्या वह एक एक करके त्याग

कर रहा है ! अरे पगली ! वह कभी त्याग कर नहीं सकेगा । जो त्याग करता है वह क्या थोड़ा थोड़ा करके त्याग करता है ? औरतने मुस्कुराकर कहा–'तो भी तुमसे अच्छा है । पतिने कहा–पगली, तू नहीं समझती है । त्याग करना उसका काम नहीं है अर्थात् उसके कहनेसे त्याग नहीं होगा, मैं ही त्याग कर सकूँगा । यह देख, मैं चल देता हूँ ।'

इसीका नाम तीव्र वैराग्य है । उस आदमीको ज्यों वैराग्य आ गया त्यों ही उसने त्याग किया । अंगोछा कन्धेमें ही रहा कि–वह चल दिया । वह संसारका कुछ ठीकठाक करनेको नहीं पाया । घरकी ओर एक बार पीछे लौट कर देखा भी नहीं ।

(२०) जो त्याग करेगा उसको मनोबल चाहिए। लुटेरोंका भाव ! लुटनेसे पहले जैसे डाकू लोग कहते हैं, ऐ ! मारो ! लुटो ! काटो ! अर्थात् पीछे क्या होगा, इसका ख्याल नकर खूब मनोबलके साथ आगे बढ़ना चाहिये ।

(२१)—तुम और क्या करोगे ? उनके (ईश्वरके) प्रति भक्ति और प्रेम लाभ कर दिन बिताना है । श्रीकृष्णके अदर्शनसे यशोदा पगली जैसी बनकर श्रीमती (राधा) के पास गई । श्रीमतीने उनका शोक देखकर आद्या शक्तिके रूपसे उनको दर्शन दिया- और उनसे कहा–'माँ' वर फिर क्या लूँ ? तो इतना ही कहो कि–मैं तन मन् बचनसे कृष्णकी ही सेवाकर सकूँ, इन्हीं आंखोंसे उनके भक्तोंका दर्शन हो । जहां जहां उनकी लीलाएँ हों इन पैरोंसे वहीं जा सकूँ ! इन हाथोंसे उनकेही प्रेमीभक्तोंकी सेवा हो । सब इन्द्रियां उन्हींके दर्शनश्रवणादिमें लगे ।

(२२) इधरका (ईश्वरीय) आनन्द मिलनेसे उसको (वैषयिक) आनन्द अच्छा नहीं लगता है । ईश्वरीय आनन्द लाभ करनेसे संसार नमकका (शाक जैसा) निःरस भान होता है। शाल मिलनेसे फिर बनात अच्छा नहीं लगता है ।

(२३)—जो 'संसारके धर्म' संसारमें रहकरही धर्माचरण करना ठीक है यह कहते हैं, वे यदि एकवार भगवान् का आनन्द पावें तो उनको फिर और कुछ अच्छा नहीं लगता । कर्मोंके लिए आसक्ति कम होती जाती है । क्रमशः ज्यों ज्यों आनन्द बढ़ता जाता है त्यों त्यों फिर कर्म भी कर नहीं सकते हैं । केवल उसी आनन्दको ढूढ़ते फिरते हैं । ईश्वरीय आनन्दके पास फिर विषयानन्द और रमणानन्द तुच्छ होजाते हैं, एकवार स्वरूपानन्दका स्वाद मिलने पर उसी आनन्दके लिए व्याकुल होकर फिरते हैं; तब संसार–गृहस्थी रहे चाहे न रहे ! उसके लिये कोई परवाह नहीं रहता है ।

(२४)—संसारी लोग कहते हैं कि–दोनों तरफ रहेंगे ! दो आनेका शराब पीनेसे मनुष्य दोनों ओर ठीक रहना चाहते हैं । किन्तु अधिक शराब पीनेसे क्या फिर दोनों तरफ नज़र रखी जा सकती है ?

(२५)—ईश्वरीय आनन्द मिलनेसे फिर कुछ सांसारिक कार्य अच्छा नहीं लगता है । तब काम काञ्चन की बातें मानों हृदयमें चोटसी लगती है । बाहरी बातें फिर अच्छी नहीं लगती हैं । तब मनुष्य ईश्वरके लिए पागल होता है; रूपये पैसे कुछ भी अच्छे नहीं लगते हैं ।

(२६)—ईश्वर लाभके बाद कोई संसार है तो वह होता है–विद्याका संसार । उसमें कामिनी-काञ्चनका प्रभाव नहीं रहता है; उसमें रहते हैं; केवल भक्ति, भक्त और भगवान् ।

(क्रमशः)

काश्मीरक महाकवि शिवभक्त श्रीजगद्धर भट्ट विरचित करुणारस प्रपूर्ण—

स्तुतिकुसुमाञ्जलिकी कुछ सूक्तियाँ

(अनुवादक—श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी महेश्वरानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर)

(१)

यद्यपि भगवान् श्रीशङ्कर अपनी जटामें निरन्तर गंगाजीको धारण करते हैं, अतएव संसार आपको 'गंगाधर' नामसे पुकारता है, तथापि आपके अनुग्रहका पारावार नहीं है, जब भावुक भक्त जल पूरित कलशसे आपको स्नान कराते हैं, तब आप उसे बड़े प्रेमसे ग्रहण कर प्रसन्न हो जाते हैं, अतः आप आशुतोष एवं दयाके महासागर हैं, ऐसे आप कृपानिधानको स्तुत्यादिसे प्रसन्न करनेके लिये कौन भक्त उत्साहित न होगा ?

यो मूर्धनि ध्वनदनर्गलनिर्झरौघ-
झांकारिणीममरनिर्झरिणीं दधानः ।
गृह्णाति भक्तजनतः कलशाभिषेकं
कस्तं न विज्ञपयितुं विभुमुत्सहेत ॥

जो भगवान् शिव शब्दायमान-अनर्गल झरनोंके प्रवाहसे झंकारकारिणी श्रीगंगाजीको मस्तक पर धारण करते हुए भी भक्तजनके कलशाभिषेकको प्रेमसे ग्रहण कर लेते हैं, ऐसे विभु श्रीशंकर भगवान्‌की प्रार्थना करनेके लिए किसे उत्साह न होगा ? अर्थात् प्रत्येक भावुक भक्त उनकी प्रार्थनाके लिए अवश्यमेव उत्सुक होगा।

(२)

हे भगवन् ! मैं आपके शरणमें आया हूँ, मोह-प्रचूर संसारके अनेक कष्टोंसे घबड़ाया हुआ हूँ, इन कष्टोंसे बचनेके लिए मैं एकमात्र आप दीन-दयालको मुक्त कण्ठसे पूकार रहा हूँ। प्रभो ! कृपानिधान ! मेरी कातर प्रार्थना पर ध्यान दीजिये, मुझे परिपूर्ण विश्वास है कि—संसार-सागरमें डूबती हुई मेरी जीवन नैयाको पार लगाने वाले सर्वोत्तम कर्णधार (केवट) एकमात्र आपही हैं। दीनानाथ ! आपने अनेक दीनोंको संसार सागरसे तारकर पार लगाये हैं, अतएव आप मुझ दीन की—आर्तकी क्रन्दन-प्रार्थना सुनकर मेरा उद्धार कीजिये, यही आपसे विनम्र विज्ञप्ति है—

क्रन्दाम्यतः किमपि नाम पिनाकपाणे !
तीव्रार्तिनिस्तरणकारण ! कातरोऽहम् ।
मोहाटवीविकटसंकटसंस्थितस्य,
तन्मेऽवधारय शिवाय शिवातुरस्य ॥
आक्रन्दमिन्दुधर ! धारय देव ! कर्णे,
कस्त्वत्परः परमकारण ! कर्णधारः ।
मूर्ध्ना वहन्नुडुपखण्डमखण्डपुण्यम्,
कं कं न तारयसि संसृतिसागराद्यः ॥

हे शिव ! मैं कातर होकर एकमात्र आपको पुकारता हूँ, हे घोर पीड़ासे पार करनेवाले ! हे पिनाकपाणे ! मोहरूपी विकट वनमें पड़े हुए मुझ दुःखियाके कल्याणके लिए इस दीन-पुकारकी ओर ध्यान दीजिये।

हे चन्द्रशेखर ! देव ! आप मेरे करुण-क्रन्दनको सुनिये, हे परमकारण ! आपके सिवाय इस संसार-सागरसे पार लगाने वाला और कौन श्रेष्ठ कर्णधार है ! अतएव आप, अक्षीण-पुण्यवाला उडुपखण्ड—चन्द्रमाको मस्तक पर धारण कर संसार-सागरसे किस-किसको नहीं तारते हो ? अर्थात् आपने शरणागत, सभी भक्तोंको तारे हैं, वही सर्वोत्तम कर्णधार माना जाता है—जो कि-उडुपखण्ड-यानी नौकाको मस्तक पर धारण कर पार करनेके लिए प्रयत्नशील रहे, यह बात आपने उडुपखण्ड-चन्द्रको मस्तक पर धारण कर सभीके समक्ष प्रकट कर दी है।

(३)

हे प्रभो ! क्या आप, आपसे की हुई दुःखदलन प्रतिज्ञाको भूल तो नहीं गये हो ?

अस्यामसह्यविरहज्वरकातरायां,
प्रीति नं ते यदि परं निरवग्रहस्य।
सर्वान्तरार्तिदलनाय दृढा प्रतिज्ञा,
विज्ञातत्त्व! कथमीश्वर! विस्मृता ते॥

हे तत्त्वज्ञ ! हे सर्वेश्वर ! यदि विरह ज्वरसे पीड़ित इस मेरी वाणीमें आप-निरंकुशकी कुछ भी प्रीति नहीं है, तो सबकी आन्तरिक पीड़ाको दलन करनेकी दृढ प्रतिज्ञाको भी क्या आप भूल गए हैं ?

(४)

हे भगवन् ! आपके शरणमें आये हुए मुझका यदि संसारसागरसे उद्धार नहीं हुआ तो याद रखियेगा—संसारमें आपकी बड़ी भारी हँसी होगी।

मानुष्यनावमधिगम्य चिरादवाप्य,
निस्तारकं च करुणाभरणंभवन्तम्।
यस्याभवद्भरवशस्तरितुंभवाब्धिम्,
सोऽहंबुडामि यदि कस्य विडम्बनेयम्॥

हे भगवन् ! अनेक जन्मोंके बाद मानुष्य जन्म-रूपी नाव और आप जैसे अलौकिक-सर्वोत्तम कर्णधारको पाकरके भी एकमात्र आपपर संसारसागरसे पार होनेके लिए निर्भर (पूर्ण विश्वास) करनेवाला, मैं यदि संसार सागरमें डूब गया तो यह हँसी किसकी होगी ?।

(५)

यदि आप कहें कि—तू अयोग्य हैं, मैं तुझको संसारसागरसे पार नहीं लगाता, परन्तु भगवन् आपने योग्य सेवकों पर कृपाकर उनको पार लगादिया तो उसमें कौनसी बड़ी बात हुई, इसमें क्या आश्चर्य माना जायगा ? प्रभो ! आपकी तारीफ तो तभी ही है कि—मेरे जैसे अयोग्यपर भी कृपाकर पार लगा दिया जाय—

स्वामी प्रसादमुपकारिषु सेवकेषु,
योग्येषु साधुषु करोति किमत्र चित्रम्।
सन्तस्त्वभाजनजनेष्वपि निर्निमित्तम्
चित्तं वहन्ति करुणामृतसारसिक्तम्॥

यदि स्वामी, उपकारी—योग्य-सज्जन-सेवकों पर कृपा करते हैं, तो इसमें क्या आश्चर्य है ! परन्तु हे प्रभो ! सन्त-महात्मा तो अयोग्य-जन पर भी किसी कारणके विना ही करुणार्द्र-चित्त रखते हैं।

(६)

हे दीनानाथ ! आप दीनबन्धु हैं, दीनोंका उद्धार कीजिये, हे हर ! आप दुःख-हारी हैं, दुःखियोंकी रक्षा कीजिये, हे मृत्युञ्जय ! हे कालकाल-महाकाल ! आप मृत्यु-विजयी हैं, मृत्युसे मुझको बचाइये—

तस्मात्समाप्तसकलाभ्युदयाभ्युपायम्,
आयस्तचेतसमसम्भवभग्नवृत्तम्।
सीदन्तमन्तकभयादभयार्पणेन,
सम्भावय स्वयमनर्थकदर्थितं माम्॥

जिसके अभ्युदय (कल्याण) के समस्त उपाय समाप्त हो चुके हैं, जिसका चित्त नितान्त थक चुका है, दारिद्र्यसे जिसके समस्त आचार भ्रष्ट होगये हैं, जो मृत्युके भीषण-भयसे निरन्तर काँप रहा है, और जो विविध-अनर्थोंके कारण महादुःखी होरहा है—उस मुझ दीन-दासको हे कृपानिधान ! अभय देकर आपही स्वयं संभालिए।

(७)

हे भगवन् ! आपकी दिव्य-लीला मेरी समझमें नहीं आती, लोगों की दृष्टिमें आपकी उलटी-चाल प्रतीत होती है, परन्तु प्रभो आपकी वही चाल अपने आश्रित जनोंके लिये सुलटी होजाती है—

त्वां नीतिमान् भजति यः स भवत्यनीतिः,
मुक्तः स यो हि भवता हृदयान्न मुक्तः।

यस्ते रतोऽपचितयेऽपचितिं स नैति,
तत्त्वां श्रितोऽस्मि भवमस्त्यभवो न कस्मात् ॥

जो नीतिमान् आपको भजता है, वह 'अनीति' अर्थात् छः प्रकारकी अतिवृष्टि आदि ईतियोंसे-आपत्तियोंसे रहित होजाता है। जिसे आपने हृदयसे नहीं छोड़ा है, वही मुक्त होजाता है, जो आपकी अपचिति यानी पूजा करता है, वह कभी भी अपचिति अर्थात् अपमानको प्राप्त नहीं होता, अब मैं भी आप-भवका आश्रय ग्रहण करता हूँ, फिर उपर्युक्त नियमके अनुसार मैं अभव अर्थात् आवागमन-रहित क्यों नहीं हूँगा ? अर्थात् अवश्य हूँगा ।

(८)

हे भगवन् ! मैं बड़ा चिन्तातुर हूँ, हृदयमें चिन्ताकी आग हरदम जलती रहती है, प्रभो ! जलते हुए मुझपर आपकी कब अमृत-मयी कृपावृष्टि होगी । कृपानिधान ! आप कोमल हैं, मुझपर आपका कठोरताका व्यवहार क्यों हो रहा है ?—

स्वापः सचिन्तमनसो निशि मे दुरापः,
निर्दाह एव गमयामि कदा सदाहः ।
रक्ष त्वदेकशरणं शिव ! मामवश्यं ,
कस्माद् भवस्यपरुषो मम कर्कशस्त्वम् ॥

हे प्रभो ! मुझ चिन्तातुरके लिए रातमें नींद भी दुर्लभ होगई है, दाहवाला मैं कब निर्दाह यानी शीतल होकर दिन व्यतीत करूँगा, हे शिव ! आपके वशंवद इस सेवककी तू अवश्य रक्षा कर, हे दीनबन्धो ! समझमें नहीं आता, क्या कारण है ? जो तू कोमल चित्त होकर भी मेरे लिए कठोर हो रहा है ।

(९)

हे शङ्कर ! आप सुख देनेवाले हैं, मुझे सुख दीजिये, हे निर्भय ! आप भयरहित हैं, मुझे भी निर्भय बनाइये, हे शान्त ! आप भवतापविनिर्मुक्त हैं, मुझे भी संतापसे बचाइये, हे दयालो ! मैं आपकी दयाका भिखारी हूँ, दया दृष्टि द्वारा मेरा उद्धार कीजिये—

स्वामिन्मृडस्त्वमुरुदुःखभरार्दितोऽहम्,
मृत्युञ्जयस्त्वमथ मृत्युभयाकुलोऽहम् ।
गङ्गाधरस्त्वमहमुग्रभवोपताप-
तप्तः कथं कथमहं न तवानुकम्प्यः ॥

हे स्वामिन् ! आप आनन्दनिधि हैं, सभीको सुखी करनेवाले हैं, और मैं बड़े भारी दुःखके भारसे दुःखी हूँ । आप मृत्युञ्जय हैं, और मैं मृत्यु-भयसे व्याकुल हूँ । आप गंगाधर हैं, और मैं भयङ्कर संसारके संतापसे संतप्त हूँ । हे नाथ ! फिर भी मैं आपकी दयाका पात्र क्यों नहीं बनाया जाता हूँ ।

(१०)

प्रभो ! यह मेरा दुर्भाग्य है कि—आप दयासागर होकर भी मेरे लिए दयाकी एक बून्द भी नहीं प्रदान करते । भगवन् ! आप त्रिकालज्ञ हैं, सर्वान्तर्यामी एवं सर्वसाक्षी हैं, तथापि मानो मेरे हृदयकी पीड़ाको आप जानते ही न हो ? ऐसा प्रतीत होता है, अन्यथा आप मुझ पर अवश्य दया-दृष्टि करते । अथवा आप पीड़ाको जानते हुए भी आंख मिचौनी करलेते हो ? मैं तुच्छ अल्पज्ञ आपके हृदयके भावोंको कैसे जान सकता हूँ ? कृपानिधान ! इससे बढ़कर और क्या मेरा दुर्भाग्य हो सकता है ? यह आप ही बतलाइये—

सर्वज्ञ ! सर्वमवगच्छसि भूतभावि,
भाग्यक्षयः पुनरसौ भगवन् ! ममैव ।
जानासि यस्य हृदयस्थित एव नार्तिम्,
ज्ञात्वाऽपि वा गजनिमीलितमातनोषि ॥

हे सर्वज्ञ ! आप भूत, भविष्यत् , वर्तमान, सब कुछ जानते है, परन्तु यह मेरा ही दुर्भाग्य है कि—आप मेरे हृदयमें बैठकर भी मेरी पीड़ाको नहीं जानते

या जानकर भी हाथीकी तरह आंख मिचौनी करलेते हैं, यह समझमें नहीं आता ।

(११)

हे दयालो ! दया कीजिये । जिनको देखकर या धारण कर आप प्रसन्न होते हैं, वह सब मेरे पास मौजूद है । दया-प्राप्तिके साधन विद्यमान होने पर भी आप मुझपर दया नहीं करते, यह देखकर मुझे पारावार क्लेश होता है—

भालेऽनलं तव गले गरलं करे च,
शूलं प्रकाशमखिलोऽप्यमवैति लोकः।
अन्तर्गतं त्रयमिदं तु मम त्वमेव,
जानासि नासि च दयालुरतो हतोऽहम् ॥

हे नाथ ! आपके ललाटमें अग्नि, गलेमें विष, और हाथमें त्रिशूल है, यह सब संसार जानता है। हे भगवन् ! ये तीनों ही— जिनके सम्बन्धसे आप सदा प्रसन्न रहते हैं—अर्थात् आपके विरहकी अग्नि, अविद्या-रूपी विष, एवं मोहरूपी शूल—मेरे हृदयके भीतर निवास करते हैं, यह सब आप प्रत्यक्ष जानते हैं, तथापि हे करुणासागर ! मुझ पर आप दयालु क्यों नहीं होते, हाय ! अब मैं नष्ट हो चुका ।

(१२)

हे दीनानाथ ! यह मेरा विलाप अरण्य-रोदन के समान निष्फल हो रहा है । सुनता हूँ कि—आप निर्निमित्त, एवं नैसर्गिक-कृपालु हैं, परन्तु क्या करूँ ! जब कि—मेरा भाग्य ही मुझसे प्रतिकूल है—

एकस्त्वमेव भविनामनिमित्तबन्धु-
र्नैसर्गिकी तव कृपा सवितुः प्रभेव ।
वामः पुनर्मम विधिः परिदेवितानि,
जातान्यरण्यरुदितेन समानि यस्य ॥

हे महेश्वर ! एक आप ही संसारी जीवोंके अका-रण बन्धु हो, आपकी विमल-कृपा भी सूर्य प्रभाकी तरह स्वाभाविक है, परन्तु मेरा भाग्य ही विपरीत है—जो मेरा रोना अरण्य-रोदनके समान विफल हो रहा है ।

(१३)

भगवन् ! भाग्य मुझसे प्रतिकूल क्यों न हो ! जब कि—मैं नितान्त पुरुषार्थ-भ्रष्ट हो गया हूँ । न तो मैं आपके हृदयमें प्रविष्ट हो सका हूँ, न तो मैं आपको अपने हृदयमें स्थापित कर सका हूँ। हाय ! यह निर्ब-लता मेरी ही है, मैं आप ही अपनेसे प्रतिकूल हो रहा हूँ, अतः मुझ ही धिक्कार है —

जानामि नामृतमयं हृदयं प्रवेष्टुम्,
उद्दामदुःखदवदाहहतस्तवाऽहम् ।
धर्तुं हृदि त्रिदशसिन्धुसुधासुधांशु-
शीतं भवन्तमपि न प्रभवामि धिङ्माम् ॥

हे प्रभो ! हाय ! मेरी दूर्बलताका क्या ठिकाना है कि—उत्कट दुःखाग्नि से संतप्त हुआ-मराहुआ भी मैं आपके अमृतमय शिशिरतर हृदयमें प्रवेश करना नहीं जानता, और न तो, गङ्गासे अमृतसे एवं चन्द्रमासे भी अतीव शीतल आपको अपने संतप्त-हृदयमें भी धारण कर सकता हूँ, अरे ! मैंतो दोनोंमेंसे एक भी न कर सका, उभय-भ्रष्ट हो रहा हूँ, अतःमेरी दुर्बलताको धिक्कार है ।

(१४)

हे भगवन् ! मुझ दुर्बल पर यदि आपही कृपाकरें तो मेरा उद्धार हो सकता है, ! और कोई उपाय नहीं है । मेरी तो गति अमावास्याके चन्द्रमा के समान होरही है—

क्षीणःक्षताखिलकलःप्रविलीनधामा,
त्वामाश्रितोऽस्मि सवितारमिवामृतांशुः ॥
नास्त्येव जीवनकला मम काचिदन्या,
पादार्पणेन कुरुषे यदि न प्रसादम् ॥

जैसे अमावस्याके समयमें—जिसकी समस्त कलाएँ नष्ट हो चुकी हैं—जो स्वयं प्रकाश विहीन है, तथा जो क्षीण है, ऐसा चन्द्रमा सूर्य-भगवान्का आश्रय ग्रहण करता है, और जैसे सूर्य अपने पादापर्णसे अर्थात् पाद यानी किरणोंको अर्पण करके चन्द्रमाको जीवन-प्रदान करता है, तेजस्वी एवं सुशोभित बनाता है। उसीप्रकार मैं भी विवेक-वैराग्यादि समस्त कलाओंसे नितान्त रहित हूँ, ब्रह्म-तेजसे विहीन हूँ, तथा सांसारिकी-त्रिविध-चिन्ताओंसे क्षीण हो गया हूँ, अतएव मैं एकमात्र आपकी शरणमें आया हूँ, आप भी सूर्यके समान मुझे विवेकादि-कलावाला विशिष्ट-जीवन-प्रदान कीजिये, तेजस्वी एवं शान्ति-दान्तिसे सुशोभित बनाइये। जैसे सूर्य यदि अपने पादापर्णसे अर्थात् किरण-प्रदानसे चन्द्रको प्रकाशमान न करे तो उसके जीवनकी कला कुछ भी परिशिष्ट नहीं रह जाती है, इसीप्रकार यदि आप अपने पदापर्णसे अर्थात् चरण-अपर्णकर मुझ पर कृपा नहीं करते हैं तो मेरे जीवनकी भी अन्य कोई भी कला शेष नहीं रहती है, अतः मुझे केवल आपका ही भरोसा है, आप चाहे मेरा विनाश कीजिये, या उद्धार कीजिये, आपकी इच्छा है।

'न खलु परतन्त्रा प्रभुधियः।'

(१५)

प्रभो! आप त्रिनेत्रधारी—त्र्यम्बक हैं। विवेक-ज्ञानरूप सूर्य, शान्तिरूप चन्द्रमा, एवं आत्मसाक्षात्कार रूप अग्नि ये तीन आपके नेत्र हैं और मैं अज्ञानान्धकारसे ग्रसित, भवतापसे संतप्त, और विपत्तिरूपी तुषार [अतिथण्डी] से जड़ीभूत हो रहा हूँ। कृपानिधान! कृपया सूर्य नेत्रसे अज्ञानान्धकारको, चन्द्रनेत्रसे सन्ताप को, एवं अग्निनेत्रसे विपत्तिको नष्ट कीजिये—

घोरान्धकारविधुरं विविधोपताप-
तप्तं विपद्गुरुतुषारपराहतं माम्।
त्वं चेज्जहासि वद कस्तपनेन्दुवह्नि-
नेत्रो हरिष्यति परस्त्रिविधां ममार्तिम्॥

हे विभो! अज्ञानरूपी घोरान्धकारसे व्याकुल, संसारिक अनेक तापोंसे संतप्त, एवं विपत्तिरूपी तुषारसे ठिठरे हुए मुझको यदि आप छोड़ते हैं, तो भगवन्! आपही कहिये कि—सूर्य, चन्द्र एवं अग्निरूपी नेत्र वाले आपको छोडकर और कौन है? जो मेरे पूर्वोक्त त्रिविध क्लेशोंका हरण कर सके।

(१६)

भगवन्! मैं अनादिकालसे प्रवृत्त भवरोगसे ग्रसित हूँ, महादुःख पा रहा हूँ, और आप भवरोग-वैद्य-वैद्यनाथ हैं। इसीलिये तो अपने औषधिपति-चन्द्रको मस्तक पर धारण कर रक्खा है। दीनदयालो! आपके विना मेरे इस भवरोगकी कौन चिकित्सा कर सकता है—

व्यक्तिर्न यस्य न मतिर्न गतिर्न शक्ति-
र्नापि स्मृतिर्विपदपस्मृतिपीडितस्य।
तस्यौषधीशमुकुटं त्रिजगद्गुरुं त्वाम्,
मुक्त्वा करिष्यति परो मम कश्चिकित्साम्॥

प्रभो! मैं संसारकी विविध विपत्तिरूपी अपस्मार [मिर्गी रोग] से पीड़ित हूँ, अतएव मेरी व्यक्ति, [अंगोंका विकास] मति, गति, एवं शक्ति, नष्ट हो गई है। आप जैसे औषधीशमुकुट अर्थात् औषधिपति—चन्द्रको मुकुट बनानेवालेके सिवा और कौन मेरे इस रोगकी चिकित्सा कर सकेगा?

(१७)

भगवन्! मेरी तीनों ही अवस्था फिजूल चली गई। इनसे मैं कुछ भी श्रेयःसाधन न कर सका। बाल्यावस्था, विवेक-विचारशून्य खिलवाड़में एवं युवावस्था, रुठी हुई प्यारीके मनानेमें गमाई। अब आया

बुढ़ापा, इसमें होनेवाली दुर्दशा तो प्रत्यक्ष है, मृत्युदेव दौडता हुआ चला आ रहा है। प्रभो! अब मेरी कोई गति नहीं, सिवाय एकमात्र आपके चरणकमलोंको छोड कर। नाथ! अब तो मैं अनाथकी एवं अपराधीकी भांति एकमात्र आपके चरण कमलोंके शरण हो रहा हूँ, शरणागतकी रक्षा करना आपका परम धर्म है—

नाथ! प्राथमिकं विवेकरहितं तिर्यग्वदस्तं वयः,
तारुण्यं विहतं विराधितवधूविस्रम्भणारम्भणैः।
स्वामिन्! संप्रति जर्जरस्य जरसा यावन्न धावन्नयं,
मृत्युः कर्णमुपैति तावदवशं पादाश्रितं पाहि माम्॥

हे नाथ! स्वामिन्! मेरी पहली आयु विवेक विचार रहित पशु-पक्षीकी भांति फिजूल समाप्त हुई, और जवानी रुठी हुई प्यारी-स्त्रीके मनानेमें नष्ट हो गई अब बुढ़ापेसे जर्जर मुझपर दौडता हुआ आनेवाला यह मृत्यु, जबतक कानके समीप न आवे, तबतक मुझ पदाश्रित-शरणागतकी रक्षा कीजिये।

(१८)

दीनानाथ! मैं आपसे क्या विनय करूँ, जब कि मेरा ही गुरुतर अपराध है। मोह-मदिराके पानसे उन्मत्त हुआ मैं आप ही अपना विनाशकर बैठा हूँ।

प्रथम तो मैं रुष्ट-पुष्ट सुन्दर शरीरमें आसक्त होकर स्त्री-पुत्र-धनादि मायिक पदार्थोंका उच्छृङ्खलता पूर्वक उपभोग करता रहा। गुरु, शास्त्र, ईश्वर, धर्म, कर्म सभीकी अवहेलना करता था। जब मैं विविध रोग, शोक, जरा आदि विपत्तियोंरूपी गढ़ेमें गिर चुका, तब मेरी आंखें खुलीं। परन्तु प्रभो! इस समय प्रथमके किये हुए कुकृत्योंका स्मरण कर पश्चात्तापरूपी अग्निसे सतत जल रहा हूँ, नाथ? मुझ आत्म-द्रोहीका उद्धार कैसे हो? अब मैं क्या करूँ, कहां जाऊँ, आपकी शरणागति छोड़कर मुझ—अपराधीको अपने उद्धारका और कुछ भी उपाय नहीं दीख पड़ता, हे देव! शरणागत की रक्षा कीजिये—

आसीद्यावदखर्वगर्वकरणग्रामाभिरामाकृतिः,
तावन्मोहनमोहतेन न मया श्वभ्रं पुरः प्रेक्षितम्।
अद्याकस्मिकपातकातरमतिः कं प्रार्थये? कं श्रये?
किं शक्नोमि करोमि किं कुरु कृपामात्मद्रुहं पाहि माम्॥

जबतक समग्र इन्द्रियां, भोग करनेमें गर्वपूर्ण एवं सुन्दर थीं, तबतक तो मैंने आगे खुदा हुआ विपत्तिरूपी गढ़ा देखा नहीं, परन्तु अब उसमें अचानक गिरनेसे मैं महादुःखी एवं कायर बन गया हूँ, प्रभो, अब मैं इस अपराध निवारणार्थ किसकी प्रार्थना करूँ? किसकी शरण लूँ? क्या करूँ? नाथ! मुझ आत्मद्रोहीकी रक्षा कीजिये।

(१९)

भगवन्! जो स्वयं अन्धा है, जिसे किसीका सहारा नहीं है, वह यदि गढ़ेमें गिर जाता है, तो उसमें कुछ आश्चर्य नहीं माना जाता, परन्तु प्रभो! जो स्वयं बुद्धिमान् एवं चक्षुष्मान् है, जिसे मार्ग-दर्शक हितैषी, समीपमें आकर सुपथ-प्रदर्शन करा रहा है, वह यदि देखता हुआ भी अन्धा बनकर, सुनता हुआ भी बधिर बनकर, बुद्धि होने पर भी उन्मत्त बनकर, गढ़ेमें गिर पड़ता है, आपही अपने लिए विपत्तियोंको आमन्त्रण देकर बुलाता है—तो इससे बढ़कर और कौन गुरुतर आश्चर्य माना जा सकता है?—

जात्यन्धः पथि संकटे प्रविचरन् हस्तावलम्बं विना,
यातश्चेदवटे निपत्य विपदं तत्रापराधोऽस्य कः।
धिक् धिङ्मां सति शास्त्रचक्षुषि सति प्रज्ञाप्रदीपे सति,
स्निग्धे स्वामिनि मार्गदर्शिनि शठः श्वभ्रे पतत्येव यः॥

जन्मका अन्धा यदि हाथके सहारेके विना गढ़ेमें गिरकर दुःखी हो तो उसमें इसका क्या अपराध? परन्तु शास्त्ररूपी चक्षु, बुद्धिरुपी दीपक, एवं मार्ग दर्शक स्नेह-

पूर्ण स्वामीके होते हुए भी जो शठ गढेमें गिरे, उस मुझको वार वार धिक्कार है।

(२०)

भगवन्! मेरी एक और आवश्यक बात ध्यानमें रखने योग्य है, वह यह है कि—जो मार्ग अतीव विषम एवं दुरूह है, जहां कोई हितैषी रक्षक भी नहीं है, वहां यदि डाकूलोग, उस पथिकको लूट लें, या मार डालें, तो उसमें किसीका भी परिहास नहीं किया जाता, परन्तु प्रभो! जिस मार्गमें आप जैसे सर्वशक्तिमान्—करुणासागर रक्षक विद्यमान हों, उस मार्गमें कामादि डांकू मुझ पथिक पर उच्छृङ्खलता पूर्वक प्रहार करें या श्रेयोमार्गसे भ्रष्ट कर दें, तो उसमें किसका परिहास एवं किसकी निन्दा हो सकती है? यह कृपया आपही बतलाइये—

त्राता यत्र न कश्चिदस्ति विषमे तत्र प्रहर्तुं पथि,
द्रोग्धारो यदि जाग्रति प्रतिविधिः कस्तत्र शक्यक्रियः।
यत्र त्वं करुणार्णवस्त्रिभुवनत्राणप्रवीणः प्रभुः,
तत्रापि प्रहरन्ति चेत्परिभवः कस्यैष गर्हावहः॥

जहां कोई रक्षक नहीं है, उस विषम मार्गमें यदि पथिकोंको मारनेके लिए हत्यारे डाकू तत्पर रहते हों तो उसका उपायही क्या है? परन्तु जिस मार्गमें त्रिभुवन रक्षक—आप जैसे करुणासागर रक्षक विद्यमान हों, वहां भी यदि काम क्रोधादि—हत्यारे डाकू निरंकुश हो प्रहार करें तो उसमें किसकी घृणा पूर्ण निन्दा हो सकती है? यह आपही विचार कर बतलाइये।

(२१)

शक्तिमान् वही यथार्थ माना जा सकता है, जो दयावान् हैं, एवं दयावान् वही है, जो परोपकारी है, जो शक्तिमान् एवं दयावान् होने पर भी परोपकार नहीं करता, उसकी शक्ति एवं दया दोनोंही व्यर्थ मानी जाती है। प्रभो! आपमें पूर्णशक्ति एवं पूर्ण-दया दोनों ही विद्यमान हैं, विषपानके द्वारा आप परोपकारी भी प्रसिद्ध हो चुके हैं, केवल आपकी दयाका प्रार्थी कोई नहीं था, सो मैं अशरण-अनाथ आपके शरणमें आकर आपकी दयाके लिए प्रार्थना कर रहा हूँ, अब आप अपना कर्तव्य समझ लीजिए—

किं शक्तेन न यस्य पूर्णकरुणापीयूषसिक्तं मनः,
किं वा तेन कृपावता परहितं कर्तुं समर्थो न यः।
शक्तिश्चास्ति कृपा च ते यमभयाद्भीतोऽपि दीनोजनः,
प्राप्तो निःशरणः पुरः परमतः स्वामी स्वयं ज्ञास्यति॥

उस शक्तिमान्‌से क्या? जिसका कि—मन करुणामृतसे भरपूर न हो। उस दयालुसे भी क्या? जो परोपकार करनेके लिए समर्थ न हो। प्रभो! आपमें शक्ति और दया दोनों ही हैं, केवल प्रार्थी नहीं था, सो यमराजके भयसे डरा हुआ अशरण-अनाथ-एवं दीन मैं आपके आगे उपस्थित हो रहा हूँ, अब आप स्वयं समझ लीजिये कि—आपको क्या करना चाहिये?

(२२)

भगवन्! सर्वज्ञ, आप स्वयं जानते ही हैं कि—मैं भवतापसे अतीव संतप्त हूँ, उस सन्तापकी शान्तिके लिए आपके पास विविध साधन हैं, प्रभो! आपका यह कर्तव्य है कि—आपके सन्मुख खडे हुए आपके प्रेमीके संसार दावानल समुत्थ सन्तापको शान्त करें—

भृङ्गारे करपुष्करप्रणयिनि स्वर्निम्नगानिर्झरे,
सम्पूर्णे करुणारसे परिणतस्फारे तुषारत्विषि।
अस्ति स्वादु च शीतलं च सुलभं पीयूषमोषच्छिदे,
प्राप्तश्च प्रणयी पुरः परमतः स्वामी स्वयं ज्ञास्यति॥

आपके करकमलकी झारीमें, श्रीगंगाजीके झरनेमें, परिपूर्ण-कृपारसमें, और विशाल चन्द्रमामें, स्वादु एवं शीतल सुलभ अमृत, संसार दाहकी शान्तिके लिए विद्यमान है, और संसारके क्लेशोंसे दग्ध हुआ आपका प्रेमी मैं

आपके आगे खड़ा हूँ, अब आप स्वयं समझ लीजिये, कि—आपको क्या करना चाहिये ?।

(२३)

भगवन् ! कामादिदोषजन्या पीड़ा, हृदयमें शूल की तरह चुभती हुई मुझे महादुःख देरही है, यदि उसे किसी अल्प-शक्ति खल-पुरुषके सामने प्रकट की जाती है, तो उससे महती लघुता प्राप्त होती है, और वह असमर्थ उसकी निवृत्ति भी नहीं कर सकता, और उसको प्रकट किये विना, उससे मुक्त भी नहीं हो सकता हूँ, अतः मैं चाहता हूँ कि—मुझे कोई सर्वशक्तिमान्, कृपासागर, एवं परोपकारी महापुरुष मिल जाय, जिसके समक्ष उस पीड़ाको प्रकट कर उसकी कृपा द्वारा मैं उससे मुक्त हो जाऊँ। भगवन्! ऐसे महापुरुषधौरय, एकमात्र आप ही हैं, मुझे परिपूर्ण विश्वास है कि—मैं आपसे उस पीड़ा को निवेदन कर आपकी कृपासे मैं उससे मुक्तहो जाऊँगा—

आर्तिः शल्यनिभा दुनोति हृदयं नो यावदाविष्कृता,
सूते लाघवमेव केवलमियं व्यक्ता खलस्याग्रतः।
तस्मात्सर्वविदः कृपामृतनिधेरावेदिता सा प्रभोः,
यद्युक्तं कृतमेव तत्परमतः स्वामी स्वयं ज्ञास्यति॥

जबतक हृदयकी पीड़ा प्रकट न की जाय, तबतक वह काँटे की भाँति चुभती रहती है, और उसे दुष्टजन के सन्मुख प्रकट करदी जाये तो प्रकटकरने वालेकी लघुता द्योतित होती है, इसलिए कृपारूपी अमृत के पूर्णनिधि, और सर्वज्ञ--सर्वशक्तिमान् आपके समक्ष उस पीड़ाको मैंने निवेदन कर दिया है, जो मेरा योग्य कर्तव्य था, वह मैंने किया है, अब दीनानाथ ! आप ही स्वयं विचारिये कि—मुझ पर आई हुई ऐसी विकट परिस्थितिमें आप दीनबन्धुको क्या करना चाहिये ?

(२४)

भगवन् ! मरता क्या नहीं करता, दुःखी क्या नहीं बकता, प्रभो ! मैं महादुःखी एवं संतप्त हूँ, विवेक विचारसे नितान्त भ्रष्ट हो गया हूँ, अतएव जो कुछ जीमें आता है, उसे कह डालता हूँ, परन्तु कृपानिधान ! आपकी कृपा विना केवल बकवादसे क्या हो सकता है ?

जानुभ्यामुपसृत्य रुग्णचरणः को मेरुमारोहति,
श्यामाकामुकबिम्बमम्बरतलादुत्प्लुत्य गृह्णाति कः।
को वा बालिशभाषितैः प्रभवति प्राप्तुं प्रसादं प्रभोः,
इत्यन्तर्विमृशन्नपीश्वर ! बलादार्त्योऽस्मि वाचालितः॥

हे महेश्वर ! जिसके चरण, रोगग्रस्त होनेके कारण विनष्ट हो गये हैं, ऐसा कौन पंगु घुटनोंसे सरककर मेरु-पर्वत पर चढ़ सकता है ? उछलकर चन्द्रमण्डलको कौन पकड़ सकता है ? और कौन बच्चोंकी अनाप-सनाप बातोंसे राजाको प्रसन्न कर सकता है ? यह मैं हृदयके भीतर विचारसे खूब जानता हुआ भी पीड़ाके कारण बलपूर्वक बहुभाषी-वाचाल हो रहा हूँ।

(२५)

प्रभो ! मुझ पर कृपाकटाक्ष कीजिये, केवल आपके कृपाकटाक्षका ही विलम्ब है, उसके होने पर मेरे तमाम संताप एकदम आपही आप विनष्ट हो जायेंगे। भगवन् ! आपके पास शीतल-अमृतमय चन्द्रोंका बाहुल्य देखकर मुझे आशा नहीं, किन्तु पूर्णविश्वास हो गया है कि—अब मैं इस भवसंतापसे सदाके लिए मुक्त होकर शान्त, शीतल, अमृत, अभय, एवं आनन्दमय हो जाऊँगा। क्या आप मुझ शरणागतका परित्याग कर सकेंगे ? क्या आप मेरे लिए अकिञ्चित्कर हो जायेंगे ?—

चन्द्रं करे शिरसि चक्षुषि पादमूले,
मूर्तावपीति शिव ! चन्द्रसुभिक्षमेतत्।
तापान्धकारविधुरं शरणागतं कि—
मांयातु लङ्घितवतस्तव मोघभावम्॥

हे शिव ! आपके हाथमें चन्द्रका चिन्ह है, चक्षु में चन्द्रका निवास है, पाद तलमें भी चन्द्रका आकार है, अष्टप्रकारकी आपकी मूर्तियोंमें चन्द्रमा भी एक आपकी मूर्ति है, इसप्रकार आपके पास चन्द्रका सुभिक्ष अर्थात् बहुत्व विद्यमान है। तथापि आध्यात्मिकादि त्रिविध संतापसे एवं अज्ञानान्धकारसे व्याकुल होकर एकमात्र आपके शरणमें आये हुए मुझकी उपेक्षाकर क्या आप मोघभाव यानी अकिञ्चित्कर हो जायेंगे ?

(२६)

प्रभो ! 'सकल पदारथ है जग मांही. भाग्य-विनु नर पावत नांही' आपके पास तो सब कुछ है, परन्तु मेरा भाग्य भी तो होना चाहिये। मन्दभाग्य मनुष्य सुशीतल-अमृत महासागरके समीपमें जाकर भी प्यासा रह जाता है, एक बून्द भी उसे नहीं मिलती। भगवन् ! आपने तो अनेक दीन-हीन जनोंको निहाल कर कृत-कृत्य कर दिये हैं, परन्तु मुझको समझमें नहीं आ रहा है कि–अबतक मेरे लिए आप पत्रपुष्पफलविवर्जित स्थाणु (शुष्क ठुण्ठ) ही क्यों हो रहे हैं, आपका शास्त्रप्रसिद्ध स्थाणु नाम क्या मेरेही हिस्सेमें आया है ?–

सर्वज्ञशम्भुशिवशंकरविश्वनाथ–
मृत्युञ्जयेश्वरमृडप्रभृतीनि देव ।
नामानि तेऽन्यविषये फलवन्ति किन्तु,
त्वंस्थाणुरेव भगवन् ! मयि मन्दभाग्ये ॥

हे देव ! आपके सर्वज्ञ, शम्भु, शिव, शंकर, विश्वनाथ, मृत्युञ्जय, ईश्वर, मृड, आदि नाम, अन्य आपके भक्तोंके विषयमें सार्थक-सफल हो गये हैं, एवं हो रहे हैं, अर्थात् सर्वज्ञ होनेसे भक्तोंके दुःखोंको जाननेवाले, शम्भु होनेसे दिव्य सुखके उत्पादक, शिव होनेसे कल्याण स्वरूप, शंकर होनेसे अखण्डानन्दकारी, विश्वनाथ होनेसे उनके स्वामी-रक्षक, मृत्युञ्जय होनेसे उनकी मृत्यु को जीतने वाले, ईश्वर होनेसे उनके कष्टोंको दूर करनेमें समर्थ, हुए हैं, परन्तु मुझ मन्द-भाग्यके लिए तो आप स्थाणु ही हो गये हों ? क्या वह स्थाणु (शुष्क लकड़) नामही मेरे हिस्सेमें आया है ?

(२७)

भगवन् ! चाहे आप मेरे लिए विफल, विच्छाय, विरस, निःशाख, पत्रपुष्पशून्य, स्थाणु ही बने रहें, परन्तु प्रभो ! मैं आपको कभी छोड़नेवाला नहीं हूँ। विपद्ग्रस्त मेरे मनने अब आपसे दृढ़ प्रेम कर लिया है, मुझे विश्वास है कि–आप भी उस प्रेम बन्धनको तोड़ नहीं सकते। मैं तो तत्पर एवं उत्साह युक्त होकर आप शुष्क-स्थाणु पर शुद्ध-प्रेमरूपी वारिका अनवरत बार-बार सिञ्चन करता रहुँगा, कभी न कभी आप पत्र, पुष्प, फल-शाली, छाया-शाखा एवं रसयुक्त होकर मुझे निहाल करही डालेंगे–

किं वर्णयामि गुरुतां विपदः पदे मां,
स्थाणौ न्ययुङ्क्त यदियं सहसोपदिश्य ।
निःशाखतां सुमनसामनुपेयभावम्,
विच्छायतां विफलतां रसहीनतां च ॥

मैं मेरी विपत्तियोंकी गुरुताका कहांतक वर्णन करूँ ? जिनने मुझे उपदेश देकर, शाखाहीन, पुष्प-शून्य, छाया-रहित, फल-वर्जित, और रसहीन आप जैसे स्थाणु-शिवमें सहसा लगा दिया है, आप शिव निःशाख अर्थात् निर्मूल-निराधार हैं, सुमनसामनुपेयभाव-यानी देवोंको भी दुष्प्राप्य हैं, विच्छाय अर्थात् श्वेत-पीतादि रूपोंसे रहित हैं, विफल अर्थात् फल-कामनासे रहित हैं, एवं रसहीन-अर्थात्-सांसारिक-विषय-रससे नितान्त शून्य हैं, इसप्रकारके यथार्थ स्थाणुरूप आप शिवमें मुझे लगाकर मेरी विपत्तियोंनें सच्चे गुरुका काम किया है !

(२८)

प्रभो ! मेरी दुर्दशाकी तो हद हो गई, उसे मैं आपसे कहांतक सुनाऊँ, सभीप्रकारसे मैं दीन एवं हीन हो रहा हूँ। अब तो मुझे आपकी एक मात्र विमल दयाका ही सहारा है, उसके बिना मुझ पतितका उद्धार नहीं हो सकता। हे दयानिधे ! आपकी पारावार–दयालुता का यशःसौरभ सर्वत्र व्याप्त है, इस समय यदि मेरे उद्धारके लिए आप दयालु न बनें तो आपकी दयालुतामें कलंक अवश्य लगेगा——

विश्रान्ति र्न क्वचिदपि विपद्ग्रीष्मभीष्मोष्मतप्ते,
चित्ते वित्ते गलति फलति प्राक्प्रवृत्ते कुवृत्ते।
तेनात्यन्धं सपदि पतितं दीर्घदुःखान्धकूपे,
मामुद्धर्तुं प्रभवति भव ! त्वां दयाब्धिं विना कः ॥

हे भव ! विपद्रूपी गर्मीके भयङ्कर तापसे तपे हुए चित्तमें थोड़ी-सी भी विश्रान्ति (शान्ति) नहीं है। धर्मरूपी धन क्षीण हो गया है, और पुराना कुवृत्त यानी दुराचार दुःखरूपसे फलीभूत हो रहा है। इससे मैं महादुःखके अन्धकूपमें पड़ा हुआ हूँ, आप दयासागरके बिना मेरा उद्धार कौन कर सकता है ?

(२९)

अरे रे ! दीनानाथ ! आपके समक्ष मैं भरपेट रोया, चिल्लाया, बिल्बिलाया, आपको खरी खोटी सुनाई, परन्तु आपने तो मुझे कुछ भी आश्वासन न दिया, आखिर बात क्या है ? क्या आप मुझसे रूठ तो नहीं गये हैं ? या आलसके वश हो खर्राटे तो नहीं तान रहे हैं ? प्रभो ! चाहे मैं कैसा भी हूँ, परन्तु मैं आपके विमल-प्रेमका भीखारी बन चुका हूँ। 'कार्यं साधयामि वा शरीरं पातयामि' का दृढ निश्चय कर आपके द्वार पर पड़ा हुआ हूँ, मुझे विश्वास है कि—अस्मिन् जन्मनि वा जन्मान्तरे वा आप कभी न कभी मौन-मुद्रा खोलकर मेरे लिए अभय-घोषणा करही देंगे—

उदञ्चय मुखं मनागभयघोषमुद्घोषय,
प्रयच्छ विशदां दृशं गतिविहीनमाश्वासय।
किमन्यदयमागतः कुपितदृष्टिरुत्कन्धरः,
कृतान्त इति माऽस्म भूरविलावलेपालसः ॥

हे विभो ! जरा मुख तो खोल, अभयवाणी की घोषणा कर, निर्मल-दृष्टि प्रदान कर और मुझे गति-हीनको संतोष दे। अधिक क्या कहूँ ? यह क्रुद्ध एवं उंची-गर्दन किए मृत्यु सन्मुख आ रहा है। देखना कहीं आप गहरे-आलसमें ही न रह जाँय।

(३०)

प्रभो ! क्या आपने यह मेरी दीन-प्रार्थना सुनी या नहीं ? अगर नहीं सुनी है, तो आपके दरबारमें एक शिष्टमण्डल (डेपूटेशन) भेज कर पुनः यही दीन-प्रार्थना आपके कान तक पहुँचाता हूँ——

अयि प्रमथनायक ! त्रिजगतामधिष्ठायक !,
प्रसन्नमुख ! षण्मुख ! त्रिदशवन्द्यनन्दीश्वर ! ।
निवेदयत भक्तितश्चरणकिंकरेणार्पितम्
पुरः पुररिपोरिमं विकचवाक्यपुष्पाञ्जलिम् ॥

हे त्रिभुवनके अधिष्ठाता, प्रमथादिगणोंके नेता, गणपतिजी ! हे प्रसन्नमुखवाले, षडानन कार्तिकेय स्वामीजी ! हे देवोंके भी वन्दनीय नन्दीश्वर ! मुझ चरणकिंकरकी भक्तिपूर्वक दी हुई, इस दीन-प्रार्थनारूपी पुष्पों की अञ्जलि भगवान् श्रीशङ्करजीके चरणोंमें समर्पण करें।

अथवा स्नेहमयी, दयामयी, अमृतमयी-जगज्जननी माता पार्वतीके द्वारा भी यह प्रार्थना आपके पास पहुँचाता हूँ। कोमल हृदया माता अवश्य ही सिपारश कर आपको मेरी तरफसे राजी कर देंगी——

देवि ! प्रपन्नवरदे ! गुणगौरि ! गौरि !
आकूतवेदिनि ! निवेदयितुं प्रसीद।

हे मातः ! हे देवि ! हे शरणागतको वर देनेवाली ! हे गुण गौरि ! हे हृदयके भावोंको जाननेवाली गौरि ! तुमही कभी मौका पाकर मेरी इस दीन-प्रार्थना को भगवान्-श्री शङ्करके आगे निवेदन करनेके लिए प्रसन्न होजाओ।

योगतत्त्व-मीमांसा

(द्वितीयखण्ड–पूर्व प्रकाशितसे आगे)

(लेखक—श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामीजयेन्द्रपुरीजी महाराज मण्डलेश्वर)

अब क्रम प्राप्त समाधिका स्वरूप कहते हैं—चित्त की अवस्था—विशेषका नाम समाधि है, आत्माका धर्म समाधि नहीं है, किन्तु चित्तका धर्मही समाधि है। चित्तकी ५ अवस्था होती हैं—(१) क्षिप्त (२) मूढ़ (३) विक्षिप्त (४) एकाग्र और (५) निरोध। अत्यन्त चञ्चल रजः प्रधान कामक्रोधादिपरायण चित्तकी अवस्थाका नाम क्षिप्त है। विवेकादि कार्य करनेमें असमर्थ निद्रा आलस्यादि वृत्ति वाले तमः प्रधान चित्तकी अवस्थाका नाम मूढ़ है। जो चित्त रजः प्रधान हो काम क्रोध परायण व चञ्चल हो परन्तु कदाचित् स्थिर भी हो जाता हो अर्थात् चञ्चलता जिसमें अति अधिक हो, थोड़ीसी स्थिरता भी हो, उस चित्तका नाम विक्षिप्त है। विजातीय वृत्तिके व्यवधान रहित सजातीय प्रत्यय प्रवाह शील, तैलधाराकी तरह एकतान चित्तका नाम एकाग्र है। इस एकाग्र अवस्थाका परिपाक हो जाने पर सर्वथा विक्षेपशून्य स्थिर चित्त वृत्तिका नाम सविकल्प समाधि है। इस अवस्थामें यद्यपि अतिसूक्ष्मवृत्ति का प्रवाह, विना प्रयत्नसे चलता रहता है, परन्तु प्रतीत नहीं होता है। इसी अवस्थाका वर्णन करते हुये भगवान्ने कहा है—

यथादीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता [गी० ६—१]

इस अवस्थामें ध्याता ध्यान ध्येयका भेद बना हुआ है। सर्वथा वृत्तिशून्य चित्तकी अवस्था निर्विकल्पसमाधि है। इस निर्विकल्प समाधिका वर्णन पातञ्जल योग सूत्रमें किया है—

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। [३- ३]

अर्थात् ध्यानका जब ध्येयरूपसेही भास होवे, जल में घुले हुये लवणकी तरह ध्येयस्वरूपमें मिल जानेके कारण पृथक् भास न होवे, ध्यानका स्वरूप शून्यकी तरह होजावे, उस अवस्थाका नाम निर्विकल्प समाधि है। प्रथम कही हुई सविकल्प समाधि अङ्ग व साधन है और यह निर्विकल्प समाधि अङ्गी व फल है। समाधि का विशेषरूपसे निरूपण हम प्रथम कर आये हैं।

शाण्डिल्योपनिषत्में समाधिका स्वरूप इस प्रकार कहा है—

'अथ समाधिः। जीवात्मपरमात्मैक्यावस्था, त्रिपुटीरहिता, परमानन्दस्वरूपा, शुद्धचैतन्यात्मिका भवति [१-११]

अर्थ—अथर्वा नाम वाले ऋषि, शाण्डिल्य ऋषि से कहते हैं—

हे शाण्डिल्य! अब समाधिका स्वरूप सुनों—जीवात्मा परमात्माकी एकतारूप, त्रिपुटीरहित, परमानन्द, शुद्धचैतन्यस्वरूप, जो चित्तकी अवस्था है, उसको समाधि कहते हैं।

'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक सविकल्प समाधिके अभ्याससे चित्तका विलय हो जाने पर चैतन्यमात्र अवस्थाका नाम निर्विकल्प समाधि है। और अमृतनादोपनिषत्में समाधिका स्वरूप इस प्रकार कहा है—

समं मन्येत यल्लब्ध्वा सः समाधिः प्रकीर्तितः। [१७]

अर्थात् जिसको पाकर समता-एकताका बोध होवे उस अवस्थाका नाम समाधि है।

और तेजोबिन्दूपनिषत्में भी समाधिका वर्णन है।

निर्विकारतया वृत्या ब्रह्माकारतया पुनः।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते ॥ ३७ ॥

अर्थ—'आत्माको निर्विकार होनेसे वृत्यादि विकार आत्मामें नहीं बन सकता है' इस ज्ञानके अनन्तर वृत्ति का विलय हो जानेसे अथवा जैसे बरफ गलनेके अनन्तर

जलाकार हो जाता है, इसीप्रकार अभ्यास वैराग्यके बलसे वृत्तिके विलय हो जाने पर जो वृत्तिका अच्छी तरह विस्मरण है, इसका नाम समाधि है।

और योगतत्त्वोपनिषत्में भी जीव व परमात्माकी समता यानी अभेद अवस्थाका नामही समाधि कहा है—

'समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः' [१०७]

और योगचूडामण्युपनिषत्में समाधिका स्वरूप इस तरह कहा है—

'ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते' [११२]

अर्थात् १२ प्राणायामका १ प्रत्याहार कहा है, और १२ प्रत्याहारकी एक धारणा होती है, १२ धारणाका एक ध्यान कहा है, और १२ ध्यानकी एक समाधि कही है, यानी २०७३६ प्राणायाम हो जाने पर एक समाधि होती है।

और श्रीजाबाल दर्शनोपनिषत्में जीव व परब्रह्मका जो एकत्व (अभेद) निश्चय है, उसकी उत्पत्तिका नाम समाधि कहा है—

समाधिसम्विदुत्पत्तिः परजीवैकतां प्रति ॥ १ ॥

जाबालदर्शनोपनिषत्में 'शिवोहम्' इस निश्चयका नाम भी समाधि कहा है—

सदा साक्षिस्वरूपात्वाच्छिवएवास्मि केवलः।

इति धी र्या मुनिश्रेष्ठः सा समाधिरिहोच्यते॥१०-५॥

अर्थ—दत्तात्रेय महाराज कहते हैं—हे मुनिश्रेष्ठ सांकृत्ति! आत्माको सदा शिवस्वरूप होनेसे केवल अद्वितीय 'शिवोहम्' इस निश्चयका नाम वेदान्तशास्त्र में समाधि कहा है। अतएव ज्ञानी सदा समाधिनिष्ठ है। और वाराहोपनिषत्में समाधिका वर्णन इस प्रकार कहा है—

सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भवति योगतः।

तथात्ममनसो र्योगं समाधिरभिधीयते॥

अर्थ—जलमें डाला हुआ लवण जैसे जलरूप हो जाता है, वैसेही अभ्यास वैराग्यके सबबसे आत्मामें मनका विलय होकर आत्मासे अभिन्न हो जानेका नाम समाधि है।

और त्रिशिखीब्राह्मणोपनिषत्में 'सोहम्' इस चिन्तनकी विस्मृतिका नाम समाधि कहा है—

सोहं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनं ध्यानमुच्यते ॥ ३१ ॥

ध्यानस्यविस्मृतिः सम्यक् समाधिरभिधीयते ॥ ३२ ॥

अर्थ—'सोहम्' 'सोहम्' इसप्रकार चिन्मात्र ब्रह्म की चिन्ताका नाम ध्यान है, और ध्यानके परिपक्व हो जाने पर वैराग्यके बलसे ध्यानकी सर्वथा विस्मृति हो जाना, अर्थात् प्रत्यगभिन्न चैतन्य ज्योतिस्वरूप ब्रह्म का प्रगट होजानेका नाम समाधि है।

समाधि दो प्रकारकी होती है (१) जड़ समाधि और (२) चेतन समाधि, आत्मासे भिन्न जड़ पदार्थमें धारणा ध्यानके परिपाकसे जो समाधि होती है उसका नाम जड़ समाधि है, यह समाधि सकामको भावनाके अनुसार ऐश्वर्यको देती है, और निष्कामभावसे यदि इस समाधिका अनुष्ठान किया जाय तो चेतन समाधि ही में इसका पर्यवसान होता है।

जड़समाधिका फल

जड़ समाधिका फल पातञ्जल योगशास्त्रके तृतीय पादमें विस्तारसे कहा है—

'परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम्' ॥१६॥

अर्थात् धर्म, अवस्था, लक्षण, रूप परिणामत्रय के संयमसे भूत भविष्यत व वर्तमान सब पदार्थोंका ज्ञान होता है।

'त्रयमेकत्र संयमः' एक विषयमें धारणा ध्यान एवं समाधिका नाम संयम है।

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरः

तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥१७॥

शब्द अर्थ तथा ज्ञानोंका परस्पर अध्यासके सबब से संकर हो रहा है, इनके परस्पर विभागके संयमसे सब भूतोंकी भाषाका ज्ञान होता है।

संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥

संस्कारोंका संयमद्वारा प्रत्यक्ष करनेसे पूर्वजन्म का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥

दूसरेके चित्तमें संयम करनेसे दूसरेके चित्तका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है यानी दूसरे के मनकी बात जान सकता है।

कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे
चक्षुप्रकाशाऽसम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥ २१ ॥

शरीरके रूपमें संयम करनेसे रूपकी ग्राह्य शक्तिका प्रतिबन्ध हो जाता है, ग्राह्यशक्तिके प्रतिबन्ध होनेसे दूसरेका चक्षु उस शरीरको ग्रहण नहीं कर सकता है, अन्तर्धानकी सिद्धि हो जाती है।

'सोपक्रमंनिरुपक्रमं च कर्म तत्संयमाद्-
परान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा' ॥ २२ ॥

आयुका देनेवाला कर्म दो प्रकारका होता है, १ सोपक्रम २ निरुपक्रम। थोड़े कालमें फल देकर समाप्त हो जानेवाला, फल देनेमें प्रवृत्त कर्मका नाम सोपक्रम है। कालान्तरमें फल देनेवाला, फल देनेमें अप्रवृत्त कर्म का नाम निरूपक्रम है, इस प्रारब्धरूप धर्माधर्ममें संयम करनेसे मरणका ज्ञान होता है, अर्थात् 'कब शरीर छूटेगा' यह निर्णय होता है। अथवा अरिष्टोंसे भी मरणकालका निश्चय होता है।

अरुन्धतिं ध्रुवं चैव, नभोमन्दाकिनींतथा।
स्वनासाग्रञ्च चन्द्रांकं मायुर्हीनो न पश्यति ॥
पांसुपङ्कादिषु न्यस्तं, चरणं खण्डितं यदि।
स्नानाम्बुलिप्तगात्रस्य, यस्यास्यं प्राक्प्रशुष्यति ॥
गात्रेष्वार्द्रेषु सर्वेषु, सूर्यादिद्वयदर्शनम्।
स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु, स्वपदानामदर्शनम् ॥
पिहिते कर्णयुगले, यस्य घोषानुपश्रुतिः।
अदर्शनं स्वशिरसः, प्रतिबिम्बे जलादिषु ॥
छिद्रप्रतीतिश्छायायां, सचिरंनैव जीवति।

अर्थ—अरुन्धति, ध्रुव, आकाश गंगा, और अपनी नासिकाके अग्रभागको व चन्द्रमागतचिन्होंको जब प्राणी न देखे तो समझ लेना कि—अब अपनी आयु नष्ट हो गई है। वालु व पंकादिकोंमें रखा हुवा चरण यदि खण्डित हो जावे तो समझ लेना अब अधिक जीवन नहीं है। स्नान करने पर सब अंगोंसे प्रथम यदि मुख सूखता है, अन्य सब अंग गीले ही हों तो भी समझना मृत्यु समीप है। और सूर्य चन्द्रादिक सब पदार्थ जब दो दो दीखने लगे, तब भी जान लेना कि—अब अधिक जीवन नहीं है। और वृक्षोंमें यदि सुवर्ण की प्रतीति होवे तो भी समझ लेना, अब अधिक आयु नहीं है। और अपने पैर यदि न दीखे तो भी आयु को नष्ट हुई जान लेना। और कानोंको बन्द करने पर यदि शरीरके भीतरका शब्द सुनाई नहीं देवे तो भी आयु नष्ट हुई समझना। और यदि जलादिगतप्रतिबिम्बमें अपना शिर न देखे तो तब भी आयु नष्ट हुई समझना, और अपनी छायामें यदि छिद्रोंकी प्रतीति होवे तो समझ लेना अब चिरंकाल जीवन नहीं है।

ज्योतिर्वानेत्रेऽवष्टब्धे न पश्यति।
तथायमपुरुषान् पश्यति ॥
पितॄनतीतानकस्मात्पश्यति।
स्वर्गमकस्मात्सिद्धान् वा पश्यति ॥

'विपरीतंवा सर्वमनेन जानात्यपरान्तमुपस्थितम्।
कृपणोऽपि वदान्यः स्यात्, वदान्यः कृपणो यदि।
प्रकृते र्विकृतिश्चेत्स्यात्, तदा पञ्चत्वमृच्छति ॥

योगभाष्यमें मरणकालके सूचक ये अरिष्ट भी बतलाये हैं—

नेत्रके गोलकको अंगुलीसे एकतरफ दबाने पर ज्योति दीखती है, यह जब न दीखे, तब मरण कालको आया समझे।

श्यामरंगके काले, दाढ़वाले यमदूत, यदि स्वप्नादिकमें दीखे तो मरणको निकट समझना।

यदि अपने मृत मातापितादि अकस्मात् देखनेमें आवें तो समझना मरण समीप ही है।

और यदि स्वर्ग अथवा बहुतसे सिद्धपुरुषोंका अकस्मात् दर्शन हो जावे तो भी मरण समीप समझना।

अथवा प्रकृतिका सर्वथा पलट जाना भी मरण कालका ज्ञापक है।

जैसे—कृपण भी अत्युदार हो जावे, और अत्यन्त उदार भी कृपण हो जावे, इसीप्रकार और भी जब प्रकृतिका विपर्यय हो जावे तब निश्चय कर लेना कि—अब यह मृत्युको प्राप्त होवेगा।

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥

सुखियोंमें मित्रताकी भावना करनेसे मैत्रीके बल को प्राप्त होता है, जिससे जीवोंके हितमें परायण होने से जीवोंका प्रिय होता है, दुःखियोंमें करुणाकी भावना करनेसे प्राणियोंका दुःखसे उद्धार करनेमें समर्थ होता है, 'पुण्यशील पुरुषोंको जानकरके प्रसन्न होना, इसको मुदिता कहते हैं, इस मुदिताका अभ्यास करनेसे मुदिता का बल प्राप्त होता है, जिससे माध्यस्थ्य व समभावकी प्राप्ति होती है।

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥

हस्तिके बलमें संयम करनेसे हस्तिके समान बलवान् होता है, गरुड़के बलमें संयम करनेसे गरुड़के तुल्य बली होता है, एवं वायु आदिके बलमें चित्त रखकर धारणा ध्यान समाधि करनेसे वायु आदिके तुल्य बलवान् होता है।

प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥२५॥

चित्तमें संयम करनेसे चित्तका साक्षात्कार होता है, चित्त-साक्षात्कारका नाम ज्योतिष्मती प्रवृत्ति है, इससे सूक्ष्म, व्यवहित, व विप्रकृष्टका ज्ञान होता है।

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ २६ ॥

सूर्यमें चित्त रखकर धारणा, ध्यान व समाधि करनेसे पाताल एवं नरकसे लेकर ब्रह्मलोक—सत्यलोक पर्यन्त चतुर्दश-भुवनका ज्ञान होता है।

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥

चन्द्रमें संयम करनेसे ताराव्यूहका ज्ञान होता है।

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥

ध्रुवमें संयम करनेसे ताराओंकी गतिका साक्षात्कार होता है।

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९ ॥

नाभिचक्रमें संयम करनेसे कायव्यूह अर्थात् शरीर की रचना का साक्षात्कार होता है।

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥

कण्ठ-कूपमें संयम करनेसे भूख-प्यासकी निवृत्ति होती है। जिह्वा-मूलके नीचेके भागका नाम तन्तु है, तन्तुके नीचे कण्ठ है, कण्ठके नीचेका भाग कूप है।

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ ३१ ॥

कूपके नीचले भागमें कुण्डलित सर्पके समान कूर्माकार नाड़ीका नाम कूर्मनाड़ी है, इस नाड़ीमें संयम करने से चित्तकी स्थिरता होती है।

मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥

ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित ज्योतिमें संयम करनेसे सिद्धोंका दर्शन होता है।

इसप्रकार जड़ समाधिका फल, योगशास्त्रमें बहुत कहा है। विस्तारके भयसे यहां अधिक नहीं दिखाते हैं।

इसप्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, गणेश, दुर्गादिकी मानसादि प्रतिमाओंमें संयम करनेसे ब्रह्मादिका साक्षात्कार होता है, उनसे भाषण कर सकता है, वर-प्राप्ति एवं उपदेश-ग्रहण भी कर सकता है।

परन्तु पूर्वोक्त प्राकृतिकसंयमसे जो ऐश्वर्य एवं सिद्धियां प्राप्त होती हैं, ये सब आत्मविषयक समाधिमें विघ्नरूप हैं, अतः विवेकी मुमुक्षुको प्राकृतिक ऐश्वर्य-सिद्धिकी लालसामें नहीं फंसना चाहिये।

चेतन समाधिका फल

चेतन-समाधिका फल, तत्त्वसाक्षात्कार है। अतएव योग-शास्त्रमें कहा है—

स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम्।

आत्मामें संयम करनेसे पुरुष (आत्मा) का साक्षात्कार होता है। स्वार्थ नाम पुरुष व आत्माका है—परार्थ नाम देहादिका है 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' यह श्रुति सम्पूर्ण अनात्म-प्रपञ्चको परार्थ-आत्मार्थ बतलाती है, आत्मा किसी दूसरेके लिए नहीं है, यह बात सर्वानुभवसिद्ध है।

शंका—देह स्त्री-पुत्रादिक सर्वपदार्थ आनन्दके लिए अपेक्षित हैं, आत्माके लिये नहीं?

उत्तर—'आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्' 'अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादि श्रुति प्रमाणसे आत्मा आनन्दरूप ही है, अत्यन्त प्यारा होनेसे आनन्द आत्मा ही है, जो आत्मा नहीं है, वह अत्यन्तप्यारा भी नहीं है, पुत्रादि तभीतक प्यारे होते हैं, जबतक वह आत्माके उपकारी होते हैं, इसलिये अपना स्वरूप ही आनन्द है, यही अत्यन्त प्यारा है, आत्मा साक्षात्कारका नाम मोक्ष है। अनात्मदर्शनका नाम भोग व बन्ध है। अतः योगशास्त्रमें कहा है—

सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः
परार्थत्वात्, स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम्॥ ३५॥

सत्व, रज एवं तमोगुण और पुरुष अत्यन्त असंकीर्ण (स्पर्श-शून्य, परस्परविरुद्ध) हैं। विषयाकार वृत्तिदशामें सत्वरूपवृत्तिके साथ पुरुषका अविवेकसे भेद नहीं भासता है। प्रत्ययके साथ पुरुषका अविवेक है, इसीको 'प्रत्ययाविशेष' कहते हैं, इसीका नाम भोग है, क्योंकि—वह वृत्तिरूप प्रत्यय, प्राकृतिक होनेसे परार्थ-दृश्य है। और स्वार्थरूप द्रष्टा—पुरुषमें संयम करनेसे पुरुषका साक्षात्कार होता है। बुद्धि वृत्तिरूप पुरुषाकार प्रत्ययसे पुरुष नहीं दीखता है, किन्तु पुरुष ही आत्माकार वृत्तिको देखता है। इसलिये वेदमें कहा है—

'विज्ञातारमरे! केन विजानीयात्'

याज्ञवल्क्यजी मैत्रेयीसे कहते हैं—अरे मैत्रेयी! सबके द्रष्टाको कौनसाधनसे देखें? ज्ञानके साधन नेत्रादिक मायिकपदार्थोंके देखनेमें ही चरितार्थ होते हैं, किन्तु पुरुष स्वयंप्रकाश है, पुरुषविषयक संयम, जबतक अपना प्रधान कार्य-पुरुषतत्त्व साक्षात्कारको पैदा नहीं करता है, तबतक जिन-जिन विभूतियोंको पैदा करता है, उन सब विभूतियोंको भगवान् पतञ्जलि दिखाते हैं—

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते॥३६॥

पुरुषमें धारणा, ध्यान, समाधिके परिपाकरूप संयम की सिद्धि होनेपर प्रातिभ, श्रावण, वेदन, आदर्श, आस्वाद, वार्तादिक-सिद्धियें पैदा होती हैं। मनकी जो अतीत, अनागत, व्यवहित, विप्रकृष्ट, सूक्ष्म पदार्थ विषयक ज्ञान की सामर्थ्य है, उसका नाम प्रातिभ है। श्रोत्र-इन्द्रिय की जो दिव्य-शब्द श्रवण की शक्ति है, उसका नाम श्रवणसिद्धि है, एवं त्वक् इन्द्रिय की जो दिव्य-स्पर्शग्रहण करने की सामर्थ्य है, उसका नाम वेदन है, और चक्षु इन्द्रिय की जो दिव्य रूप ग्रहण करने की शक्ति है, उसको आदर्श कहते हैं, और रसना की जो दिव्य-रस ग्रहण की शक्ति है, उसको आस्वाद कहते हैं, और नासिकाकी जो दिव्य गन्ध ग्रहण की शक्ति है, उसका नाम यहाँ वार्ता है।

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः॥ ३७॥

प्रातिभ आदिक जितनी भी पूर्व-सिद्धि कहीं है, ये सब व्युत्थान कालमें होनेवाली हैं, पुरुषके साक्षात्कारमें प्रतिबन्धक होनेसे विघ्नरूप हैं।

इति द्वितीय खण्डः समाप्तः।

शिव-भक्त गाथा

(लेखक—सेठ गौरीशंकर गनेड़ीवाला)

किसी समय इस आर्यावर्त देशमें चित्रवर्म्मा नामक एक प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा हुआ था। कहा जाता है कि—वह दुराचारियोंके लिये यमराज तथा सदाचारियोंके लिए धर्मराजके समान था। सभी शत्रु उसके पराक्रमसे कांपते थे। उससमय वह राजा संसारमें अद्वितीय पुण्यात्मा कहाता था। चारों ओर उसकी यशश्चन्द्रिका फैल गयी थी। उसीके समान गुणोंसे सम्पन्न उसके एक पुत्र भी था। वह राजा शिव और विष्णुमें अभेद मानता हुआ दोनोंकी पूजा किया करता था।

बहुत दिनोंके बाद राजाके एक कन्या उत्पन्न हुई। सब सुलक्षणोंसे युक्त, उस कन्याको पाकर राजा ऐसा प्रसन्न हुआ, जैसे पार्वतीको पाकर हिमालय और लक्ष्मीको पाकर समुद्र प्रसन्न हुआ था। कुल—पुरोहित एवं अन्यान्य विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें दान-दक्षिणासे सन्तुष्ट करके राजाने उसकेजन्मका फलाफल पूछा। उनमेंसे एक भविष्यद्वेत्ता विद्वान्ने कहा कि—हे राजन्! आपकी यह कन्या पार्वतीके समान सती, दमयन्तीके समान रूपवती, और लक्ष्मीके समान गुणवती होगी, तथा इसका नाम सीमन्तिनी होगा। यह दस हजार वर्षतक अपने पतिके साथआनन्द करेगी। उन्हींमें से एक विचारवान् ब्राह्मणने कहा हे महाराज! इस कन्याके चौदहवें वर्षमें वैधव्ययोग पड़ा है। इस प्रकार ब्राह्मणोंके द्वारा दुविधाकी बातें सुनकर राजा बड़े चिन्तित हुए। अन्तमें सब ब्राह्मणोंकी विदाई करके वे राजकाजमें लग गये।

उधर राजकुमारी बड़ी होकर जब ब्याहने योग्य हो गयी, तब एक दिन उसने अपनी किसी सखीसे अपने वैधव्ययोगकी चर्चा सुनी, तबसे उसके चित्तमें एकप्रकारका वैराग्य-सा हो आया। इसलिए वह मुनिपत्नी मैत्रेयीके पास गयी और बोली—हे मातः! भयसे विकल होकर मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। अतएव आप कोई ऐसा उपाय बतलानेकी दया करें, जिससे स्त्रियोंको वैधव्ययोग न हो, और वे चिरकालतक सौभाग्यवती बनी रहें। मैत्रेयी बोली—हे पुत्री! तुम शिव पार्वतीकी शरणमें जाओ, और नियमसे स्नानादि करके प्रति सोमवारका व्रत करो। इससे तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूर्ण होंगी। क्योंकि भावी (प्रारब्ध) भी शिवाराधनसे मिट सकती है। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी (रामायण) विधिवत् लिङ्गार्चन एवं पूजन-ध्यानसे अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा। प्रतिदिन उनके नमस्कारमात्रसे ही धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष मिल जाता है। उनके केवल 'शिव' नामके जपनेसे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इसलिए हे राजपुत्री! तुम शिवालयमें जाकर यही उपाय करो।

राजकुमारी मुनिपत्नीके कथनानुसार शिवार्चनमें लग गयी। कुछ दिनोंके बाद राजा इन्द्रसेनके पुत्र चन्द्राङ्गदसे सीमन्तिनीका विवाह हुआ। राजा इन्द्रसेन महाराज नलकी धर्मपत्नी दमयन्तीके पुत्र थे। राजा चित्रवर्माने सीमन्तिनीका विवाह बडे धूमधामके साथ किया। तदुपरान्त चन्द्राङ्गद भी यहीं (श्वशुरगृहमें) रहने लगे।

एक दिन अपने मित्रोंके साथ राजकुमार नाव पर सवार होकर यमुनाजीमें जल-क्रीडा कर रहे थे। संयोग-वश नौका भ्रमरमें पड़ गयी, और निषाद सहित वहीं डूब गये। यमुनाजीके दोनों तटों पर बैठे हुए लोगोंने हाहाकार मचाया। यह दुर्घटना देखकर लोग दुःखी

हुए। महाराज चित्रवर्मा तो यह समाचार सुनते ही मूर्च्छित होगये। वृद्धोंके समझाने-बुझाने पर उन्हें कुछ शान्ति मिली। चित्रवर्माने अन्तःपुरमें जाकर अपनी रानी तथा कन्याको समझाया। अन्तमें रानी विलाप करती हुई बोली—"हाय दुर्दैव! हाय विधाता!! आज तकका किया हुआ देवाराधन भी किसी काम नहीं आया। लोग कहते हैं "मृषा न होहिं देव-ऋषि-वाणी" परन्तु हाय! आज मुनिपत्नी मैत्रेयीका भी कथन मिथ्या होगया! कुमारीने जिस निमित्तसे श्रीशङ्करजीका ध्यान और पूजन किया था, वह भी व्यर्थ हुआ। अब क्या किया जाय!" इत्यादि विलपती हुई स्त्रीको राजाने समझा-बुझाकर शान्त किया।

इधर चन्द्राङ्गदके डूब जाने पर उनके भाइयोंने चित्रवर्माको कैद करके राज्य छीन लिया।

इधर जलमें डूबकर चन्द्राङ्गदने नागनारियोंको देखा। जलमें कल्लोल करती हुई नागिनोंका ध्यान जब राजतेजसे चमकते हुए उस राजकुमार पर गया, तो वे उसे पाताललोकमें ले गयीं। वहाँ राजकुमारने अनेक अलौकिक चीजें देखीं। चमकते हुए सिंहासन पर विराजमान तक्षकको देखकर राजकुमार बड़ा चकित हुआ। पातालपति तक्षकने राजकुमारसे पूछा—"हे राजकुमार! तुम डरो मत, धीरज धारण करो, और यह बतलाओ कि—तुम किसके पुत्र हो?" राजपुत्र बोला—मैं भूलोक में निषध देशके राजा नलके पुत्र इन्द्रसेनका पुत्र हूँ। आज आपके दर्शनोंसे मैं कृतार्थ होगया। तक्षकने कहा कि—तुम देवताओंमें किसदेवको सर्वश्रेष्ठ समझते और पूजते हो? राजपुत्र बोला—हे पातालेश्वर! हम लोग पार्वतीपति श्रीशङ्करजी की पूजा करते हैं। हमारे कुलके वे ही पूज्य देवता हैं। जिनके अंशसे रजोगुणधारी ब्रह्माजी ससार की रचना करते हैं, जिनके सात्त्विकगुणों द्वारा विष्णु भगवान् संसारका पालन-पोषण करते हैं, और जिनके तमःप्रधान अंशको लेकर रुद्ररूपधारी शङ्करजी संसारका संहार करते हैं। अर्थात् जो सभी देवी-देवताओंके भी आदि कारण, बड़ेसे भी बड़े तथा छोटेसेभी छोटे तीनों लोकके आदि कारण, एक, अद्वितीय, निर्विकार, सच्चिदानन्द और ब्रह्मस्वरूप हैं, ऐसे श्रीशङ्करजी हमारे पूज्य देवता हैं। हम उन्हींके पूजन-भजनमें लगे रहते हैं। जिन भगवानको भिन्न-भिन्न मतानुयायी भिन्न-भिन्न स्वरूप और नामसे पुकारते हैं, ऐसे ज्ञानमय अचिन्त्य भगवान् शङ्कर हमारे पूज्य देवता हैं।

यमेकमाद्यं पुरुषं पुराणं, वदन्ति भिन्नं गुणवैकृतेन।
क्षेत्रज्ञमेकेऽथ तुरीयमन्ये, कूटस्थमन्ये स शिवो गतिर्नः ॥९२॥

जिसको विद्वान् लोग एक, पुराण, पुरुष तथा जिसे गुणोंके विकारसे भिन्न कहते हैं, और कोई क्षेत्रज्ञ तथा कोई तुरीय कहते हैं, और अन्य लोग कूटस्थ कहते हैं, वे शिवजी हमारी गति हैं।

यं नास्पृशंश्चैत्यमचिन्त्यतत्त्वं, दुरन्तधामानमतस्स्वरूपम्।
मनोवचोवृत्तय आत्मभाजां, स एव पूज्यः परमः शिवो नः॥९३॥

और जिन ज्ञानमय व अचिन्तनीयतत्त्व तथा अमित तेजवाले शिवजीको आत्मज्ञानियोंके भी मन, वचन की वृत्तियाँ स्पर्श नहीं करती हैं, वे श्रेष्ठ शिवजी हमारे पूजनीय हैं।

यस्य प्रसादं प्रतिलभ्य सन्तो,
वाञ्छन्ति नैन्द्रं पदमुज्ज्वलं वा।
निस्तीर्णकर्मार्गलकालचक्राः,
चरन्त्यभीताः स शिवो गतिर्नः ॥९४॥

जिनकी प्रसन्नताको पाकर विद्वान् लोग इन्द्रपद तथा निर्मलपद (मोक्ष) को भी नहीं चाहते और कर्मकी जंजीर व कालचक्रका उल्लंघन कर निडर घूमते हैं, वे शिवजी हमारी गति हैं।

यस्य स्मृतिः सकलपापरुजां विघातं,
सद्यः करोत्यपि च पुल्कसजन्मभाजाम्।

यस्य स्वरूपमखिलं श्रुतिभिर्विमृग्यं,
तस्मै शिवाय सततं करवाम पूजाम् ॥९५॥

और जिनका स्मरण चाण्डालजन्मवाले मनुष्यों के भी सब पापरूप रोगोंको शीघ्रही नाश करता है, जिनका पूर्णस्वरूप श्रुतियोंसे ढूँढने योग्य है, उन शिवजीका हम सदैव पूजन करते हैं।

यन्मूर्ध्नि लब्धनिलया सुरलोकसिन्धु
र्यस्याङ्कगा भगवती जगदम्बिका च।
यत्कुण्डले त्वहह तक्षकवासुकी द्वौ,
सोऽस्माकमेव गतिरर्धशशाङ्कमौलिः ॥९६॥

स्वर्गकी नदी गंगाजीने जिनके मस्तकमें स्थान पाया है और भगवती जगदम्बिका पार्वतीजी जिनकी गोदमें बैठी हैं, और तक्षक तथा वासुकी ये दोनों सर्प जिनके कुण्डल हैं, वे अर्धचन्द्रवाले शिवजी हमारी गति हैं।

जयति निगमचूडाग्रेषु यस्याङ्घ्रिपद्मं,
जयति च हृदि नित्यं योगिनां यस्य मूर्तिः।
जयति सकलतत्त्वोद्भासनं यस्य मूर्तिः,
स विजितगुणसर्गः पूज्यतेऽस्माभिरीशः ॥९७॥
(ब्राह्मो० ख०)

वेदोंकी शिखाके अग्रभागमें जिनका चरण कमल है, उनकी जय हो। योगियोंके हृदयमें जिनकी मूर्त्ति सदैव रहती है, उनकी जय हो। और जिनकी मूर्त्ति सब तत्त्वोंको प्रकाशित करती है, गुणोंकी सृष्टिको जीतनेवाले वे शिवजी हमसे पूजे जाते हैं।

इसप्रकार अपने इष्टदेव भगवान् शिवजीकी महिमा सुनकर पातालपति प्रेमसे गद्गद् और रोमाञ्चित होकर उस शिवभक्तसे कहा—'हे नृपकिशोर ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम स्वतन्त्रतासे आनन्दपूर्वक होकर यहीं पर विहार करो, क्योंकि तुम श्रीशिवजीके गूढ़ तत्त्वको जाननेवाले भक्त हो। नागराजके ऐसे वचन सुनकर उदारबुद्धिवाले चन्द्राङ्गदने हाथ जोड़कर बड़े हर्षसे कहा—हे नागेश्वर ! मेरा विवाह हो चुका है, उत्तमव्रतवाली, शिव-पूजनमें परायण मेरी स्त्री सती है। मेरे माता-पिता भी मेरे वियोगसे दुःखित होंगे। मैं उनका एकही पुत्र हूँ। वे पुत्र-शोकसे सन्तप्त होंगे। अतः यदि आप मेरे पर प्रसन्न हैं तो यही आज्ञा दें कि—मैं अपने घर जाकर अपने माता-पिताको सुखी करूँ। राजकुमारके ऐसे वचन सुनकर नागराजने चन्द्राङ्गदको अनेक वस्त्राभूषणों द्वारा सन्तुष्ट करके एक दिव्य अश्व पर चढ़ाकर पातालपुरीसे पृथ्वीलोकमें भेज दिया। राजकुमारके साथ—दो पुत्र—जो बड़े वीर थे—कर दिये और राजपुत्रको धन-धान्यसे परिपूर्ण करके यह कहा कि—तुम जब और जहां मेरा स्मरण करोगे, मैं शीघ्रही वहां आ जाऊँगा।

राजकुमार वहांसे यमुनातट पर आकर इधर-उधर घूम रहे थे कि—इसी बीच राजकुमारी भी अपनी सखी-सहेलियोंके साथ यमुना-स्नानके लिये वहां आ पहुँची। राजकुमारने उसे चिन्तित देखकर पूछा—तुम कौन हो ? तुम्हारे इस बाल्यकालमें ही शोकातुर होनेका कारण क्या है ? यह सुनकर राजकुमारी तो लज्जित-सी होकर मौन हो रही, पर उसकी एक सखीने सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजकुमारीके पूछने पर चन्द्राङ्गदने भी अपना कल्पित परिचय देते हुए कहा—हे देवि ! मैंने तुम्हारे पतिको इसी संसारमें देखा है। तुम अपने व्रतमें इसी प्रकार दृढ़ रहो। भगवान् शंकरकी दयासे वे शीघ्रही तुम्हें मिलेंगे। मैं उन्हींका चिरमित्र हूँ और ये दोनों मेरे दूत हैं। मैं एक सिद्ध महात्मा हूँ। अब मैं उनके घर पर चन्द्रांगदके पुनरागमनका शुभ सन्देश सुनाने जा रहा हूँ।

इधर सीमन्तिनी और उसकी सखियां प्रेमसे गद्-गद होकर शिवजीकी महिमाकी भूरि भूरि प्रशंसा करने

और विचारने लगीं कि—मुनिकी स्त्रीने मुझसे जो कहा था कि—बड़ी विपत्ति प्राप्त होने पर भी तुम इस सोमवार व्रतको करना, यह उसीका फल है। उधर राजकुमार अपनी राजधानीमें पहुँचकर एक उपवनमें जा बैठा और अपने शत्रुओंके पास एक दूतको भेज कर संदेश भेजा। दूतने जाकर राजासे कहा कि—इन्द्रसेनको छोड़ दो और उसका राज्य उसे दे दो, नहीं तो उसका पुत्र (चन्द्राङ्गद) पातालपुरीसे ऋद्धि सिद्धिके साथ यहां आ गया है। आखिर, तुम लोगोंको उसके बाणों द्वारा मरना पड़ेगा। इसलिए अभीसे सावधान हो जाओ।

मुनिपत्न्या यदुक्तं मे परमापद्गतापि च।
व्रतमेतत्कुरुष्वेति तस्यैव फलमेव वा ॥ ७४ ॥

इस पर सपत्नीक राजा छोड़ दिये गये। चन्द्राङ्गदके स्वागतके लिए सब लोग नगरसे बाहर आये और बड़ी धूमधामसे उन्हें ले जाकर राजगद्दी पर बैठाया। उधर चित्रवर्माको अपने दामादका आगमन सुनकर अपार हर्ष हुआ। अतः अनेक वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित असंख्य धनके सहित अपनी पुत्री सीमन्तिनीको उसके ससुरालमें भेजा। कुछ ही दिनोंमें उनके आठ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई, और बहुत दिनों तक शिव जीको पूजती हुई सीमन्तिनीने पति समेत सोमवारका व्रत किया। इससे उसने पुनः सौभाग्यको पाया और राज्यसुखको भोग करके अन्तमें वे दोनों शिव धामको गये।

प्रसूत तनयानष्टौ कन्यामेकां वराननाम्।
रेमे सीमन्तिनी भर्त्रा पूजयन्ती महेश्वरम् ॥
दिने दिने च सौभाग्यं प्राप्तं चैवेन्दुवासरात् ॥७७॥
(ब्रह्मोत्तरखण्ड ८० अ०)

आप ही रीझ

(लेखक—ब्रह्मनिष्ठ परमहंस स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी महाराज)

भाई मन! तू नहीं है मन, न तू है तन, किन्तु है सच्चिदानन्दघन, इसमें प्रमाण है श्रुतिवचन। (तत्त्वमसि) 'वह तू है' (अहं ब्रह्मास्मि) 'मैं ब्रह्म हूँ' (अयमात्मा ब्रह्म) 'यह आत्मा ब्रह्म है' (सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म) 'सत्यं ज्ञान अनन्त ब्रह्म है'। भगवान्भी कहते हैं— (वासुदेवः सर्वमिति) 'सब वासुदेवही है' (क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत!) 'सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ एक मुझको ही जान' फिर तुझे विश्वास क्यों नहीं आता? क्यों दूसरोंको रिझाना चाहता है? आप अपने परही क्यों नहीं रीझता? क्यों ठोकरें खाता फिरता है! क्यों दूसरोंकी खुशामद करता फिरता है? क्यों दूसरोंकी चिन्तामें मग्न है? अपनी ही चिन्ता क्यों नहीं करता? अपनेको न जाननेका ही यह सारा दुःख है। अपनेको जान जाय तो न शोक है, न मोह है, न भय है। श्रुति कहती है—

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

जिसने अपनेको जान लिया, उसके लिए सब भूत प्राणी अपने ही हो जाते हैं, एकत्व देखनेवालेको मोह कहां और शोक कहां, कहीं भी नहीं है।

यह अपनेको जाननेका फल है, फिर तू अपनेको क्यों नहीं जानता? अपनी हत्या क्यों करता है! आत्महत्यासे बढ़कर अन्य कोई पाप नहीं है। श्रुति आदेश करती है—

असूर्या नाम ते लोकाः अन्धेन तमसाऽऽवृत्ताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति, ये के चात्महनो जनाः ॥

जो लोग अप्रकाशरूप हैं, अन्धकाररूप तमसे आवृत्त—घिरे हुए हैं, उन लोगोंको आत्म-हत्यारे मरण के पीछे प्राप्त होते हैं ।

स्मृतिमें भी कहा है—

योऽन्यथासन्तमात्मान मन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥

जो आप अन्य-प्रकार का है, और अपनेको अन्य-प्रकारका जानता है, अर्थात् जैसा आप है, वैसा अपनेको नहीं जानता, किन्तु विपरीत-जानता है, उस आत्मघातीने कौन-सा पाप नहीं किया, अर्थात् सब पाप कर लिये ।

जबतक तू हे मन ! दूसरोंको रिझाता रहेगा, तबतक अपनेको नहीं पहिचान सकता, इसलिये सबका रिझाना छोड़कर आपही रीझ ।

हे मंसाराम ! जहां तू आप रीझा, अपने पर रीझा कि—तेरे लिये सर्वत्र चिन्तामणि हो जायगा, जहां तू देखेगा, चिंतामणि ही दिखायी देगी । चिंतामणिके गुण इस प्रकार हैं—जिसके पास चिंतामणि होता है, उसको रोग कभी नहीं होता, राजादिक उसके वश हो जाते हैं, दारिद्र उसको कभी नहीं सताता, उसके शत्रु मित्र हो जाते हैं, उसके घरमें चोर कभी नहीं आते, सदा उसके घरमें उजाला रहता है । आत्म चिंतामणि प्राप्त होनेसे तुझे चिंता, असूया, ईर्षा आदि रोग कभी नहीं सतावेंगे, विवेक राजा तेरे वशमें हो जायगा, इच्छा, तृष्णा, अविद्या दरिद्रता आदि तुझे कभी नहीं व्यापेगी, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि शत्रु तुझसे हार मानकर तेरे मित्र हो जायेंगे, राग, द्वेष, अभिनिवेशादि चोर तेरे अन्तःकरणरूप घरमें कभी प्रवेश नहीं करेंगे, क्योंकि वहां सर्वदा ज्ञानरूपी मणिका उजाला रहेगा । सारांश यह है कि—सर्वथा, सर्वदा सुखी हो जायगा, देश विदेश मारा मारा मत फिर, सेठ, साहूकार, राजा, बाबू-जो धनके मदमें चूर हैं—उनकी स्तुति मत कर, उनके द्वार पर मत भटक, तेरा देश बहुत बड़ा है, सब देश उसी तेरे देशके अन्तर्गत हैं, अपने देशमें रमण कर, अपनोही स्तुति कर, अपनेही गीत गा, अपनी महिमाका दर्शन कर, अपने द्वारकी ही बुहारी दे, उसीको झाड़ पोंछ कर शुद्ध कर ले, फिर तू पवित्रसे पवित्र, मंगलका भी मंगल हो जायगा, समस्त आशाओंको कर दे निर्बीज, अपने परही रीझ, आपही रीझ ।

भाई मनसुख ! किसी छोटी मोटी पाठशालाका पढ़ा हुआ तो तू है नहीं, व्यास महाविद्यालयका महाविद्यार्थी—ग्रेजुएट है, जगद्गुरु शंकररूप शंकराचार्यका छात्र है, उन्होंने तुझे सूर्य भगवान्के शिष्य याज्ञवल्क्य का सिद्धान्त पढ़ाया है, नचिकेताके गुरु यमराजके दर्शनका दर्शन कराया है, ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमारकी शिक्षाकी शिक्षा दी है, उद्दालककी फिलोसोफीका पाठ पढाया है, स्वयं ब्रह्माजीका उपदेश सुनाया है, इनके सिवाय इतने तत्त्वदर्शी, वेदवेत्ताओंके गूढ़ अभिप्राय-कर्णगोचर कराये हैं कि—उन महात्माओंके यदि नाम गिनाने लगूँ तो कई ग्रन्थ बन जांय । इतने गुरुओंसे विद्या पाकर भी यदि तूने अपनी चाल न बदली, अपनीही तीन पांच करता रहा, तो याद रख फिर तेरा कभी भी ठिकाना नहीं लगेगा । गुरुओंसे शिक्षा पाकर उनकी शिक्षानुसार आचरण न करना, गुरुओंका अपमान करना है, गुरु ईश्वररूप हैं, यदि उन्होंने रुष्ट होकर शाप दे दिया, तो तू रसातलको चला जायगा । उपरोक्त गुरुओंने चिरकाल तक ब्रह्मचर्य धारण करके अपने गुरुओं की सेवा शुश्रूषा करके विद्या प्राप्त की थी,

तुझे तो घर बैठे ही सब विद्यायें प्राप्त हो गयी हैं, इसलिये तू महान् भाग्यशाली है। यह तुझ पर ईश्वरका परम अनुग्रह है, यदि अनुग्रह कर्ता दयालु ईश्वर की दयालुताका दुरुपयोग करेगा, तो तू कृतघ्न गिना जायगा। कृतघ्नताके समान दूसरा पाप नहीं है, इसलिये कृतघ्न मत बन, और गुरुओंके सदुपदेशका सदुपयोग करके सुखी और स्वतन्त्र हो जा! सबमें अपनेको ही देख, किसीसे मत खीझ, आप ही रीझ!

मित्र मनीलाल! अपनी कर संभाल, छोड़ दूसरों की देख भाल, तभी छूटेगा जगत जाल! धन की क्यों इच्छा करता है? ऐश्वर्य की क्यों चाहना करता है! सुत क्यों मांगता है? यार क्यों चाहता है? कुटुम्ब की कामनासे क्यों व्यर्थ दुःखी हो रहा है? सुख की खोज में क्यों बावला हो गया है? स्वतन्त्रता की चाहमें क्यों परतंत्र हो रहा है? सर्वज्ञ बननेका मनोरथ करके क्यों अल्पज्ञ बनता है? अमर होने की इच्छासे क्यों वारवार मरता है? जो कुछ इन्द्रियोंसे, मनसे, देखने, सुनने, जाननेमें आता है, अथवा नहीं आता, सब मृगतृष्णाके जलके समान अथवा बंध्यापुत्रके सदृश मिथ्या है, समस्त ब्रह्मांड और ब्रह्मांडका ऐश्वर्यमात्र वाणीका विकार है, परमार्थ कुछ नहीं है, परमार्थ तो तेरा स्वरूप ही है, तू आप ही है, तुझमें ही समस्त विश्व अध्यस्त है। जैसे मृतिका सत्य है, घटादिक वाणीका विकार है, जैसे सुवर्ण सच्चा है, और कटक कंगन आदि वाणीमात्र होनेसे मिथ्या है, और जैसे लोहा वस्तु स्वरूप है, और खड्गादि कथनमात्र होनेसे असत्य हैं, इसी प्रकार केवल तू सत्य, और नामरूपक्रियात्मक जितना विश्व पसारा है, सब कल्पित–आरोपित है। फिर मिथ्या अरोपित की इच्छा करके तू क्यों बाहर भटक रहा है? बाहर भटकना छोड़दे, अपने भीतर दृष्टि कर, सब तू ही है, अथवा सब नहीं है, तू ही है, फिर औरोंके रिझानेका क्यों प्रयत्न कर रहा है? आप ही रीझ।

भाई मनीराम! धन क्यों चाहता है? भाई! तेरे धनसे ही तो सब मालामाल हो रहे हैं। समस्त ब्रह्मांड धन है, देव, यक्ष, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि ब्रह्मांडरूपी धनके सिक्के हैं, मायाने यह ब्रह्मांड रचा है, माया ब्रह्मांड की टकसाल है, तू इस टकसालका स्वामी है, इसलिये तू ही टकसाल है, तुझमेंसे ही सब सिक्के बनते हैं। जैसे राजा की मोहर विना सिक्केके दाम कुछ नहीं होते, जिस पर राजा की मोहर होती है, वह ही सिक्का चलता है, यदि तेरी मोहर देवादि सिक्कों पर न हो, तो सब सिक्के किसी भी मूल्यके नहीं हैं। फिर तू धन क्यों चाहता है, धन की चाहसे ही तू जगसेठ मालामाल होकर भी कंगाल बन गया है। कंगाल है नहीं, मालामाल ही है, फिर भी चाहका परदा पड़नेसे तू अपनेको कंगाल मान रहा है। धनसे सुख की भी आशा नहीं है, धनसे गर्व उत्पन्न होता है, गर्व महान् व्याधि है। धनी को राजाका, चोरका, अग्नि आदिका भय रहता है, निर्धनी को किसीका भय नहीं रहता। धनी चिंतामें रात भर जागता रहता है। निर्धनी पैर फैला कर सोता है। धनी को भाई, भतीजे, कुटुम्बी नोंचते हैं, निर्धनीको कोई नहीं नोचता। जितने झगड़े टंटे होते हैं, सब धनके लिये होते हैं। दानके लिये भी धन की आवश्यकता नहीं है, सबको अभय देना परम दान है, अभय दान धनसे नहीं होता, मात्र मनसे होता है। सबको अभय दान दे, फिर तू निर्भय हो जायगा, निर्भय होते ही सर्वत्र तू अपनेको ही परिपूर्ण देखेगा, अन्य है ही नहीं, तो अन्यको क्यों रिझाता है? अन्यको मत रिझा आपही रीझ।

भाई मन! ऐश्वर्यकी इच्छा करना व्यर्थ है, विश्व भरमें किसीका ऐश्वर्य स्थिर नहीं है, अस्थिर ऐश्वर्यसे क्या लाभ? चार दिन की चांदनी और फिर अंधेरा पाख! ऐसे ऐश्वर्यको विद्वान् धिक्कार देते हैं। मनुष्यका तो कहना

ही क्या है, ब्रह्मादिकका ऐश्वर्य भी स्थिर नहीं है, स्वाधीन भी नहीं है, ईश्वराधीन है। ब्रह्मा, ईश्वर की आज्ञासे सृष्टि की रचना करते हैं, विष्णु, ईश्वर की आज्ञासे सृष्टिका पालन करते हैं, और रुद्र, ईश्वर की आज्ञासे सृष्टि का संहार करते हैं। जो दूसरे की आज्ञासे कार्य करते हैं, उनका स्वतंत्र ऐश्वर्य कहां है? कार्य करना ही दुःख रूप है, क्रियामात्र दुःखरूप है, क्योंकि क्रिया दूसरे बिना नहीं होती और जहां दूसरेके अधीन हुआ फिर ऐश्वर्य कैसा? ऐश्वर्य की इच्छा छोड़ दे, इच्छा छोड़ते ही तू ईश्वरोंका भी ईश्वर हो जायगा। किसीने सच कहा है—

'चाह चमारी, चूहरी, नीचों से भी नीच।
तू तो परब्रह्म है यदि चाह न होवे बीच॥'

इस चाहने ही सबको दास बना रक्खा है! धन्य हैं, वे सुकृति जन, जिन्होंने सब की आशा, सबका भरोसा, छोड़ दिया हैं। आपमें ही संतुष्ट है, आपमें ही तृप्त हैं। श्रीभगवान्ने गीतामें कहा है—

यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टः तस्य कार्यं न विद्यते॥

जिनकी आत्मामें रति हैं, जो आत्मामें तृप्त हैं और आपमें ही संतुष्ट हैं, हे अर्जुन! उन्हें कुछ करना, कराना शेष नहीं है अर्थात् वे कृतार्थ हैं। इसलिये हे मन! ऐश्वर्य की इच्छासे देवादिकको मत रिझा, आपही रीझ।

भाई मन! सुत क्यों चाहता है! सुतसे किसी ने सुख नहीं पाया, कुपुत्र तो प्रत्यक्ष ही दुःख दाता होता है, सुपुत्र भी लालन, पालन, पोषण, शिक्षण आदि अनेक चिन्ताओंमें डालता है। यह विश्व कर्माधीन है, जो कुछ प्राप्त होता है कर्मसे ही प्राप्त होता है। जो जो पूर्व जन्ममें कर आये हैं इस जन्ममें मिलता है, और जो इस जन्ममें करेंगे उत्तर जन्मोंमें प्राप्त होगा। जो यथाप्राप्तमें सन्तुष्ट रहते हैं, वे ही सुखी होते हैं और जो लोग यथा प्राप्तमें सन्तोष नहीं मानते, वे दुःख ही उठाते हैं। राजा सगरने और अंगने पुत्रोंसे कष्ट ही पाया था। वसिष्ठ ज्ञानी होकर भी सौ पुत्रोंके मरण से शोकातुर हुए ही थे। फिर सुतके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है। तू तो विश्व भरका पिता है, सब तेरी ही सन्तान है। सुतकी चाहने तुझे क्षुद्र बना दिया है, नहीं तो तू महान्से भी महान् है। सबको सुतके समान प्यार कर, फिर तू स्वयं प्रेमरूप हो जायगा। प्रेम ही ईश्वरका स्वरूप है, प्रेम ही ईश्वर है, वह ही तेरा आत्मा है, वह तू ही है अपनेको ही प्यार कर, अपनेसे ही प्रेम कर, पूर्णसे प्रेम कर, अधूरेसे प्रेम मत कर! श्रुति कहती है—

'यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति, यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पम् यो वै भूमा तदमृतमथयदल्पं तन्मर्त्यम्।'

जो पूरा है वह ही भूमा है, जहाँ दूसरेको नहीं देखता दूसरेको नहीं सुनता दूसरेको नहीं जानता वह भूमा है, जहां दूसरेको देखता है, दूसरेको सुनता है, दूसरेको जानता है वह अल्प है। अल्प मर्त्य—मरणशील है, और भूमा—पूर्ण अमृत है। जब तू पूरा है तो अधूरेको क्यों चाहता है? पूर्ण आत्मा की ही चाह कर, अधूरे अनात्माकी चाहमें मत उबल, मत सीज, आप ही रीझ!

भाई! दार क्यों चाहता है? दार ही मायास्वरूप है। दार ही संसार है, दार ही बंधन है। ब्रह्मा ब्रह्माणीके वशमें है, विष्णु लक्ष्मीके अधीन हैं, शिव-पार्वतीके परतंत्रमें है, इन्हीं तीनों शक्तियोंने तीनों समर्थ देवोंको भी वशमें कर रक्खा है। स्वरूपसे तीनों देव स्वतंत्र है, शक्तियोंके कारणसे परतंत्र हैं। ज्ञानके बलसे चाहे वे वस्तुतः स्वतंत्र ही हों, परन्तु प्रत्यक्षमें तो परतन्त्र ही दखेनेमें आते हैं क्योंकि शक्तियोंके होनेसे ही

उत्पत्ति, पालन और संहार अनुक्रमसे तीनोंको करना पड़ता है और क्रिया दुःखरूप है, इसमें किंचित् भी संशय नहीं है, दुःखरूप ही नहीं किन्तु असत् और जड़ भी है। असत् जड़ और दुःख रूपका संग करने से ही असंग आत्मा असत्, जड़ और दुःख रूप भासता है। 'जैसा संग वैसा रंग' यह कहावत ठीक ही है। स्त्रीकी चाहसे ही असंग आत्मा, नवमास काल कोठरी में बन्द रहता है और उसमेंसे निकल कर सौ वर्षका जेलखाना भोगता है। जेलखानेमें जो जो कष्ट सहने पड़ते हैं, सबके अनुभव सिद्ध हैं, और शास्त्रोंमें अनेक प्रकारसे विस्तार पूर्वक वर्णन किये हैं, इसलिये उनका विचार तू स्वयं कर सकता है, यहां कहनेसे विस्तार बहुत हो जायगा और फल भी विशेष न होगा। जो स्त्रीकी चाह करता है, उसे स्त्रीकी योनिमेंसे निकलना पड़ता है और पीवसे दूधका पान करना पड़ता है, इस लिये स्त्रीकी चाह मत कर, प्राण अपानको समान कर ले, फिर तुझे अखंड आनन्दका अनुभव होगा, सब स्वाद फीके लगने लगेंगे ! अपनेमें ही स्वाद आवेगा ! मत दूसरोंको रिझा, अपने पर ही रीझ, आप ही रीझ !

भाई मनसुखराम ! कुटुम्बकी क्यों चाहना करता है। सामान्यरूपसे विश्वभर तेरा कुटुम्ब है, क्योंकि सब एक सिलके ही बट्टे हैं। श्रुति भगवती कहती है—

'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।'

'एक सत् अद्वितीय ही सृष्टिसे पूर्वमें था।' सब सृष्टि उसीमेंसे हुई है, तब सब तेरा कुटुम्ब ही है। विशेषरूपसे धृति तेरी माता है, सत्य तेरा पिता है, शान्ति तेरी पत्नी है, विवेक वैराग्य तेरे पुत्र है, उपरति—तृप्ति तेरी पुत्री है, शम, दम, समाधान, सन्तोष तेरे भाई हैं। क्षमा, तितिक्षा, मुमुक्षा, तेरी बहिने हैं। जबतक तू जी रहा है—अथवा यों कहना चाहिये कि— मरा हुआ है, तबतक यह सब तेरा कुटुम्ब है और जब तू मर जायगा अर्थात् जी जायगा, तब तू कुटुम्बरूप अथवा कुटुम्बका भंडार आप ही है; तेरा कोई कुटुम्ब नहीं है, कुटुम्बको मत रिझा, कुटुम्ब पर मत रीझ, अपने पर रीझ, आप ही रीझ !

भाई ! सुख, स्वतन्त्रता, सर्वज्ञता और अमरत्व क्यों चाहता है ? तू स्वयं सुखरूप है, स्वतन्त्र है, सर्वज्ञ है, और अमर है। इस तेरी चाहनाने तुझे सुखरूप को दुःखी, स्वतन्त्रको परतन्त्र, सर्वज्ञको अल्पज्ञ और अमरको मर बना दिया है। यदि तू चाह छोड़दे, तो तू सुखरूप, स्वतन्त्र, सर्वज्ञ और अमर है ही। इस चाहके कारणसे ही तेरा नाम मन हो गया है, इसी चाहके अनुग्रहसे तेरा देहके साथ संग हो गया है, और देहके साथ संग होनेसे तू मरने जीनेका अनुभव कर रहा है, और बीचमें भी अनेक कष्ट उठाता है, और दूसरोंको रिझाता फिरता है, अपनेको भूल गया है। जैसे तू अपनेको समझता है, वैसा तू नहीं है, न तेरा गेह है, न तेरा देह है, न तेरी इन्द्रियां हैं, न तेरा अन्तःकरण है, न तेरे प्राण हैं। तू तो शुद्ध है, बुद्ध है, निर्मुक्त है, अनंग है, असंग है, श्रोत्रका श्रोत्र है, चक्षुका चक्षु है, वाक्का वाक् है, प्राणका प्राण है, अशब्द है, अस्पर्श है, अव्यय है, अनाम है; अगोत्र है, सब उपाधियोंसे वर्जित है, निष्कल है, निरंजन है पावनसे भी पावन है, मंगलोंका भी मंगल है, शिव है, शाश्वत है, पुरातन है, सनातन है, अजर है, अमर है, गुणातीत है, मायातीत है, कायातीत है, सत्य है, ज्ञान है, अनन्त है, उपद्रष्टा है, उपश्रोता है, उपमन्ता है। ये सब नाम तेरे कल्प हुए हैं वस्तुतः तेरा कोई नाम नहीं है। लक्षणासे ये सब नाम तेरे वाचक हैं, तू तो वाच्य है, नहीं तो मन वाणी जिसतक न पहुँच कर लौट आते हैं, वह तत्त्व तू है। सृष्टिके आदिमें, मध्य में और अन्तमें जो तत्त्व है, जिसमें यह समस्त विश्व

अध्यस्त है, वह ही तू है । औरोंका चिन्तन मत कर, अपना ही चिंतन कर, चिन्तन करते करते भीतरही घुसा चला जा, यहां तक कि—चिंतन भी न रहे, चिंतन रहित तू ही रह जाय । जहां तू चिंतन रहित हुआ कि—अजर है, अमर है, निर्भय है, निःशोक है, निर्मोह है, स्वतन्त्र है । अन्तमें यहही कहना है कि—औरोंको मत रिझा, आपही रीझ ।

सच कहा है—

कुं०—रीझत क्यों नहीं आपही, क्यों रिझाय है और ।
अपने रीझे पायगा, परम शान्ति सब ठौर ॥
परम शान्ति सब ठौर, दुःख का लेश न पावे ।
अजर अमर हो जाय, मृत्यु फिर पास न आवे ॥
'भोला' वे ही धन्य, कभी स्वप्ने नहिं खीझत ।
नहीं रिझावत अन्य, आप अपनेमें रीझत ॥

गो-महत्त्व

वन्दनीयाश्च पूज्याश्च गावः सेव्यास्तु नित्यशः ।
गावः कृशातुराः पाल्याः श्रद्धया पितृमातृवत् ॥
[ब्रह्मपुराण]

माता पिताके समान गायें सर्वदा वन्दनीय, पूजनीय, एवं सेवनीय हैं, अतः कृश एवं दुःखी गायेंकी भी श्रद्धापूर्वक पालना करनी चाहिये ।

अमृतमय दूध, दही, मक्खन, धृत्तादिसे, गोबर एवं मूत्रसे अपने प्यारे बच्चोंसे और मरकर अपनी सुखी चमड़ी एवं हड्डोसे भी गायें समस्त संसारको महान् लाभ पहुँचाती हैं । अतएव हमारे शास्त्रकारोंने कहा है—

'गावस्त्रैलोक्यमातरः'

गायें तीनों लोकोंकी माता हैं ।

स्कन्दपुराणमें कहा है—

तृणानि खादन्ति वसन्त्यरण्ये, पिबन्ति तोयान्यपरिग्रहाणि ।
दुह्यन्ति वाह्यन्ति पुनन्ति पापं, गवां रसैर्जीवति जीवलोकः ॥
तुष्टास्तु गावं शमयन्ति पापं, दत्तास्तु गावस्त्रिदिवं नयन्ति ।
संरक्षिताश्चोपनयन्ति वित्तं, गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥
तृणानि शुष्काणि वने चरित्वा पीत्वापि तोयान्यमृतं स्रवन्ति ।
यद्गोमयाद्यैश्च पुनन्ति लोकान् गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥

गायें घास खाती हैं, जंगलमें रहती हैं, अरक्षित जलाशयोंसे पानी पीती हैं, दुही जाती हैं, दर्शनमात्रसे पापोंसे शुद्ध करती हैं, और दूध आदि रस द्वारा समस्त जीवोंको जीवन प्रदान करती हैं, अपने सन्तानके द्वारा बोझ ढोने और खेत जोतनेमें सहायक होती हैं, जब गायें सेवासे सन्तुष्ट होती हैं, तब आशीर्वाद द्वारा तथा उनके दूध धृतादिसे किये गये यज्ञादिरूप धर्म द्वारा पापोंको दूर करती हैं । गो-दानसे स्वर्ग पहुंचाती है, अच्छी तरहसे सुरक्षित गायें धन देती हैं, अतएव गौ के समान दूसरा कोई भी धन नहीं है । गायें बेचारी जंगलमें सूखी घास पत्ती चरकर पानी पीकर भी हमारे लिये दुधरूपी अमृतको बहाती हैं । इतनाही नहीं, किन्तु ये गायें अपने गोबर आदि पदार्थोंसे लोकको पवित्र करती हैं, इसलिये गायके समान दूसरा कोई भी धन नहीं है ।

इतिहासके पृष्ठ इस बातके साक्षी हैं कि—समस्त संसारके चक्रवर्ती सम्राट् राजा दिलीपने एक गौ की रक्षाके लिये अपना परम प्यारा शरीर तक दे देना मंजूर किया था, परन्तु अपने समक्ष गौ का घात नहीं होने दिया था । पूर्णपुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके 'गोपाल एवं गोविन्द' ये नाम गौओंके पालनसेही प्रसिद्धि पा चुके हैं ।

धर्मप्रिय हिन्दुओं ! इस प्रकार गौ का महत्व शास्त्र में, इतिहासमें तथा लोकमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। परन्तु बड़ेही अफसोस शोक एवं लज्जाकी बात है कि—धर्मप्राण भारतवर्षमें लाखों कसाई-खाने खुले हुए हैं, उनके दरवाजोंसे हम गौ-ओंके खण्डित शव निकलते देखते हैं, और वहांकी नालियोंमें अपनी गौ-माताओंका पवित्र रक्त बहते हुए देखते हैं, उस समय केवल हम ठण्डी आहें भरकर चुप रह जाते हैं, इनको बन्द करनेके लिए जी-खोलकर प्राणों तक की बाजी लगाकर गौ-माताकी रक्षाके लिये भरपूर चेष्टा नहीं करते। क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि—पूरे बलसे इस घोर—अन्यायका प्रतिकार करें, अपनी गौ-माताओंको नष्ट होनेसे बचावें और उनके उद्धारका उपाय करें।

कहा है—

गोवधेन नरो याति, नरकानेकविंशतिम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, कार्यं तासान्तु पालनम् ॥ [वि० ध०]

गो-वध कर मनुष्य एकविंशति— २१) नरकोंको प्राप्त होता है, अतः गौ-माताओंका हर तरहसे पालन करना चाहिए।

प्रत्येक समर्थ हिन्दु अपने अपने घर कमसे कम एक एक गौ का पालन करे, इनको कभी बेचें नहीं। क्योंकि—'विक्रयाच्च गवां राम ! नरकं प्रतिपद्यते' गौ-ओंको बेचनेसे नरककी प्राप्ति होती है। जमीन्दार लोग गो-चरागाहके लिये जमीन छोड़ दें, अच्छी-अच्छी गोशालाएं स्थापन की जांय, और स्थापित गो-शालाओंका सुधार एवं उन्नति की जाय। जो मनुष्य गौ-का पालन करेगा, गो-रक्षामें सहायक होगा, वह धन-धान्य संपन्न होकर चिरंजीवी, यशस्वी, मेधावी एवं बलवान् होगा, अपना, कुटुम्बका, जातिका तथा राष्ट्रका कल्याण करेगा।

निःसंगता और एकान्त-वास

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहां कोई न हो,
हमसखुन (१) कोई न हो और हमजबाँ (२) कोई न हो,
बेदरो (३) दीवार-सा इक घर बनाना चाहिये।
कोई हमसाया (४) न हो और पासबाँ (५) कोई न हो,
पडिए गर (६) बीमार तो कोई न हो तीमारदार (७),
और अगर मर जाइए तो नोहखाँ (८) कोई न हो ॥

भ्रान्तिसे परेशानी

आनन्द-सिन्धु मध्य तव वासा, बिनु जाने कस मरसि पियासा ॥
मृग-भ्रम-वारि सत्य जिय जानी, तहँ तू मगन भयो सुख मानी ॥
तहँ मगन मज्जसि पानकरि त्रयकाल जल नांही जहाँ।
निज सहज अनुभवरूप तव खल ! भूलि अब आयो यहाँ॥
निरमल निरंजन निरबिकार उदार-सुख तैं परिहरयो।
निःकाज राज बिहाय नृप-इव सपन कारागृह परयो ॥

—तुलसीदासजी

(१) हमजैसा (२) हमारी भाषा बोलनेवाला (३) बे = विना, दरो = दरवाजा, दीवार = भीत (४) पडौसी (५) साथ रहनेवाला (६) अगर (७) सेवा करनेवाला (८) शोक करनेवाला-रोनेवाला।

विशिष्ट संरक्षक

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी गिरीशानन्दजी महाराज कनखल
" " श्री १०८ स्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज मण्डलेश्वर काशी।
" " श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर काशी।
" " श्री १०८ स्वामी श्री परमानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर।
श्रीमान् महन्त स्वा० श्रीनारायण भारतीजी-बीकानेर (स्टेट)
श्रीमान् स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज संन्यास आश्रम (अहमदाबाद)

विश्वनाथके उद्देश्य और नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं धर्म सम्बन्धी विषयों द्वारा जनता जनार्दनकी सेवा करना, और उपरोक्त विषयों पर पुनः पुनः चिन्तन करना इसका मुख्य उद्देश्य है।

नियम

(१) यह पत्र प्रत्येक मासकी शिवरात्रि (कृष्ण चतुर्दशी) को प्रकाशित होता है। विश्वनाथका वर्ष फाल्गुनकी महाशिवरात्रिसे आरम्भ होकर माघमें समाप्त होता है।

(२) इस पत्रके हिन्दी विभागका डाकव्ययके सहित वार्षिक मूल्य २) रु० और गुजराती विभागका २॥) रु० मात्र भारतवर्षके लिये है, वार्षिक मूल्य अग्रिम लिया जायगा। लायब्रेरी, छात्र एवं धार्मिक संस्थाओंको केवल १॥) में दिया जायगा। एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(३) कार्यालयसे विश्वनाथपत्र २-३ बार जाँच करके भेजा जाता है। परन्तु किसी कारणवश किसी मासका **विश्वनाथ** ठीक समयपर न पहुँचे तो ग्राहकोंको अपने २ डाकघरसे ही प्रथम पूछताछ करनी चाहिये। डाकघरसे मिला हुआ उत्तर उसी महीनेकी पूर्णमासीके भीतर कार्यालयमें आजाना चाहिये। जिससे ग्राहकोंकी सेवामें न पहुँचा हुआ अंक भेज सकें।

(४) इस पत्रमें किसी प्रकारके विज्ञापन किसी भी दरपर स्वीकार न किए जाँयगे।

(५) जो महानुभाव कमसे कम एकवार १२५) रु०से इस पत्रकी सहायता करेंगे, वे महानुभाव स्थायी संरक्षक मान जायेंगे। और जो महानुभाव कमसे-कम २५) रु० सहायता देंगे, वे इस पत्रके संरक्षक माने जायेंगे। तथा जो भगवद्भक्त कमसे-कम ५) सहायता देंगे, वे भी इस धार्मिक पत्रके सहायक माने जायेंगे। और वर्षमें एक दफे पत्रमें संरक्षक-सहायकोंकी नामावली प्रगट की जायगी।

(६) थोड़े समयके लिये पता बदलवाना होतो अपने पोस्टमास्टरकोही लिखना चाहिये। अधिक समयके लिये पता बदलनेकी सूचना हिन्दी महीनेकी पूर्णमासी तक कार्यालयमें आजानी चाहिये।

(७) ग्राहकोंको अपना नाम पता साफ साफ लिखते हुए ग्राहक नम्बर पत्र-व्यवहार करते समय अवश्य लिखना चाहिये, और पत्रोत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना जरूरी है।

(८) मनीआर्डर भेजते समय मनीआर्डरके कूपन पर रुपयोंकी तादाद, भेजनेका मतलब, पूरा नाम मय पता, ग्राहक नम्बर आदि सब बातें साफ साफ लिखनी चाहिये। प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **'व्यवस्थापक-विश्वनाथ पत्र'** के नामसे तथा लेख परिवर्तनके पत्र और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **'सम्पादक-विश्वनाथ पत्र' विश्वनाथ-पत्र कार्यालय ढुण्ढिराज गणेश, बनारस सिटी** के नामसे भेजने चाहिये।

(९) विश्वनाथमें छपनेवाले लेख लेखकोंकी ही जिम्मेवारी पर छपेंगे।

Regd. No. A, 2865

सब कुछ अच्छा है

(लेखक—ब्रह्मनिष्ठ परमहंस स्वामी जी श्री भोलेबाबाजी महाराज)

(इन्द्रवज्रा छन्द)

(१)

है राग अच्छा यदि योग में है,
है द्वेष अच्छा यदि भोगमें है।
है धैर्य अच्छा समता सिखावे,
है खेद अच्छा ममता छुड़ावे॥

(२)

इच्छा भली है यदि मोक्ष-की है,
अच्छी अनिच्छा सुखरूप ही है।
चिन्ता भली जो निज आत्मकी है,
निश्चिन्तता तो सबसे भली है॥

(३)

देना भला देखि सुपात्र दीजे,
लेना भला है सुख शान्ति लीजे।
है कर्म अच्छा हरि हेत हो जो,
आलस्य अच्छा मन-स्वस्थ हो जो॥

(४)

तृष्णा भली जो परमात्मकी है,
अच्छी अतृष्णा धन-धाम की है।
यात्रा भली संतन पास जावे,
एकत्र बैठे सब सिद्धि पावे॥

(५)

अच्छी प्रशंसा निज इष्ट की है,
निन्दा भली जो निज दोष की है।
है श्रेष्ठ जो भाषण [illegible] है,
है मौन अच्छा शिव ध्यान सा है॥

(६)

है रोग अच्छा अघ है घटाता,
आरोग्य अच्छा शिवसे मिलाता।
आहार अच्छा तनका सहारा,
विश्वेश कूं है उपवास प्यारा॥

(७)

गाना भला है हरिगीत गावे,
रोना भला पापन जो नशावे।
है द्रव्य अच्छा यदि धर्म होवे,
दारिद्र अच्छा सुख नींद सोवे॥

(८)

कर्मी भला जो शिव कूं मनावे,
है भक्त अच्छा हरि कूं रिझावे।
ज्ञानी भला है सब एक माने,
'भोला भला जो कुछ भी न जाने॥

मुद्रक—प्रकाशक स्वामी मोहनानन्द। काशी विश्वनाथ प्रेस, ढुण्ढिराज गणेश, बनारस सिटी।